१ ਓ सतिगुर प्रसादि ॥

सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नामु ॥ भगत जना कै मनि बिस्राम ॥

सम्प्रदाय टीका

कथा शान्त सागर

-अर्थात्-

श्री सुखमनी साहिब सटीक

जिस में- प्रस्तावना, प्रमाण, महात्मय तथा पचपन प्रसंग अंकित हैं।

-टीकाकार-

श्रीमान् १०८ परम पूज्य विद्या मार्त्तण्ड
ब्रह्म ज्ञानी सन्त अमीर सिंघ जी

के परम शिष्य

सन्त ज्ञानी कृपाल सिंघ जी



प्रकाशक:-

भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ

अमृतसर।




एक ओ अंकार सतिगुर प्रसादि।।

सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नामु॥ भगत जना कै मनि बिस्राम॥

सम्प्रदाय टीका

कथा शान्त सागर

- अर्थात् -

श्री सुखमनी साहिब सटीक

जिस में – प्रस्तावना, प्रमाण, महात्म्य तथा पचपन प्रसंग अंकित हैं।

- टीकाकार -

श्रीमान् १०८ परम पूज्य विद्या मार्त्तण्ड

ब्रह्म ज्ञानी सन्त अमीर सिंघ जी

के परम शिष्य

सन्त ज्ञानी कृपाल सिंघ जी

प्रकाशक :-



भा. चतर सिंघ जीवन सिंघ

अमृतसर

टीकाकार-

सन्त ज्ञानी कृपाल सिंघ जी

डेरा श्रीमान् १०८ महन्त बाबा उत्तम सिंघ जी
नमक मण्डी, बाज़ार मत्तों वाला, अमृतसर।

KATHA SHAANT SAAGAR (SRI SUKHMANI SAHIB SATEEK)

by Giani Kirpal Singh Ji

ISBN : 81-7601-004-9

द्वितीय संस्करण 2000

तृतीय संस्करण फरवरी 2003

भेटा : 100-00



प्रकाशक:-

भाई चतर सिंघ जीवन सिंघ

बाज़ार माई सेवां, अमृतसर।
फोन : (0183) 2542346, 2547974
फैक्स : (0183) 2557973
E-Mail : csjs@jla.vsnl.net.in
Visit our Website : www.csjs.com

इस संस्करण को मुद्रित व प्रकाशित करने के अधिकार ज्ञानी कृपाल सिंघ चेरिटेबल सोसाइटी अमृतसर की ओर से प्राप्त किए गए हैं। सोसाइटी की आज्ञा के बिना यह पुस्तक कोई भी नहीं छाप सकता।

(Printed In India) (1000)

मुद्रक:- जीवन प्रिंटर्ज़, 312, ईस्ट मोहन नगर, अमृतसर। फोन : 2705003, 5095774

विषय सूची

विषय	पृष्ठ

❋ ❋ ❋

❋

भूमिका

१ओ अंकार सतिगुर प्रसादि॥

अनेकानेक धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जीव को यह मानव शरीर चौरासी लाख योनियों का फल भोगने के उपरान्त उनमें किए गए असंख्य शुभ कर्मों के लाभार्थ प्राप्त होता है। वो भी इसलिए कि प्रभु चाहते हैं कि जीव अपनी मानव योनि में पूजा-अर्चना, नाम-सुमिरण आदि करके अपनी आत्मा को इस आवागमन के चक्र से मुक्त करा सके। लेकिन ज्यों ही जीव इस मानव देह को पा लेता है तो वह सांसारिक पदार्थों के मोह जाल में विलीन हो जाता है तथा वह मोक्ष प्राप्ति के लक्ष्य को भूल जाता है और सृष्टि रचयिता परम पिता परमात्मा द्वारा प्रदान किए हुए दिन और रात्रि के कुल चौबीस हज़ार श्वास प्रतिदिन यूं ही व्यर्थ गंवाता हुआ इस संसार से विदा हो जाता है।

द्वापर युग में विष्णु अवतार भगवान श्री कृष्ण जी ने जीव के इन्हीं श्वासों की सफलता हेतु कौरवों और पाण्डवों के मध्य हुए धर्म युद्ध में पाण्डु पुत्र अर्जुन को उपदेश देते हुए श्री मद्‌भागवत गीता की रचना की थी। जिसमें सम्पूर्ण चौबीस हज़ार शब्दों का उल्लेख, जीव के प्रत्येक श्वास की सफलता के लिए अट्ठारह अध्यायों के सात सौ तीस श्लोकों के रूप में किया। जिनके मात्र एक बार पढ़ने से ही मनुष्य के एक दिन के श्वास सफल हो जाते हैं।

इसी तरह कलियुग में शान्ति के प्रतीक पंचम पिता श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज ने **वन्दनीय भाई गुरदास जी** तथा बाबा बुड्ढा जी के आग्रह पर मनुष्य के प्रत्येक श्वास के लाभ हित श्री सुखमनी साहिब जी की रचना गुरुद्वारा श्री रामसर स्थित मंजी साहिब में बैठकर की, ताकि जीव इसका पाठ करते हुए अपना प्रत्येक श्वास सफल कर मोक्ष को प्राप्त हो। तब से संसार के अनेक मानव देही जीव इसका पाठ करके अपना जीवन सफल कर रहे हैं।

श्री सुखमनी साहिब जी की महानता तथा भावार्थ समझाने के लिए सम्प्रदाय समुदाय के सर्वपूजनीय श्री मान विद्या मार्त्तण्ड ब्रह्म ज्ञानी सन्त अमीर सिंघ जी के परम शिष्य सन्त ज्ञानी कृपाल सिंघ जी ने गुरमुखी भाषा में इस वाणी का टीका करके **"कथा शान्त सागर"** नामक पुस्तक की रचना लगभग अढ़ाई दशक पूर्व कर दी थी। इसमें उन्होंने

****
गुरु की वाणी के सरलार्थ, प्रमाण तथा इससे संबंधित उन महान् आत्माओं की पचपन साखियां भी अंकित की हैं जो अपने जीवन काल में प्रायः प्रभु से अटूट प्रेम करते थे और उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन परमात्मा के नाम सुमिरण में ही व्यतीत कर दिया।

आज अनेकों कथावाचक, आध्यात्मिक साहित्य के प्रेमी, गुरु प्रति श्रद्धा रखने वाले इस अमूल्य रत्न **"कथा शान्त सागर"** का अध्ययन करके अपने साथ-साथ अन्य कई हृदयों की तपिश को शीत कर रहे हैं।

असंख्य उन वाणी श्रद्धालुओं के अत्यन्त आग्रह पर, जो प्रदेश से बाहर रहते हैं अथवा हिन्दी भाषा के ज्ञाता हैं, इस पुस्तक का अनुवाद हिन्दी भाषा में करके प्रकाशित करने का उधम किया गया है ताकि हिन्दी भाषी गुरु प्रेमी इस से ज्ञान प्राप्त कर हृदय को शान्त करते हुए अपना श्वास-श्वास सफल कर सकें। इस ज्ञानवर्धक पुस्तक की विशेषता यह है कि इसकी भाषा में इतनी सरलता है कि अज्ञानी भी इसे ग्रहण कर ज्ञानवान हो सकता है। पाठकों को इस में पूर्ण भाव समझाने का प्रयास किया गया है।

इतने प्रयास के बावजूद भी अगर कोई इसमें त्रुटि रह गई हो तो हम पाठकों के समक्ष क्षमा के प्रार्थी हैं।

– प्रकाशक

गउड़ी सुखमनी मः ५ ॥ सलोकु ॥
१ ओ अंकार सतिगुर प्रसादि ॥
प्रस्तावना

एक दिन श्री गुरु अरजन देव जी प्रभात समय स्नान करके बेरी के नीचे बैठे नित्तनेम कर रहे थे। जिस समय उनका नित्तनेम समाप्त हुआ तो संगत की प्रेरणानुसार भाई गुरदास जी व बाबा बुड्ढा जी ने गुरु जी के पास आकर वन्दना करते हुए निवेदन किया—

"गरीब नवाज़ जी! सनातन धर्म वाले गीता का पाठ करने में ही जीव का कल्याण मानते हैं। आप भी कोई ऐसी सरल वाणी की रचना करें, जिस का पाठ करने से जीव का कल्याण हो जाए तथा चौबीस हजार श्वास भी सफल हो जायें।"

यह निवेदन स्वीकार करके गुरु साहिबान ने रामसर सरोवर के किनारे मंजी साहिब बैठ कर सम्पूर्ण सुखमनी उच्चारण करके वचन किया-"जो माई भाई प्रातः स्नान करके सुखमनी साहिब जी का पाठ करेगा, उसे मुक्ति भी मिलेगी तथा दिन-रात के २४००० (चौबीस हजार) श्वास भी सफल हो जायेंगे। बल्कि जो योगी भी इस सुखमनी साहिब जी का पाठ करेगा उसके श्वास भी सफल हो जाएंगे।" क्योंकि योगी मत्त के "**जोग कलपतर**" ग्रन्थ में लिखा है कि योगियों के २१६२४ (इक्कीस हजार छः सौ चौबीस) श्वास प्रतिदिन निकलते हैं, उनके शेष श्वास जमा रह जाते हैं। जैसे गवर्नमैंट की नौकरी करने वाले की जितनी तनखाह होती है मास के अन्त में तनखाह देते समय कुछ रुपये प्रॉविडैण्ट फण्ड के काट लिए जाते हैं। ५८ वर्ष के पश्चात् जिस समय नौकरी की अवधि पूर्ण होती है तो उनके रुपयों के साथ कुछ रुपये और मिलाकर उसे वापिस दिये जाते हैं। (आजकल इस फण्ड के लिए वेतन का ८.३३ प्रतिशत हिस्सा काटा जाता है)।

इस प्रकार जो योगी परमात्मा की नौकरी करते हैं, रात दिन वाहिगुरु के सिमरन में ही गुज़ारते हैं, उनके २१६२४ श्वास निकलते हैं, शेष उनके श्वास जमा हो जाते हैं। इसी कारण योगियों की आयु अधिक कही जाती है तथा वाहिगुरु योगियों को बहुत कुछ बढ़ा कर देता है।

उनके मत्तानुसार सुखमनी साहिब जी के २१६२४ अक्षर पूरे हैं।

जो भी व्यक्ति इस सुखमनी साहिब जी का पाठ करेगा, उसके भी चौबीस हजार श्वास सफल होंगे।

प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै।। प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै।। *(पृष्ठ २६२)*

****

अथवा - ब्रहम गिआनी सदा निरलेप।। जैसे जल महि कमल अलेप।। (पृष्ठ २७२)

इति आदि पंक्तियों में जो अक्षरों के पैरों में अक्षर हैं, वह २३७३ (दो हजार तीन सौ तेहत्तर) हैं।

तथा तेरहवीं असटपदी की दूसरी पउड़ी में भी ३ (तीन अक्षरों की बढ़ौतरी) की है-

संतन कै दूखनि काग जिउ लवै।।
संतन कै दूखनि सरप जोनि पाइ।।
संतन कै दूखनि त्रिसना महि जलै।। (पृष्ठ २७९)

शेष सारी असटपदी में 'संत' पद्य है, परन्तु इन तीन पंक्तियों में ही 'संतन' पद्य लिख कर तीन "न" अक्षर बढ़ा कर साधारण व्यक्ति के २४००० श्वासों की सफलता के लिए २१६२४+२३७३+३ = इस प्रकार २४००० अक्षर ही सुखमनी साहिब जी के पूर्ण किये जाते हैं।

जैसे नये कार्य के प्रारम्भ में प्रत्येक प्रभु का आराधना रूप मंगल करते हैं। वैसे ही गुरु साहिब जी भी इस नई वाणी के प्रारम्भ में अपने गुरु साहिबान का मंगल करते हैं।

आदि गुरए नमह॥

सभी गुरुओं के आदि = पहले गुरु, जो श्री गुरु नानक देव जी हैं उनके ए=प्रति* मेरी नमस्कार हो।

जुगादि गुरए नमह॥

जुगादि - युग+ आदि = युग का अर्थ दो करना। दो श्री गुरु रामदास साहिब जी व श्री गुरु अमरदास साहिब जी इन दो गुरु साहिबान के आदि गुरु जो श्री गुरु अंगद देव जी हैं, उनके "ए"=प्रति, "नमह"=नमस्कार हो।

सतिगुरए नमह॥

गुरु का जो गुरु हो उसे सतिगुरु (सद्गुरु) कहते हैं, इसलिए श्री गुरु रामदास साहिब जी के गुरु जो सतिगुरु अमरदास साहिब जी हैं, उनके "ए" = प्रति हमारी नमस्कार हो।

---

*व्याकरण में ७ विभक्तिएं लिखी हैं-

रामा,	रामं,	रामेश,	रामेत,	रामाइ,	रामास्य,	रामाशु,
राम है,	राम को,	राम करके,	राम प्रति,	राम से,	राम की,	राम में,

यथा- है प्रिथमा, को दुतिया, करके, तृतीया जान।
ताईं वास्ते चतुर्थी ते. से. पंचम मान।
का. की. को. षष्ठी अहै, विखे सप्तमी जान।

यहां पर चौथी विभक्ति के अनुसार "ए" का अर्थ प्रति (ताईं) किया है।

****

स्री★ गुरदेवए नमह ॥ १ ॥

जो अपने स्वामी हों उन्हें गुरुदेव पद्य लिखा जाता है। इसलिए श्री गुरु अरजन देव जी ने कहा है-"स्री"=संरक्षक, हमारे गुरुदेव जो श्री गुरु रामदास जी हैं, उनके "ए"= प्रति नमस्कार हो।

श्री गुरु अरजन देव जी ने, अपने स्वामी श्री गुरु रामदास जी को कई स्थानों पर गुरुदेव पद्य के साथ वर्णन किया है। जैसे-

यथा - **गुरदेव माता गुरदेव पिता गुरदेव सुआमी परमेसुरा।।**
गुरदेव सखा अगिआन भंजनु गुरदेव बंधिप सहोदरा।।
गुरदेव दाता हरि नामु उपदेसै गुरदेव मंतु निरोधरा।।
गुरदेव सांति सति बुधि मूरति गुरदेव पारस परस परा।।

(गउड़ी बावन अखरी, पृष्ठ २६२)

तथा - **काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनसि जाइ अहंमेव।।**
नानक प्रभ सरणागती करि प्रसादु गुरदेव।।१।।

(गउड़ी सुखमनी, असटपदी ६, पृष्ठ २६९)

तथा - **ततु बीचारु कहै जनु साचा।। जनमि मरै सो काचो काचा।।**
आवा गवनु मिटै प्रभ सेव।। आपु तिआगि सरनि गुरदेव।।

(गउड़ी सुखमनी, असटपदी १९, पृष्ठ २८८)

तथा - **सरनि जोगु सुनि सरनी आए।। करि किरपा प्रभ आप मिलाए।।**
मिटि गए बैर भए सभ रेन।। अंम्रित नामु साधसंगि लैन।।
सुप्रसंन भए गुरदेव।। पूरन होई सेवक की सेव।।

(गउड़ी सुखमनी, असटपदी २४, पृष्ठ २९५)

तथा - **वडै भागि भेटे गुरदेवा।। कोटि पराध मिटे हरि सेवा।। १।।**

(धनासरी महला ५, पृष्ठ ६८३)

★'स्री' पद्य अन्य किसी गुरु साहिब के साथ नहीं दिया, केवल श्री गुरु रामदास साहिब जी के साथ ही दिया है, इसका यह कारण है :-

गुरु नानक साहिब जी से माया १२ कोस दूर रही है।

गुरु अंगद देव जी से माया ६ कोस दूर रही है।

गुरु अमरदास जी के द्वार से बाहर माया खड़ी रही है, अन्दर आने की आज्ञा नहीं हुई। जिस समय माया ने बहुत निवेदन किया, बहुत मिन्नतें की, अनुरोध किया, तो गुरु अमरदास जी ने माया को गुरु रामदास जी के चरणों में डाल कर कहा, "यदि तुम सफल होना चाहती हो तो इनके चरणों में ही पड़ी रहो, इन्हें मत छोड़ना।" उस वरदान के कारण माया चारों द्वारों से श्री गुरु रामदास जी के दरबार में आ रही है, इसलिए गुरु रामदास जी के साथ "स्री" पद्य रखा गया है। "स्री" नाम लक्ष्मी जी का है। लक्ष्मी जी जिनके चरणों में निवास कर रही हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूं।

****

तथा - **राम राज रामदास पुरि कीन्हे गुरदेव।।**

(बिलावलु महला ५, पृष्ठ ८१७)

असटपदी ॥* सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ ॥

हे भाई ! मन करके सिमरन करो, वाणी करके सिमरन करो, तन करके सिमरन करो। अथवा-उसका सिमरन जो सिमरन के योग्य है, उसे सिमर कर सुख प्राप्त करो।

यथा- **साजन संत करहु इहु कामु।। आन तिआगि जपहु हरि नामु।।**
सिमरि सिमरि सिमरि सुख पावहु।। आपि जपह अवरह नामु जपावहु।।

(गउड़ी सुखमनी, असटपदी २०, पृष्ठ २९०)

तथा - **कलि ताती ठांढा हरि नाउ।। सिमरि सिमरि सदा सुख पाउ।।**

(गउड़ी सुखमनी, असटपदी १९, पृष्ठ २८८)

कलि कलेस तन माहि मिटावउ ॥

कलि=कलियुग के कलेश, अथवा-कलि=कलपना तथा (राग, द्वेष, अविद्या, असमता, अभिनिवेश इन पांचो) कलेशों को शरीर में से 'मिटावउ'= दूर करो।

सिमरउ जासु बिसुंभर एकै॥ नामु जपत अगनत अनेकै॥

बिसुंभर=(विश्व) संसार के भरने वाला अर्थात् पालने वाला जो एक प्रभु है उसके जासु=यश का सिमरन करो। उसके अनेकों नाम हैं तथा जपने वाले भी अगनत=गिनती रहित हैं। अथवा-एक संसार के पालने वाले का सिमरन करो, जासु=जिस के नाम अनेक हैं तथा जपने वाले भी अगनत=अनगिनत हैं।

बेद पुरान सिंम्रिति सुधाख्यर॥ कीने राम नाम इक आख्यर ॥

चार वेद, अठारह पुराण, सत्ताइस स्मृतियों के एक-एक अक्षर को शुद्ध किया है। आख्यर=अन्त को, एक राम का नाम ही सुख प्राप्ति का साधन निश्चित किया है।

किनका एक जिसु जीअ बसावै॥ ता की महिमा गनी न आवै॥

सुखमनी साहिब नाम रूप अनाज का ढेर है, इस में से एक दाना भी जिस के हृदय में नाम का समा गया है। उसकी महिमा गनी=गिनती में नहीं आती। अथवा - एक कण भर भी अर्थात् - थोड़ा सा समय भी जिसके हृदय में नाम समा गया है। उसकी महिमा गिनती में नहीं आती।

यथा- **एक चित्त जिह इक छिन ध्याइओ।।**
काल फास के बीच न आइओ।। १०।।

(दसम ग्रन्थ, पृष्ठ ११)

---

*असट+पदी=आठ आठ पद्यांश होने के कारण, इसका नाम असटपदी है तथा प्रत्येक पद्यांश की दस-दस पंक्तियां हैं।

****

कांखी एकै दरस तुहारो॥ नानक उन संगि मोहि उधारो॥ १ ॥

गुरु जी कहते हैं, हे प्रभु! जिन को एक तुहारो=आपके दर्शनों की कांखी=इच्छा है। उनके साथ मिलाकर मुझे भी पार उतारो।। १।।

सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नामु॥ भगत जना कै मनि बिस्राम॥ रहाउ॥★

इस में सुख स्वरूप प्रभु का नाम अमृत होने के कारण इसका नाम सुखमनी साहिब है। अथवा-यह सुख+मनी=सुखों की ममटी है। जैसे लोग घरों की ममटी पर अपना सब सामान रखते हैं, उसी प्रकार प्रभु ने सारे सुख इस सुखमनी साहिब में रखे हैं।

अथवा - सुख+मनी=हृदय को सुख देने वाली है।

अथवा - इसके सिमरन से सुखों की प्राप्ति होती है।

अथवा - सुखों की मनी = रोटी है, जैसे मन्नी में (मैदा, खाण्ड, घी) तीन चीज़ें होती हैं। वैसे ही इस वाणी में ज्ञान रूप मैदा, भक्ति रूप खाण्ड तथा प्रेम रूप घी है।

अथवा - जैसे सांप के सिर में मणी सुशोभित है, वैसे ही यह सुखों को सुशोभित करने वाली है, इसलिये इसका नाम सुखमनी है। जैसे प्रत्यक्ष मणी को डिब्बे में सम्भाल कर रखते हैं, वैसे ही यह सुखमनी रूप वाणी भक्तों के हृदय में बिस्राम=वास करती है।। रहाउ।।

आगे सिमरन का फल बताते हैं—

प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै॥ प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै॥

प्रभु का सिमरन करके जीव दोबारा मां के गर्भ में नहीं बसता।

प्रभु का सिमरन करने से जीव के पास से सभी दुख तथा यम दूर हो जाते हैं अर्थात्-भाग जाते हैं।

प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै॥ प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै॥

प्रभु का सिमरन करके जीव कालु=मौत को परहरै=भगा देता है। प्रभु का सिमरन करके जीव के सिर से दुश्मन उतर जाता है।

प्रभ सिमरत कछु बिघनु न लागै॥ प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै॥

प्रभु का सिमरन करते हुए जीव को कोई बाधा नहीं पड़ती।

प्रभु का सिमरन करके जीव रात-दिन ज्ञान जागृति में जागता रहता है।

★ गुरु साहिब जी ने यह 'रहाउ' की दो पंक्तियें प्रत्येक पउड़ी की दस पंक्तियों से अलग बताई हैं तथा इन दोनों पंक्तियों में इस वाणी का नाम महाराज जी ने सुखमनी साहिब कहा है। यह दो पंक्तियें ही पूर्ण सुखमनी साहिब का मूल रूप हैं। शेष सारी वाणी टीका रूप है। प्रत्येक पउड़ी के साथ इन दोनों पंक्तियों का पाठ करने से अधिक फल की प्राप्ति होती है।

प्रभ कै सिमरनि भउ न बिआपै॥ प्रभ कै सिमरनि दुखु न संतापै॥

प्रभु का सिमरन करने से जीव को कोई भय नहीं लगता।

प्रभु का सिमरन करने से जीव को कोई दुख भी नहीं सताता।

प्रभ का सिमरनु साध कै संगि॥ सरब निधान नानक हरि रंगि॥ २॥

प्रभु का सिमरन सन्तों के संग से मिलता है।

गुरु जी कहते हैं - सन्तों के संग द्वारा हरि रंगि=प्रेम करने से सरब निधान=सारे खज़ाने प्राप्त होते हैं।।२।।

प्रभ कै सिमरनि रिधि सिधि नउ निधि॥ प्रभ कै सिमरनि गिआनु धिआनु ततु बुधि॥

प्रभु के सिमरन द्वारा ऋद्धि - सिद्धि तथा नव - निद्धि प्राप्त हो जाती हैं* प्रभु के सिमरन द्वारा ही ज्ञान ध्यान सहित तत्व स्वरूप जानने वाली बुद्धि प्राप्त होती है। अथवा - आत्म ज्ञान वाली बुद्धि प्राप्त होती है।

प्रभ कै सिमरनि जप तप पूजा॥ प्रभ कै सिमरनि बिनसै दूजा॥

प्रभु का सिमरन करने से जप तप आदि के करने का फल तथा ठाकुर पूजा आदि कर्मों के करने का फल प्राप्त हो जाता है।

प्रभु के सिमरन द्वारा दूजा=द्वेष भावना समाप्त हो जाती है।

प्रभ कै सिमरनि तीरथ इसनानी॥ प्रभ कै सिमरनि दरगह मानी॥

प्रभु के सिमरन से ही सभी तीर्थों के स्नान हो जाते हैं। अर्थात् बाहर जाने की आवश्यकता नहीं, घर बैठे ही सभी तीर्थों के स्नानादि का फल मिल जाता है।

प्रसंग-जैत नामे सेठ का

जैत नामे एक सेठ पटना साहिब में रहता था जो अतिथियों की बहुत सेवा करता था तथा प्रातः काल उठकर पूजा पाठ भी बहुत करता था, सत्संगी भी बहुत था।

जिस समय श्री गुरु तेग बहादुर साहिब जी पटना साहिब पहुंचे तो संगतों ने खुले दर्शन दीदार किए। उस समय कई लोगों ने उस सेठ की शिकायत की कि हे गुरु महाराज! यह जैत सेठ कुण्ड में स्नान करता है, गंगा में स्नान नहीं करता। हम इसे बहुत कह रहे हैं, लेकिन यह हमारा कहना ही नहीं मानता। आप ही इसे समझाएं कि गंगा में स्नान किया करे।

गरीब नवाज़ ने सिक्ख की महिमा प्रकट करने के लिए कहा, "आप आज की रात यहां रहो और प्रातः उठकर देखना।"

हज़ूर की आज्ञा मानकर कुछ लोग वहीं पर ठहर गये, जब प्रभात हुई तो हज़ूर

* निधि सिधि निरमल नामु बीचारु।। (गउड़ी असटपदीआ महला १, पृष्ठ २२०)

****
ने सब को उठा दिया।

इतने में एक गाय आई जिसने अपने मुख से जल निकालकर वह कुण्ड भर दिया तो गुरु जी ने सिक्खों का निश्चय करवाने के लिए उस से पूछा, "तुम कौन हो ?"

उस गाय ने बोलकर कहा, "मैं गंगा हूँ"।

गुरु जी-"तुम यहां क्यों आती हो"?

गाय (गंगा)-"मैं प्रतिदिन इस भक्त को स्नान करवाने आती हूँ।"

यह कौतुक देख व सुन कर सभी चकित हो गये।

हज़ूर ने कहा, "यह नाम का प्रभाव है, जो भी व्यक्ति नाम सुनेगा, जपेगा, उसे घर बैठे ही तीर्थ दर्शन देंगे तथा ६८ तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त होगा। नाम का महात्म्य अठसठ तीर्थों से भी विशेष है।

जैसे अठसठि तीरथ परस कीओ, जुग चारि चड़िओ कैलाश रहिओ।।
जैसे लाख बार कुरछेतर में, असमेध जग अभंग ठइओ।।
जैसे कोट बरस तप उरध मुखी, बैसंतर में तन दाह दइओ।।
फुनि अंम्रित नाम विशेश इती, जिन एक बार स्री वाहिगुरू कहिओ।।

(कबित्त सवय्ये भाई गुरदास जी)

अथवा - अठसठ तीर्थों को भी स्नान करवा देता है। अर्थात् पवित्र कर देता है।

क्योंकि संसारी जीव कई तरह के छल-कपट करके पाप विशिष्ट अंतःकरण वाले होते हैं तथा वह तीर्थों पर स्नान करके अपने पापों को दूर करने जाते हैं तथा तीर्थों के पापों को महात्मा दूर करते हैं।

गंगा जमुना गोदावरी सरसुती ते करहि उदमु धूरि साधू की ताई।।
किलविख मैलु भरे परे हमरै विचि हमरी मैलु साधू की धूरि गवाई।। १।।

(मलार महला ४, पृष्ठ १२६३)

वाहिगुरु का सिमरन करके परलोक में जाकर यह जीव मानी=सम्मान प्राप्त करता है।

प्रभ कै सिमरनि होइ सु भला॥ प्रभ कै सिमरनि सुफल फला॥

प्रभु का सिमरन करने वाले जीव से जो भी होता है, वह अच्छा ही होता है। अथवा-परमेश्वर द्वारा जो भी होता है उस की नज़र में अच्छा ही होता है। प्रभु का सिमरन करने वाला जीव पुत्र-पुत्रियों के श्रेष्ठ फलों से प्रफुल्लित होता है। अथवा-ज्ञान रूप अत्युत्तम फल प्राप्त होता है।

[पृष्ठ २६३]

से सिमरहि जिन आपि सिमराए॥ नानक ता कै लागउ पाए॥ ३॥

जिन से परमेश्वर आप सिमरन करवाता है, वही पुरुष सिमरन करते हैं। गुरु जी कथन करते हैं, हम उनके पाए=चरणों में पड़ते हैं, यानि- तुम उनके चरण स्पर्श करो।। ३।।

****

प्रभ का सिमरनु सभ ते ऊचा॥ प्रभ कै सिमरनि उधरे मूचा॥

प्रभु का सिमरन सर्व कर्म धर्म से ऊंचा है। प्रभु का सिमरन करके ही मूचा=काफी पुरुष भव-सागर से उधरे=पार उतरे हैं।

प्रभ कै सिमरनि त्रिसना बुझै॥ प्रभ कै सिमरनि सभु किछु सुझै॥

प्रभु के सिमरन से तृष्णा रूपी आग बुझ जाती है। प्रभु के सिमरन द्वारा अन्तर्यामिता से सब कुछ सूझ जाता है।

प्रभ कै सिमरनि नाही जम त्रासा॥ प्रभ कै सिमरनि पूरन आसा॥

प्रभु का सिमरन करने वाले को यमों का त्रासा=भय नहीं होता। प्रभु का सिमरन करने से सभी आशाएं पूर्ण हो जाती हैं।

प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ॥ अंम्रित नामु रिद माहि समाइ॥

प्रभु के सिमरन से हृदय की पाप रूपी या अविद्या रूपी मैल चली जाती है, तथा नाम अमृत हृदय में समा जाता है।

प्रभ जी बसहि साध की रसना॥ नानक जन का दासनि दसना॥ ४॥

प्रभु जी आप सन्तों की जिह्वा पर निवास करते हैं। गुरु जी कहते हैं, इसलिए मैं सन्तजनों के सेवकों का सेवक हूँ॥ ४॥

प्रभ कउ सिमरहि से धनवंते॥ प्रभ कउ सिमरहि से पतिवंते॥

जो प्रभु का सिमरन करते हैं, वह असली धन वाले धनवान् हैं। जो प्रभु का सिमरन करते हैं, वह सम्मान वाले होते हैं।

प्रभ कउ सिमरहि से जन परवान॥ प्रभ कउ सिमरहि से पुरख प्रधान॥

जो प्रभु का सिमरन करते हैं, वह पुरुष प्रमाणिक हैं। जो प्रभु का सिमरन करते हैं, वह पुरुष प्रधान=मुखिया हैं।

प्रभ कउ सिमरहि सि बेमुहताजे॥ प्रभ कउ सिमरहि सि सरब के राजे॥

जो प्रभु का सिमरन करते हैं, वह आत्म-निर्भर होते हैं, उन्हें किसी की भी परवाह नहीं होती। जो प्रभु का सिमरन करते हैं, वह सभी के राजा होते हैं।

प्रभ कउ सिमरहि से सुखवासी॥ प्रभ कउ सिमरहि सदा अबिनासी॥

जो प्रभु का सिमरन करते हैं, वह सुखों में रहते हैं। जो प्रभु का सिमरन करते हैं, वह सदा के लिए अबिनासी=वाहिगुरु का स्वरूप हो जाते हैं।

सिमरन ते लागे जिन आपि दइआला॥ नानक जन की मंगै रवाला॥ ५॥

जिनके ऊपर परमेश्वर की कृपा होती है, वही पुरुष सिमरन में लीन होते हैं।

****
गुरु जी कहते हैं, मैं उनकी चरण धूल मांगता हूँ।। ५।।

प्रभ कउ सिमरहि से परउपकारी ॥ प्रभ कउ सिमरहि तिन सद बलिहारी ॥

जो प्रभु का सिमरन करते हैं, वह पुरुष परोपकारी होते हैं। जो प्रभु का सिमरन करते हैं, मैं उन पर सदा कुर्बान जाता हूँ।

प्रभ कउ सिमरहि से मुख सुहावे ॥ प्रभ कउ सिमरहि तिन सूखि बिहावै ॥

जो प्रभु का सिमरन करते हैं, वह मुख शोभनीय हैं। जो प्रभु का सिमरन करते हैं, उनकी आयु सुखों में बिहावै=व्यतीत होती है।

प्रभ कउ सिमरहि तिन आतमु जीता ॥
प्रभ कउ सिमरहि तिन निरमल रीता ॥

जो प्रभु का सिमरन करते हैं, उन्होंने अपने आतमु=हृदय को जीत लिया है। जो प्रभु का सिमरन करते हैं, उनकी रीति निरमल=पवित्र है।

प्रभ कउ सिमरहि तिन अनद घनेरे ॥
प्रभ कउ सिमरहि बसहि हरि नेरे ॥

जो प्रभु का सिमरन करते हैं, उन्हें घनेरे=अधिक आनन्द की प्राप्ति हुई है। जो प्रभु का सिमरन करते हैं, वह हरि के नजदीक वास करते हैं।

संत क्रिपा ते अनदिनु जागि ॥ नानक सिमरनु पूरै भागि ॥ ६ ॥

जो संतों की कृपा से रात दिन जागता है, यानि मोह रूपी नींद से दूर होशियार होकर रहता है। गुरु जी व्याख्यान करते हैं कि उसे पूर्ण भाग्य के कारण प्रभु का सिमरन प्राप्त होता है।। ६।।

प्रभ कै सिमरनि कारज पूरे ॥ प्रभ कै सिमरनि कबहु न झूरे ॥

प्रभु का सिमरन करने से सर्व कारज=कार्य पूर्ण होते हैं। प्रभु का सिमरन करने से ही यह जीव कभी कुढ़ता नहीं है।

प्रभ कै सिमरनि हरि गुन बानी ॥ प्रभ कै सिमरनि सहजि समानी ॥

प्रभु के सिमरन से ही इसकी वाणी हरि गुण गाने वाली हो जाती है। प्रभु के सिमरन से इस की बुद्धि सहज पद में समा जाती है।

प्रभ कै सिमरनि निहचल आसनु ॥ प्रभ कै सिमरनि कमल बिगासनु ॥

प्रभु के सिमरन से इस जीव का आसन स्थिर हो जाता है, अर्थात् योगी की भांति समाधि में जुड़ कर बैठता है। अथवा-निहचल आसनु=स्वरूप की प्राप्ति होती है। प्रभु के सिमरन द्वारा हृदय कमल बिगासनु=खिल जाता है।

****

प्रभ कै सिमरनि अनहद झुनकार ॥ सुखु प्रभ सिमरन का अंतु न पार ॥

प्रभु के सिमरन से अनहद=रसीले, झुनकार=आनंद के बाजे बजते हैं। प्रभु के सिमरन द्वारा जो सुख हैं, उनके आर-पार का अन्त नहीं आता।

सिमरहि से जन जिन कउ प्रभ मइआ ॥
नानक तिन जन सरनी पइआ ॥ ७ ॥

जिनके ऊपर प्रभु की मइआ=कृपा दृष्टि हुई हो, वही पुरुष प्रभु का सिमरन करते हैं। गुरु जी कहते हैं-मैं उन गुरमुखों की शरण पड़ा हूँ।। ७।।

हरि सिमरनु करि भगत प्रगटाए ॥ हरि सिमरनि लगि बेद उपाए ॥

हरि ने अपने सिमरन करवाने के लिए भक्त प्रकट किये हैं। हरि ने अपने सिमरन लगि=के लिए ही वेद पैदा किये हैं।

अथवा - हरि के सिमरन के कारण ही भक्त संसार में प्रकट होकर आये हैं। जैसे चमार रविदास सिमरन के लिए संसार में भक्त नाम रूप में प्रकट हुआ।

भगत भगत जगि वजिआ चहुं चकां दे विचि चमरेटा। *(वार १०, पउड़ी १७)*

हरि के सिमरन में लीन हो कर ही ब्रह्मा ने वेद उपाए=प्रकट किये।

अर्थात् - जिस हरि ने वेद उच्चारण किये हैं, हे पुरुष! तुम उसके सिमरन में ही लीन रहो।

हरि सिमरनि भए सिध जती दाते ॥ हरि सिमरनि नीच चहु कुंट जाते ॥

हरि के सिमरन के कारण सिद्ध, योगी तथा देवता हुए हैं। हरि का सिमरन करके नीच पुरुष चारों दिशाओं में जाते=जाने जाते हैं।

हरि सिमरनि धारी सभ धरना ॥ सिमरि सिमरि हरि कारन करना ॥

हरि ने अपना सिमरन करवाने के लिये ही सारी धरना=पृथ्वी, धारी=बनाई है। अर्थात्-शेषनाग ने हरि सिमरन में लीन होकर सम्पूर्ण पृथ्वी पहाड़ादि सहित अपने शीश पर फूल की भांति धारी=उठाई हुई है।

सैलनि काननि सों धरनी परशूनहि ज्यों जिन सीस उठाई।

(नानक प्रकाश, अध्याय १)

जो हरि सब कार्यों को करने वाला है उसका नाम सिमरन कर। अर्थात्-उसका नाम सिमरन करके हरि=ब्रह्मा, सृष्टि के कार्यों को सम्पन्न करने वाला हुआ है।

हरि सिमरनि कीओ सगल अकारा ॥
हरि सिमरन महि आपि निरंकारा ॥

हरि ने अपना सिमरन करवाने के लिए प्राणी को यह अकारा=देह प्रदान की है।

यथा-जेता कीता तेता नाउ।। *(जपुजी, पउड़ी १९)*

अर्थात्-हरि=ब्रह्मा ने सिमरन में लगकर सगल अकारा=सर्व व्यवस्था का निर्माण किया है।

आतमभू भलि रीति पछानति जां बलि सों परपंच बनाई।। ४६।। *(नानक प्रकाश)*

यानि - हरि के सिमरन में परमात्मा स्वयं आकर दर्शन देता है।

अर्थात्-परमात्मा के सिमरन में स्वयं हरि=विष्णु लगा हुआ है।

करि किरपा जिसु आपि बुझाइआ॥

परमेश्वर ने स्वयं कृपा करके जिसे यह भेद समझा दिया है।

नानक गुरमुखि हरि सिमरनु तिनि पाइआ॥ ८॥ १॥

गुरु जी कथन करते हैं, उसने गुरमुखि=मुख्य गुरु से हरि का सिमरन करना सीखा है।। ८।। १।।

(दूसरी असटपदी)

परमेश्वर के समक्ष निवेदन करते हैं-

सलोकु॥ दीन दरद दुख भंजना घटि घटि नाथ अनाथ॥

हे दीन=निर्धनों के दुख दर्द को भंजना=नाश करने वाले प्रभु! आप कण कण में व्यापक तथा अनाथों के नाथ हो।

सरणि तुम्हारी आइओ नानक के प्रभ साथ॥ १॥

गुरु जी कथन करते हैं, हे प्रभु! आप मुझ सेवक के साथ ही हो, इसलिए मैं आप जी की शरण में आया हूँ।। १।।

[पृष्ठ २६४]

असटपदी॥ जह मात पिता सुत मीत न भाई॥
मन ऊहा नामु तेरै संगि सहाई॥

हे भाई! जिस जगह मां-बाप, पुत्र-मित्र तथा भाई आदि कोई सहायक नहीं होगा, हे मन! ऊहा=उस जगह तेरे साथ परमेश्वर का नाम ही सहाई होगा।

जह महा भइआन दूत जम दलै॥ तह केवल नामु संगि तेरै चलै॥

जिस परलोक के मार्ग में बड़े भयानक यमदूत जीव को दलै=मारेंगे। उस स्थान पर तेरे साथ केवल=सिर्फ एक परमेश्वर का नाम ही चलेगा।

जह मुसकल होवै अति भारी॥ हरि को नामु खिन माहि उधारी॥

जिस जगह तुझे भारी मुसकल=तकलीफ होगी। उस जगह एक क्षण में हरि का नाम तुझे दुखों से उधारी=बचा लेगा।

अनिक पुनहचरन करत नही तरै ॥ हरि को नामु कोटि पाप परहरै ॥

जिन पापों से अनेक तरह के पुनहचरन=प्रायश्चित करते हुए भी तुम्हारा तरना अर्थात् छुटकारा नहीं होगा। हरि का नाम उन करोड़ों पापों को परहरै=नाश कर देता है।

यथा-**घोर दुख्यं अनिक हत्यं जनम दारिद्रं महा बिख्यादं।।** *(पृष्ठ १३५५)*

गुरमुखि नामु जपहु मन मेरे ॥ नानक पावहु सूख घनेरे ॥ १ ॥

गुरु साहिब जी कहते हैं, हे मेरे मन! गुरमुखि=गुरु के द्वार पर नाम सिमरन करो, तो घनेरे=अधिकतर सुखों की प्राप्ति करोगे।। १।।

सगल स्रिसटि को राजा दुखीआ ॥ हरि का नामु जपत होइ सुखीआ ॥

चाहे सारी दुनिया का राजा है, परन्तु नाम सिमरन के बिना दुखी है। चाहे गरीब है, परन्तु हरि का नाम सिमरन करके वह सुखी है।

भाई हेमा चाहे कितना भी निर्धन था, टूटी हुई झोंपड़ी में रहता था, परन्तु उसके सिमरन को देखकर गुरु साहिबान ने कहा —

बसता तूटी झुंपड़ी चीर सभि छिंना।।
जाति न पति न आदरो उदिआन भ्रमिंना।।
मित्र न इठ धन रूपहीण किछु साकु न सिंना।।
राजा सगली स्रिसटि का हरि नामि मनु भिंना।। *(जैतसरी वार, पृष्ठ ७०७)*

अर्थात् - सम्पूर्ण सृष्टि में से चाहे कोई राजा दुखों से पीड़ित भी है, भाई प्रेमे की भान्ति कुष्टी भी है, परन्तु हरि का नाम जपने से वह सुखी हो जाता है।

प्रसंग-साधु बनने वाले का

एक राजा की चार रानियां थीं, वह सभी राजा को स्नान करवाती थीं। एक दिन गर्मी की ऋतु में ठण्डे पानी से स्नान करवाकर छोटी रानी राजा का शरीर पोंछ रही थी, साथ में रो रही थी। रोने के कारण आंखों का गर्म पानी राजा के ठण्डे शरीर पर पड़ा तो राजा ने उसे रोने का कारण पूछा, 'रानी ने कहा कि मेरे भाई का पत्र आया है कि मैं साधु बनने लगा हूँ, यदि तुमने मिलना है तो आठ दिनों के अन्दर-अन्दर आकर मिल जाओ। इसलिए मैं रो रही हूँ। राजा ने कहा, "तुम रो मत, वह साधु नहीं बनेगा।"रानी ने कहा, "उसके विचार तो पहले से ही ऐसे थे, इसलिए उसने अवश्य ही साधु भेष धारण कर लेना है।"

राजा ने कहा, जो मनुष्य साधु होते हैं, वह पूछ कर या पत्र लिखकर नहीं होते, वैराग के कारण बिना पूछे ही घर त्याग कर चले जाते हैं।

रानी कहने लगी, वैराग किस प्रकार का होता है? राजा ने सभी रानियों को अपने पास बुलाकर कहा, "यदि आप सभी कहो तो मैं वैराग का स्वरूप दिखाता हूँ।" सभी

ने कहा, "दिखाओ।"

उस समय राजा ने एक धोती पहनी हुई थी, कहने लगा, "आज के पश्चात् आप सब मेरी माता हो, आप इस राज्य को सम्भालो, मैं चलता हूँ।" इतना कहकर राजा निकल पड़ा। तत्पश्चात् सभी रानियां विलाप करने लगीं तथा वज़ीर को साथ लेकर राजा के पास पहुंची। सभी ने चरण पकड़ विनय की तथा बहुत विलाप किया, परन्तु राजा ने एक न सुनी। फिर बड़ी रानी ने प्रश्न किया, "आपने साधु भेष धारण क्यों किया है?"

राजा ने कहा, ब्रह्म सुख को अनुभव करने के लिए साधु बन रहा हूँ। राज-पाट में रह कर उस ब्रह्म सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। हरि का नाम सिमरन करने से सुखी हो जाऊँगा। इसलिए साधु अवस्था में जा रहा हूँ।

रानी ने कहा, ब्रह्म रस लेना अति कठिन है, आप नहीं ले सकोगे। यह न हो कि ब्रह्म रस की प्राप्ति में सांसारिक सुखों से भी वंचित हो जाओ। फिर आप दोनों ओर से ही विरक्त हो जाओ।

जैसे बगुले को अपनी पत्नी का कहना न मानने पर दोनों ओर से रसहीन होना पड़ा। यदि आप भी मेरा कहना न मानोगे तो आपको भी न तो सांसारिक रस मिलेगा तथा न ही ब्रह्मानन्द प्राप्त होगा।

जैसे समुद्र के किनारे एक बगुला-बगुली का जोड़ा रहता था। उनका आपसी प्रेम बहुत था, दोनों इक्ट्ठे ही मछली पकड़ कर खाते थे।

समुद्र के किनारे पर नारियलों के वृक्ष थे। एक दिन वहां पर हंस आ गये, वह अपनी चोंच मारकर नारियल में से दूध पीने लगे तथा उसमें से कुछेक बूंदें नीचे जमीन पर गिर गईं। उन्हें देखकर बगुला बगुली से कहने लगा, "यह भी हमारी भान्ति ही हैं, दूध क्यों पीते हैं, मछली क्यों नहीं खाते?" बगुली ने कहा, यह हमारी तरह सफेद होने पर भी बगले नहीं यह तो हंस हैं, यह तो दूध में मिले हुए पानी को भी अलग कर देते हैं, हम नहीं कर सकते।"

बगुले ने कहा, "चलो हम भी दूध का स्वाद देखें। जो दूध ज़मीन पर गिरा हुआ था उसे वह पीने लगे तो बहुत स्वाद आया। बगुले ने कहा, "हम तो यूं ही मछलियों के कांटे खाते रहे, हम भी इनके भाई हैं, इसलिए हमेशा दूध ही पिया करें।" बगुली ने कहा, "विधाता ने हमारे लिए तो मछलियां ही बनाई हैं, दूध तो हंसों के लिए है, हम हंस नहीं बन सकते, इसलिए मैं प्रतिज्ञा नहीं करती तथा तुम भी प्रतिज्ञा न करो"।

बगुले ने कहा, "मैं तो प्रतिज्ञा करता हूँ कि कभी भी मछली नहीं खाऊँगा।" बगुली ने बहुत समझाया परंतु मूर्ख बगुला न समझा।

प्रतिदिन वहां आकर ज़मीन पर गिरा हुआ दूध पीने लगा। कई दिनों तक तो

****
निर्वाह होता रहा, जब कुछ दिन बीते और नारियलों के फलों में कमी आ गई तो हंस उड़ कर कहीं और चले गये। बगुला-बगुली वृक्षों के नीचे फल ढूंढने लगे कि कोई फल गिरा हुआ ही मिल जाये, परन्तु कोई न मिला।

फिर वृक्ष पर लगे फल देखकर बगुला-बगुली को कहने लगा कि फल तो लगे हुए हैं, आओ हम स्वयं ही तोड़ कर दूध पी लें।

बगुली ने कहा, "इन फलों को हम नहीं तोड़ सकते, हमारी चोंच नाजुक है। मूर्ख बगुले ने अपनी स्त्री (बगुली) का कहना न माना और वृक्ष पर चढ़ गया। नारियल को अपनी चोंच से तोड़ने लगा तो चोंच नारियल में ही फंस गई तथा उसके साथ ही लटक गया, अन्त में तड़प-तड़प कर अपने प्राण त्याग दिये।

जैसे उस मूर्ख बगुले ने अपनी बगुली का कहना नहीं माना तथा दूध का स्वाद लेते-लेते मछलियों से भी चला गया। इसी प्रकार तुम भी अपनी पतिव्रता पत्नी का कहना न मानोगे तो ब्रह्मानन्द लेते-लेते इन विषय-रसों से भी वंचित हो जाओगे। इसलिए आप घर वापिस चलो तो ठीक है। राजा ने कहा, मैं ऐसा मूर्ख नहीं,जो तुम्हारा कहना मानकर ब्रह्मानन्द को त्याग दूं और विषय-विकारों में लीन हो जाऊँ। तुम्हारे कहने पर यदि मैं घर जाता हूँ तो मैं मूर्ख कहलाऊंगा।

राजा ने वार्ता सुनते हुए कहा, एक निर्धन ज़िमींदार का एक लड़का तथा एक कन्या थी। जिस घर में वह कन्या विवाहोपरान्त गई तो वहां पर गाय भैंसें बहुत थीं। कन्या ने सोचा कि मेरे मायके में कोई भी गाय-भैंस नहीं है, मैं अपने भाई को यहां बुला कर बहुत सा दूध मक्खन खिला कर बलवान् बनाकर भेज दूं। यह बात सोच कर उसने अपने भाई को बुला लिया।

ग्रीष्म ऋतु थी, उस कन्या ने प्रातः ही उठकर दही को मथन किया और मक्खन निकाला, अपने सोये हुए भाई को उठाया, स्नानादि करवाकर उसके हाथ पर मक्खन का पेड़ा रख दिया और कहा इसे शीघ्रता से खा लो। उसने कभी मक्खन खाया नहीं था, वह उसे देखने लगा। इतने में सूर्य की तपन के कारण मक्खन पिघल कर उसके हाथ से नीचे गिरने लगा। वह मूर्ख हाथ वाले मक्खन को छोड़कर नीचे गिरे मक्खन को खाने लग पड़ा। तत्पश्चात् ऊपर से एक चील आई और वह हाथ वाला मक्खन उठाकर ले गई तथा कुछ मिट्टी में गिरा गई। वह वहां पर खड़ा रोता ही रह गया।

मैं कोई ऐसा मूर्ख नहीं हूँ, जो महापुरुषों के बताये हुये ब्रह्म आनन्द का त्याग कर आपके विषय-आनन्द में व्यस्त होकर सारी उम्र रोता ही रहूं।

चाहे सारी सृष्टि का राजा भी हो, लेकिन महापुरुषों के वचन अनुसार नहीं चलेगा तो सारी उम्र दुखी रहेगा। यदि महापुरुषों के वचन अनुसार विषय-रस को त्याग हरि नाम सिमरन करेगा तो वह संसार में सुखी जीवन व्यतीत करेगा। इतना कह राजा ने जंगलों की ओर प्रस्थान कर दिया।

लाख करोरी बंधुन* परै॥ हरि का नामु जपत निसतरै॥

चाहे लाख करोड़ बंधन भी पड़ जाएं, परन्तु हरि नाम का जाप करके बंधनों से निसतरै=मुक्त हो जाता है।

अनिक माइआ रंग तिख न बुझावै॥ हरि का नामु जपत आघावै॥

माया के अनेकों रंग=आनन्द भी जिस भूख प्यास को नहीं बुझा सकते, हरि नाम का सिमरन करके उस भूख प्यास से हृदय तृप्त हो जाता है।

जिह मारगि इहु जात इकेला॥ तह हरि नामु संगि होत सुहेला॥

जिन यम रास्तों में से यह जीव अकेला जाता है, उस जगह हरि का नाम ही इसका सुहेला=सुखदायी संगि=संगी अर्थात - साथी होता है।

ऐसा नामु मन सदा धिआईऐ॥ नानक गुरमुखि परम गति पाईऐ॥ २॥

गुरु जी कथन करते हैं, ऐसे नाम की गुरु द्वारे हमेशा हृदय में अराधना करें, तभी परम गति=सिर्फ मुक्ति प्राप्ति होती है॥ २॥

छूटत नही कोटि लख बाही॥ नामु जपत तह पारि पराही॥

प्रत्यक्ष लाख-करोड़ बाजूओं वाला भी, यानि-भ्राताओं रूपी, मित्रों रूपी लाख करोड़ बाजूओं वाला पुरुष भी जिस यम से छूट नहीं सकता, नाम सिमरन वाला पुरुष उस यम से मुक्त हो जाता है।

अनिक बिघन जह आइ संघारै॥ हरि का नामु ततकाल उधारै॥

अनेकों बिघन=रुकावटें जहां आकर जीव को संघारै=मारती हैं। वहां हरि का नाम आकर जीव को ततकाल=शीघ्र ही विघ्नों से उधारै=बचा लेता है।

अनिक जोनि जनमै मरि जाम॥ नामु जपत पावै बिस्राम॥

जो पुरुष अनेकों योनियों में पैदा होता है व मरता है, मर कर फिर पैदा होता है। वह पुरुष नाम सिमर कर बिस्राम=आराम पाता है।

हउ मैला मलु कबहु न धोवै॥ हरि का नामु कोटि पाप खोवै॥

---

*"बंधुन" वाले "ध" को 'उ' की मात्रा (औंकड़ पंजाबी में) लगी समझ कर "न" अक्षर अलग नहीं बोलना, सम्प्रदाय मर्यादानुसार बंधुन शब्द इकट्ठा है। इसी प्रकार कई शब्द आते हैं। जैसे- **१. गुरमुखि मुकतो 'बंधुन' पाइ॥ सबदु बीचारि छुटै हरि नाइ॥**

(गउड़ी महला १, पृष्ठ १५२)

२. सचु मन काररिण ततु बिलोवै॥ सुभर सरवरि 'मैलुन' धोवै॥

(आसा महला १ असटपदीआ, पृष्ठ ४११)

३. दुतीआ 'जमुन' गए गुरि हरि हरि जपनु कीआ॥

(तुखारी महला ४, पृष्ठ १११६)

****

जो अहंकार की मैल के कारण मैला है तथा उस मैल को कभी धो नहीं सकता, हरि का नाम उस मैल को धोकर करोड़ों पापों को खोवै=नाश कर देता है।

ऐसा नामु जपहु मन रंगि॥ नानक पाईऐ साध कै संगि॥ ३॥

ऐसे नाम को हृदय में प्रेम भावना से जपो। गुरु साहिब जी कहते हैं, परन्तु यह नाम संतों के संग से ही प्राप्त होता है।। ३।।

जिह मारग के गने जाहि न कोसा॥ हरि का नामु ऊहा संगि तोसा॥

जिस यम मारग=परलोक मार्ग के कोस गिने नहीं जाते*। हरि का नाम उस मार्ग में जीव के साथ तोसा=खर्चा बनकर जाता है।

(यात्रा के समय जो खाना-पीना साथ ले जाया जाता है, उसे 'तोसा' कहते हैं)

प्रसंग-मूर्ख राजा का

एक राजा परमात्मा की ओर से अविवेकी था, परन्तु उसकी रानी प्रातः उठकर स्नानादि कर प्रभु के सिमरन में लीन हो जाती थी। वह नियमबद्ध सिमरन किये बगैर कुछ भी खाती-पीती नहीं थी। वह अपने पति को भी बार-बार कहती, "मानव देह प्राप्त करना बहुत दुर्लभ है, इसे निष्फल मत गवाओ, प्रातः उठकर प्रभु का सिमरन करके इसे सफल करो।"

परन्तु राजा ने रानी की एक न सुनी, हठी बनकर सोया रहे, उठकर फिर अपने कार्यों में व्यस्त हो जाया करे।

आखिर रानी ने क्रोधित होकर कह दिया, "आप बड़े मूर्ख हो, जो प्रभु का सिमरन नहीं करते।

उस समय राजा ने विचार किया कि इसने जो मुझे मूर्ख कहा है इसमें भी कोई न कोई भेद है, मुझे समझ नहीं आई कि मुझ में क्या मूर्खता है। उसी समय राजा ने अपने शहर में ढिंढोरा फिरा कर सभी मूर्ख एकत्र किये। उसने सभी में से जो अधिक मूर्ख था उसके हाथ में बहुमुल्य सोने की छड़ी पकड़ा कर कहा, जो तुझ से भी ज्यादा मूर्ख हो उसे यह छड़ी दे देना, इतना कह सभी को वापिस भेज दिया।

कुछ समय व्यतीत होने के पश्चात् राजा बीमार हो गया तथा वजीर को कहकर उस मूर्ख को अपने पास बुलवाया मूर्ख ने आते ही पूछा, "राजन् क्या बात है?" तो राजा ने कहा, "मैं जा रहा हूँ, तुझे कोई बड़ा मूर्ख मिला है या नहीं।

उस मूर्ख ने पूछा - राजन् आप कहां जा रहे हो?

राजा ने कहा - मैं परलोक की यात्रा करने जा रहा हूँ।

मूर्ख ने पूछा - आप यात्रा करके फिर वापिस कब आओगे?

---

*धर्म शास्त्र में भी परलोक का मार्ग ३६५ दिनों का अर्थात् एक वर्ष का लिखा है।

राजा ने कहा - फिर मैं वापिस नहीं आऊंगा।

मूर्ख ने पूछा - हे राजन्! आप ने कितने कोस दूर जाना है?

राजा ने कहा - उस मार्ग के कोसों की कोई गिनती नहीं है।

मूर्ख ने हैरान होकर पूछा - अच्छा! इतनी दूर आपने जाना है। परन्तु आप यह बताओ कि आप के साथ कौन जायेगा?

रानियां, राजकुमार, सैनाएं, वजीर अथवा अन्य कोई संबंधी इन में से कोई जायेगा?

राजा ने कहा - इनमें से मेरे साथ कोई भी नहीं जायेगा। मैं अकेला ही जाऊंगा।

मूर्ख ने पूछा - खजाने में से कुछ धन आदि तो लेकर ही जाओगे, मार्ग में खाने-पीने के लिए कुछ सामान भी ले जाओगे?

राजा ने कहा - कुछ भी नहीं लेकर जाऊंगा, खाली हाथ आया था और खाली हाथ ही जाऊँगा।

यह बात सुनकर मूर्ख ने कहा - हे राजन्! यदि इतनी धन-सम्पत्ति पाकर भी तुम अपने रास्ते के लिए कुछ भी नहीं लेजा सकते तथा सहायता के लिए किसी संबंधी या सिपाही आदि को भी नहीं ले जा सकते तो सभी मूर्खों में से बड़े मूर्ख आप ही हैं, जो इतनी समझ रखते हुए भी आप ने अपनी ज़िन्दगी में न तो प्रभु का सिमरन किया, न दान-पुण्य किया तथा न ही कोई सदाचारी का कार्य करके दुनिया में यश प्राप्त किया।

इसलिए आप ही यह छड़ी सम्भाल लें।

वह मूर्ख तो राजा को छड़ी सौंप कर चला गया, तत्पश्चात् राजा अपनी रानी के वचनों को याद कर मन ही मन विचार करने लगा कि यदि मैं उस समय रानी के कहने पर दान-पुण्य व प्रभु सिमरन कर लेता तो उस ने आज मेरे साथ जाकर मेरी सहायता करनी थी, परन्तु मैं मूर्ख ने कुछ भी न किया। इसलिए परलोक के लम्बे मार्ग में मेरी किसी ने सहायता नहीं करनी।

साहिब श्री गुरु नानक देव जी अपने मुखारबिंद से कथन करते हैं-

कपड़ु रूपु सुहावणा छडि दुनीआ अंदरि जावणा।।
मंदा चंगा आपणा आपे ही कीता पावणा।।
हुकम कीए मनि भावदे राहि भीड़ै अगै जावणा।।
नंगा दोजकि चालिआ ता दिसै खरा डरावणा।।
करि अउगण पछोतावणा।। १४।।

(आसा दी वार, पृष्ठ ४७०)

जिह पैडै महा अंध गुबारा॥ हरि का नामु संगि उजीआरा॥

जिस यम मार्ग में घोर अन्धेरा है। हरि का नाम जीव के साथ वहां उजीआरा=प्रकाश (रौशनी) करता है।

जहा पंथि तेरा को न सिञानू॥ हरि का नामु तह नालि पछानू॥

****

जिस यम मार्ग में तेरा कोई सिञानू= वाकिफ नहीं बनेगा। हरि का नाम वहां तेरा जानकार मित्र होगा।

जह महा भइआन तपति बहु घाम ॥ तह हरि के नाम की तुम ऊपरि छाम ॥

जिस यम मार्ग में बहुत भयानक घाम=धूप की बहुत तपति=गर्मी पड़ती है। वहां तेरे ऊपर हरि के नाम की छाम=छाया होगी।

जहा त्रिखा मन तुझु आकरखै ॥ तह नानक हरि हरि अंम्रितु बरखै ॥ ४ ॥

जिस यम मार्ग में त्रिखा=प्यास तेरे मन को आकरखै=खींचेगी, अर्थात् सतायेगी। गुरु साहिब जी कथन करते हैं, वहां हरि हरि के नाम-अमृत की वर्षा तेरे ऊपर बरसेगी।।४।।

भगत जना की बरतनि नामु ॥ संत जना कै मनि बिस्रामु ॥

परमेश्वर के भक्तों की बाहरी क्रिया भी नाम की है तथा संतों के हृदय में भी नाम का बिस्रामु=निवास है।

हरि का नामु दास की ओट ॥ हरि कै नामि उधरे जन कोटि ॥

हरि का नाम सेवकों की ओट रूप है यानी ढाल रूप है। हरि के नाम करके करोड़ों गुरमुख जन कामादिक से उधरे=बच गये हैं।

हरि जसु करत संत दिनु राति ॥ हरि हरि अउखधु साध कमाति ॥

सन्त रात दिन हरि का सिमरन करते हैं। सन्त हमेशा हरि हरि नाम जाप रूपी अउखधु=दवाई का कमाति=सेवन करते हैं।

हरि जन कै हरि नामु निधानु ॥ पारब्रहमि जन कीनो दान ॥

हरि के सन्तों के पास हरि नाम रूप निधानु=खज़ाना है। पारब्रह्म ने ही सन्त जनों को नाम दान देना किया है।

मन तन रंगि रते रंग एकै ॥ नानक जन कै बिरति बिबेकै ॥ ५ ॥

हृदय करके भी एक के प्रेम में लीन हैं, तन करके भी एक के प्रेम में लीन हुए हैं। अर्थात्- मन तन के रंगि=प्रेम करके एक वाहिगुरु के रंग=आनन्द में लीन हुए हैं।

गुरु साहिब जी कथन करते हैं, सन्त जनों की प्रवृत्ति विवेकाधीन होती है। अर्थात्-सन्तों की बिरति=उपजीविका विवेक वाली होती है अर्थात्-सन्तों के हृदय में बिरति=वैराग तथा विवेक यह दोनों साधन मुख्य हैं।

हरि का नामु जन कउ मुकति जुगति ॥ हरि कै नामि जन कउ त्रिपति भुगति ॥

हरि का नाम ही सन्त जनों को मुक्ति तथा युक्ति देने वाला है, अथवा-मुक्ति की युक्ति देने वाला है। हरि का नाम ही सन्तों को सन्तुष्टि देने वाला भोजन है, अर्थात्-खुराक है।

हरि का नामु जन का रूप रंगु॥ हरि नामु जपत कब परै न भंगु॥

हरि का नाम ही सन्त जनों का सुन्दर रूप तथा रंग है। हरि नाम जपते हुए कभी भी भंगु=विघ्न नहीं पड़ता।

हरि का नामु जन की वडिआई॥ हरि कै नामि जन सोभा पाई॥

हरि का नाम ही सन्त जनों की वडिआई रूप है। हरि के नाम करके सन्त जनों ने शोभा पाई है।

[पृष्ठ २६५]

हरि का नामु जन कउ भोग जोग॥ हरि नामु जपत कछु नाहि बिओगु॥

हरि का नाम ही सन्त जनों को भोग तथा योग देने वाला है। अर्थात्- नाम ही भोग है, नाम ही योग है। यथा - हरि नाम जपने से कुछ भी बिओगु=दुख नहीं होता। अर्थात्- प्रभु से कुछ समय भी बिओगु=विछोड़ा नहीं होता।

जनु राता हरि नाम की सेवा॥ नानक पूजै हरि हरि देवा॥ ६॥

जो गुरमुख जन हरि नाम की सेवा में लीन है। गुरु जी कथन करते हैं, उस गुरमुख जन की हरि=विष्णु व हरि=शिव जी तथा ब्रह्मा तीनों देवते पूजा करते हैं।। ६।।

हरि हरि जन कै मालु खजीना॥ हरि धनु जन कउ आपि प्रभि दीना॥

गुरमुख जनों के पास हरि नाम ही माल है, हरि नाम ही खज़ाना है। गुरमुख जनों को प्रभु ने आप ही हरि नाम धन दिया है।

हरि हरि ज़न कै ओट सताणी॥ हरि प्रतापि जन अवर न जाणी॥

गुरमुख जनों के पास हरि हरि नाम ही सताणी=रक्षक रूप है। गुरमुख जन हरि के प्रभाव कारण अन्य किसी को नहीं जानते।

ओति पोति जन हरि रसि राते॥ सुंन समाधि नाम रस माते॥

गुरमुख जन ओति पोति=ताणे पेटे की भान्ति हरि रस में राते=तदाकार हो रहे हैं। गुरमुख जन नाम रस में माते=मस्त होकर सुंन समाधि=र्निविकल्प समाधि में लीन होते हैं। अर्थात्-जो नाम रस में मस्त हुए हैं, यही उनकी सुन्न समाधि है।

आठ पहर जनु हरि हरि जपै॥ हरि का भगतु प्रगट नही छपै॥

गुरमुख जन आठ पहर हरि हरि नाम को जपते हैं। इसी कारण हरि का भक्त प्रत्येक स्थान पर प्रकट होता है, छपै=छुपा नहीं रहता।

यथा- **गोबिंद गोबिंद गोबिंद संगि नामदेउ मनु लीणा।।**
आढ दाम को छीपरो होइओ लाखीणा।। १।। रहाउ।।
बुनना तनना तिआगि कै प्रीति चरन कबीरा।।

****

नीच कुला जोलाहरा भइओ गुनीय गहीरा।। १।।
रविदासु ढुवंता ढोर नीति तिन्हि तिआगी माइआ।।
परगटु होआ साधसंगि हरि दरसनु पाइआ।। २।। *(आसा महला ५, पृष्ठ ४८७)*

हरि की भगति मुकति बहु करे॥ नानक जन संगि केते तरे॥ ७॥

गुरु जी कथन करते हैं कि हरि की भक्ति ने बहुत से पुरुष मुक्त किये हैं। गुरमुख जनों के साथ मिल कर कितने ही पुरुष पार हुए हैं।। ७।।

पारजातु इहु हरि को नाम॥ कामधेन हरि हरि गुण गाम॥

जो हरि का नाम है यही सभी फल प्रदान करने वाला पारजातु=कलप वृक्ष है।★ जो हरि हरि के गुणों का गाम=गायन करना है, यही मनवान्छित फल देने वाली कामधेनु गाय है, जो स्वर्गों में रहती है।

यथा- **इछा पूरकु सरब सुखदाता हरि जा कै वसि है कामधेना।।**
सो ऐसा हरि धिआईऐ मेरे जीअड़े ता सरब सुख पावहि मेरे मना।। १।।

(पृष्ठ ६७०)

सभ ते ऊतम हरि की कथा॥ नामु सुनत दरद दुख लथा॥

हरि की कथा सर्व श्रेष्ठ है।

यथा- **निरगुण कथा कथा है हरि की।। भजु मिलि साधू संगति जन की।।**
तरु भउजलु अकथ कथा सुनि हरि की।। १।।
जो हरि की हरि कथा सुणावै।। सो जनु हमरै मनि चिति भावै।।

(गउड़ी मः ४, पृष्ठ १६४)

हरि नाम सुनने से दुख दर्द अर्थात्-हृदय का दर्द तथा शरीर का दुख दूर हो जाता है, यानि- मिट जाता है। कथा के सुनने से सारे पाप उतर जाते हैं।

यथा - सुणि हरि कथा उतारी मैलु।। महा पुनीत भए सुख सैलु।।

(गउड़ी मः ५, पृष्ठ १७८)

अर्थात्- **नीकी जीअ की हरि कथा ऊतम आन सगल रस फीकी रे।।**
बहु गुनि धुनि मुनि जन खटु बेते अवरु न किछु लाईकी रे।।

(आसा महला ५, पृष्ठ ४०४)

नाम की महिमा संत रिद वसै॥ संत प्रतापि दुरतु सभु नसै॥

हरि नाम की महिमा सन्तों के हृदय में वास कर रही है। सन्तों के प्रताप के कारण सभी दुरतु=पाप दूर हो जाते हैं।

★चारि पदारथ हरि की सेवा।। पारजातु जपि अलख अभेवा।। (माझ मः ५, पृष्ठ १०८)

****

संत का संगु वडभागी पाईऐ ॥ संत की सेवा नामु धिआईऐ ॥

सन्तों का सत्संग बड़े भाग्यों से प्राप्त होता है। सन्तों की सेवा करके ही नाम का सिमरन होता है।

नाम तुलि कछु अवरु न होइ ॥ नानक गुरमुखि नामु पावै जनु कोइ ॥ ८ ॥ २ ॥

नाम के तुलि=समान अन्य कुछ नहीं हो सकता। गुरु जी कथन करते हैं, कोई विरला गुरमुख जन ही गुरु से नाम प्राप्त करता है।। ८।। २।।

अर्थात्- सभी साधनों तथा सभी पदार्थों से एक नाम ही श्रेष्ठ है, इसके समान अन्य कोई वस्तु नहीं हो सकती है। यदि गुरु की कृपा हो तो ही नाम की प्राप्ति हो सकती है।

(तीसरी असटपदी)

सलोकु॥ बहु सासत्र बहु सिम्रिती पेखे सरब ढढोलि ॥

अत्यन्त शास्त्रों को पढ़ा है, अत्यन्त स्मृतियों को भी पढ़ा है तथा सभी ग्रन्थों को भी ढूंढ कर देखा है।

पूजसि नाही हरि हरे नानक नाम अमोल ॥ १ ॥

गुरु साहिब जी कहते हैं, हरि हरि नाम के समान कोई नहीं पहुंच सकता, क्योंकि हरि हरि का नाम सभी से अमूल्य है, अर्थात्-अमोल=मूल्य से हीन है, इसका मूल्य नहीं पाया जा सकता।। १ ।।

असटपदी ॥ जाप ताप गिआन सभि धिआन ॥ खट सासत्र सिम्रिति वखिआन ॥

चाहे जप करे, चाहे तप करे, चाहे सभी बातें ज्ञान की करे, चाहे ध्यान लगा कर बैठ जाए। चाहे छः शास्त्र तथा सताईस स्मृतियों का वखिआन=व्याख्यान करता फिरे।

जोग अभिआस करम ध्रम किरिआ ॥ सगल तिआगि बन मधे फिरिआ ॥

चाहे योग अभ्यास करे, चाहे अन्य कर्म-धर्म की क्रिया करे। चाहे स्त्री, पुत्र आदि सभी (सम्बन्धियों) को, तिआगि=त्याग कर, बन=जंगलों में फिरे।

अनिक प्रकार कीए बहु जतना ॥ पुंन दान होमे बहु रतना ॥

चाहे अनेक प्रकार के बहुत यत्न भी कर ले। संक्रान्ति, अमावस, पूर्णिमा आदि समय में पुण्य कर ले, हमेशा दान करता रहे तथा देवताओं की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए बहुत सा रतना=घी आहुति के समय आग में हवन करे, क्योंकि ऋगवेद तथा यजुर्वेद में यज्ञ करने की काफी महिमा बताई गई है।

सरीरु कटाइ होमै करि राती ॥ वरत नेम करै बहु भाती ॥

****

राती=रत्ती रत्ती भर शरीर को कटवा कर, आग में हवन कर दे तथा अनेक प्रकार के व्रत करके अपने नियमों को पूरा करे। अर्थात्-यम्र नेम आदि साधन भी कर ले।

यथा- **अरध सरीरु कटाईऐ सिरि करवतु धराइ।।**
तनु हैमंचलि गालीऐ भी मन ते रोगु न जाइ।।
हरि नामै तुलि न पुजई सभ डिठी ठोकि वजाइ।।

(सिरीरागु मः १, पृष्ठ ६२)

नही तुलि राम नाम बीचार॥ नानक गुरमुखि नामु जपीऐ इक बार॥ १॥

परन्तु राम-नाम के विचार समान कोई साधन नहीं है। गुरु जी कथन करते हैं, दिन में एक बार ज़रूर सत्संग में जाकर गुरु के समक्ष नाम सिमरन करें।।१।।

नउ खंड प्रिथमी फिरै चिरु जीवै॥ महा उदासु तपीसरु थीवै॥

चाहे चिरु जीवै=चिरंजीव होकर नवखण्ड वाली पृथ्वी पर घूमता रहे, महा=महान् उदासीन होकर बड़ा तपस्वी हो जाए।

अगनि माहि होमत परान॥ कनिक अस्व हैवर भूमि दान॥

चाहे आग में बैठकर प्राणों की आहुति दे दे। चाहे कनिक अस्व=सोने के घोड़े, चाहे हैवर=श्रेष्ठ (खुरासानी) घोड़े दान कर दे। अथवा-चाहे कनिक=सोना दान करे, चाहे हैवर=श्रेष्ठ जो अस्व=घोड़े हैं, वह दान करे, चाहे भूमि दान कर दे।

यथा- **तनु बैसंतरि होमीऐ एक रती तोलि कटाइ।।**
तनु मनु समधा जे करी अनदिनु अगनि जलाइ।।
हरि नामै तुलि न पुजई जे लख कोटी करम कमाइ।। २।।.......
कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु।।
भूमि दानु गऊआ घणी भी अंतरि गरबु गुमानु।।

(सिरीरागु मः १, पृष्ठ ६२)

निउली करम करै बहु आसन॥ जैन मारग संजम अति साधन॥

चाहे निउली=नित्य कर्म (योग कर्म) आदि करता रहे, चाहे कितने भी आसन लगाने सीख ले* चाहे जैन मत्त के मार्ग वाले अति=कठिन साधन सीख ले।

निमख निमख करि सरीरु कटावै॥ तउ भी हउमै मैलु न जावै॥

चाहे निमख निमख=रत्ती रत्ती करके शरीर कटवा दे फिर भी हृदय में से अहंकार की मैल नहीं जा सकती।

---

*सिधा के आसण जे सिखै इंद्री वसि करि कमाइ।।
मन की मैलु न उतरै हउमै मैलु न जाइ।। (पृष्ठ ५५८)

****
हरि के नाम समसरि कछु नाहि ॥ नानक गुरमुखि नामु जपत गति पाहि ॥ २ ॥

हरि नाम के समसरि=समान कुछ भी नहीं है। गुरु जी कथन करते हैं, गुरु द्वारा नाम का सिमरन करे तो ही गति=मुक्ति प्राप्त कर सकता है।। २।।

यथा= **हरि हरि हरि हरि हरि जन ऊतम किआ उपमा तिन्ह दीजै।।**
राम नाम तुलि अउरु न उपमा जन नानक क्रिपा करीजै।। ८।। १।।

(कलिआन म: ४, पृष्ठ १३२४)

मन कामना तीरथ देह छुटै ॥ गरबु गुमानु न मन ते हुटै ॥

चाहे मन की कामना=इच्छानुसार तीर्थों पर शरीर छूट जाये। अथवा -चाहे मन कामना=मनीकरण तीर्थ पर शरीर छूट जाए। (प्रान्त कुल्लू में यह मनीकरण तीर्थ है) फिर भी गरबु=अहंकारी मानव के हृदय में से गुमानु=अभिमान नहीं जाता। अर्थात्-जाति का गरबु=अहंकार तथा विद्या का गुमानु=अहंकार हृदय में से नहीं जाता।

सोच करै दिनसु अरु राति ॥ मन की मैलु न तन ते जाति ॥

चाहे सारा दिन तथा सारी रात शरीर की सोच=पवित्रता करता रहे। परन्तु तन की पवित्रता करने से मन की पाप रूपी मैल नहीं जाती।

इसु देही कउ बहु साधना करै ॥ मन ते कबहू न बिखिआ टरै ॥

इस शरीर को कष्ट देकर चाहे बहुत से साधन भी कर ले। फिर भी हृदय से कभी विषयों की मैल दूर नहीं होती।

जलि धोवै बहु देह अनीति ॥ सुध कहा होइ काची भीति ॥

अनीति=झूठी देह को चाहे जल से धोता रहे, परन्तु यह भी एक अनीति वाली बात है। क्योंकि काची भीति=कच्ची दीवार ने क्या शुद्ध होना है।

मन हरि के नाम की महिमा ऊच ॥ नानक नामि उधरे पतित बहु मूच ॥ ३ ॥

हे मन ! हरि के नाम की महिमा सबसे ऊंची है। गुरु साहिब जी कहते हैं कि नामी के नाम करके अजामल जैसे बहु मूच=अत्यन्त पापी भी मुक्त हो गये हैं।। ३।।

[पृष्ठ २६६]

बहुतु सिआणप जम का भउ बिआपै ॥ अनिक जतन करि त्रिसन ना ध्रापै ॥

अधिक अकलमन्दी दिखाने से भी यमों का भय बिआपै=लगता है। अनेकों यत्न करके भी मन तृष्णा से ध्रापै=सन्तुष्ट नहीं है।

भेख अनेक अगनि नही बुझै ॥ कोटि उपाव दरगह नही सिझै ॥

अनेकों भेष धारण करने से भी माया की तृष्णा रूपी आग नहीं बुझती। करोड़ों

उपाव=यत्न करने से भी परलोक में से सिझै=छुटकारा नहीं होता। अर्थात्- सिझै=मुक्त रूप नहीं होता।

छूटसि नाही ऊभ पइआलि॥ मोहि बिआपहि माइआ जालि॥

ऊभ=ऊंचे आकाश में तथा नीचे पइआलि=पाताल में जाने से भी छुटकारा नहीं होता। यह जीव माया के मोह रूपी जाल में फंसा हुआ है।

अर्थात्-माया का मोह होने के कारण ही यमों के जाल में पड़ जाता है।

अवर करतूति सगली जमु डानै॥ गोविंद भजन बिनु तिलु नही मानै॥

अन्य सभी कर्मों के करतूति=करने से धर्मराज दण्ड देता है। क्योंकि गोबिन्द के भजन=सिमरन के बिना अन्य कर्मों-धर्मों को तिलु=जरा भी नहीं मानता।

हरि का नामु जपत दुखु जाइ॥ नानक बोलै सहजि सुभाइ॥ ४॥

हरि का नाम जपते ही सारा दुख चला जाता है। गुरु साहिब जी कथन करते हैं, प्राणी को चाहिये कि सहजि सुभाइ=सहज स्वभाव ही नाम सिमरन करता रहे।। ४।।

चारि पदारथ जे को मागै॥ साध जना की सेवा लागै॥

जो कोई पुरुष (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) चारों पदार्थ मांगता है। वह सन्त जनों की सेवा में लग जाए।

जे को आपुना दूखु मिटावै॥ हरि हरि नामु रिदै सद गावै॥

जो कोई अपना दुख मिटाना चाहता है, वह हमेशा हृदय में हरि हरि नाम सिमरन करता रहे।

जे को अपुनी सोभा लोरै॥ साधसंगि इह हउमै छोरै॥

जो कोई पुरुष अपनी शोभा लोरै=चाहता है, तो वह सत्संग में बैठकर इस अहंकार को छोरै=छोड़ दे।

जे को जनम मरण ते डरै॥ साध जना की सरनी परै॥

जो कोई पुरुष जन्म-मरन से डरता है, तो वह सन्तों की शरण में पड़े।

जिसु जन कउ प्रभ दरस पिआसा॥ नानक ता कै बलि बलि जासा॥ ५॥

जिस पुरुष को प्रभु के दर्शनों की पिआसा=लालसा है। गुरु जी कहते हैं कि हम उस से (बलिहार) कुर्बान जाते हैं।। ५।।

सगल पुरख महि पुरखु प्रधानु॥ साधसंगि जा का मिटै अभिमानु॥

सभी पुरुषों में वह प्रधान पुरुष है। साध-संगति करके जिसका अभिमानु=अहंकार मिट जाता है।

****

आपस कउ जो जाणै नीचा ॥ सोऊ गनीऐ सभ ते ऊचा ॥

जो अपने आप को नीचा जानता है। वही सभी पुरुषों से ऊंचा गिना जाता है।

जा का मनु होइ सगल की रीना ॥ हरि हरि नामु तिनि घटि घटि चीना ॥

जिसका हृदय सभी के चरणों की रीना=धूल हुआ है। उसने हरि हरि नाम जप कर प्रत्येक कण-कण में हरि को चीना=जान लिया है, अर्थात्-पहचान लिया है।

मन अपुने ते बुरा मिटाना ॥ पेखै सगल स्रिसटि साजना ॥

जिसने अपने हृदय में से बुरा स्वभाव मिटा दिया है। वह सम्पूर्ण सृष्टि को अपना बन्धु समझ कर देखता है। अर्थात्-सृष्टि में सभी लोगों को मित्र मानकर देखता है।

सूख दूख जन सम द्रिसटेता ॥ नानक पाप पुंन नही लेपा ॥ ६ ॥

जो पुरुष सुख दुख को सम=एक समान करके द्रिसटेता=देखता है। गुरु साहिब कथन करते हैं, उसे पाप व पुण्य का कोई अन्तर नहीं होता।। ६।।

निरधन कउ धनु तेरो नाउ ॥ निथावे कउ नाउ तेरा थाउ ॥

जो पुरुष धन से दूर है उसे आप जी का नाम ही धन है। स्थानहीन पुरुष को आप जी का नाम ही स्थान है।

निमाने कउ प्रभ तेरो मानु ॥ सगल घटा कउ देवहु दानु ॥

निमाने=मान रहित पुरुष को हे प्रभु ! आप जी का नाम ही मान रूप है। क्योंकि आप सभी शरीरों को दान देते हो।

करन करावनहार सुआमी ॥ सगल घटा के अंतरजामी ॥

हे स्वामी ! तू आप ही सभी कार्यों के करने कराने वाला है। सभी शरीरों के अन्दर की आप ही जानने वाले हो।

घट घट के अंतर की जानत।। *(पातिशाही १०)*

अपनी गति मिति जानहु आपे ॥ आपन संगि आपि प्रभ राते ॥

अपनी मुक्ति की मर्यादा को आप स्वयं ही जानते हो। हे प्रभु ! आप अपने साथ ही राते=समाये हुए हो। आप जैसा अन्य कोई दूसरा पदार्थ नहीं, जिसकी उपमा आपको दें। इस करके उपमेय रूप तथा उपमान रूप आप ही हो।

यथा- **उपमेय आप पुन आपे उपमान हैं।।** *(नानक प्रकाश अध्याय १)*

अर्थात्-अपने भक्तों के साथ हे प्रभु ! आप स्वयं मिले हुए हो।

तुम्हरी उसतति तुम ते होइ ॥ नानक अवरु न जानसि कोइ ॥ ७ ॥

आपकी स्तुति आपके द्वारा ही हो सकती है। गुरु साहिब जी कहते हैं, (आपकी

****
स्तुति को) अन्य कोई नहीं जान सकता।। ७।।

सरब धरम महि स्रेसट धरमु॥ हरि को नामु जपि निरमल करमु॥

सभी धर्मों में से यही श्रेष्ठ धर्म है। सभी कर्मों में से यही निर्मल कर्म है जो हरि का नाम सिमरन है।

प्रसंग–बानिये के पुत्र का

एक बानिये का पुत्र व्यापार करता था तथा उसका पिता स्वयं सत्संग में जाकर प्रतिदिन कथा सुनता था। पिता ने अपने पुत्र से कहा हुआ था कि यदि दुकान पर कोई बड़ा ग्राहक आ जाये, तो मुझे बुला लिया कर।

एक दिन कोई बड़ा ग्राहक दुकान पर आ गया और उस ग्राहक ने पूछा, बेटा! तुम्हारे पिता जी कहां हैं? लड़के ने कहा, आप बैठो, मैं अभी बुला कर लाता हूँ। जब वह लड़का अपने पिता को बुलाने गया तो आगे कथा में वैष्णव धर्म का प्रसंग चल रहा था कि वैष्णवों को गाय ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिये। चाहे अपने प्राणों का ही क्यों न त्याग करना पड़े, परन्तु गाय ब्राह्मण की सेवा नहीं छोड़नी चाहिये और न ही इन्हें मारकर इन का निरादर करना चाहिये। जो धर्म की रक्षा करते हैं, समय आने पर धर्म उनकी रक्षा करता है। इतनी कथा सुनकर उस लड़के ने अपने हृदय में बसा ली। फिर उसने अपने पिता को कहा, दुकान पर एक ग्राहक आया हुआ है, आप चलें। पिता ने उत्तर दिया, बेटा ! तुम चलो, मैं अभी आता हूँ। लड़का दुकान पर वापिस आ गया। इतने में एक भूखी गाय उस दुकान पर आकर अनाज खाने लगी, लड़के ने उसे अनाज खाने से रोका नहीं।

पिता ने दूर से ही आते हुए देखा कि दुकान पर गाय अनाज खा रही है और लड़का उसे हटा नहीं रहा है। पिता ने आते ही कहा, "अरे ओ अन्धे ! गाय अन्न खा रही है तू इसे हटाता क्यों नहीं।" पिता की बात सुनकर भी लड़के ने गाय को नहीं हटाया। फिर पिता ने क्रोधित स्वरों में कहा तो पुत्र ने उत्तर दिया, "पिता जी ! क्रोधित क्यों हो रहे हो, आज सत्संग में क्या कथा सुनकर आये हो।" आज की कथा में सन्तों ने कहा था, "सिमरन तथा गाय ब्राह्मण की सेवा करनी ही परम धर्म है।" इसी बात का मेरे हृदय पर गहरा प्रभाव हुआ है, इसीलिए ही मैंने गाय को अन्न खाने से नहीं हटाया। आप भी गाय को मत मारें और उसे अनाज खा लेने दें। लड़के द्वारा ऐसे वचन सुनकर पिता को गुस्सा आ गया और गाय को डण्डे मार कर हटाने लगा और पुत्र को कहा, "तू कोई मेरा गुरु है, जो मुझे इस प्रकार उपदेश दे रहा है। जा, तू मेरे घर से निकल जा, मैं तुझे अपने घर में नहीं रख सकता।

पिता के इतने वचन सुनकर लड़का घर छोड़कर चला गया। रास्ते में जाते-जाते उसने एक अन्य कौतुक देखा कि एक सांप ने अपने मुंह में मेंढक को पकड़ा हुआ है

तथा मेंढक तड़प रहा है। उस लड़के के मन में दया आई तथा उसने किसी प्रकार से मेंढक को सांप के मुंह में से छुड़वा दिया। उसी समय इच्छाधारी सांप ने कहा, मैं तीन दिन से भूखा था तथा मैंने इसे खाने के लिए पकड़ा था, तूने मेरा भोजन छीन कर अच्छा नहीं किया, मैं तुझे श्राप दे दूंगा। उसी समय लड़के ने सांप को प्रसन्न करने के लिए अपनी जाँघ में से माँस का टुकड़ा निकाल कर दे दिया। सांप उसे खाकर खुश हुआ और चला गया।

तत्पश्चात् वह लड़का भी अपने ज़ख्म पर पट्टी बाँध कर चला गया। आगे चलकर एक बूढ़ी औरत मिली जो सिर पर गठड़ी उठाये जा रही थी। उसके हृदय में दया आई तथा उस बूढ़ी औरत से कहने लगा, माता ! तुम बुजुर्ग हो इसलिए यह गठड़ी मुझे उठाने दो तथा मैं तुम्हारे साथ-साथ चलूंगा।

बूढ़ी औरत ने कहा, यदि तुम मेरे धर्म के पुत्र बनोगे तो मैं तुझे यह गठड़ी उठाने दूंगी, अन्यथा नहीं। अन्त में धर्म पुत्र बन कर बूढ़ी औरत की गठड़ी उठाई और साथ में धीरे-धीरे चलने लगा। इतने में एक व्यक्ति घोड़ा लेकर आ रहा था, उसे देखकर बूढ़ी औरत ने धर्म-पुत्र से कहा, मैं थक गई हूं तुम मुझ से रुपये लेकर इस घोड़े को खरीद लो। धर्म पुत्र ने रुपये देकर वह घोड़ा खरीद लिया तथा दोनों मां-पुत्र घोड़े पर स्वार होकर चल पड़े। आगे चलकर उन्हें एक भूख से व्याकुल बालक मिला, उसने औरत को माता कहकर पुकारा। उस औरत ने कहा, "इसे तुम अपना धर्म भ्राता समझकर घोड़े पर बिठा लो।" उस औरत का कहना मानकर उस लड़के को भी घोड़े पर स्वार कर लिया। चलते-चलते वह एक राजधानी में पहुंच गये। माता ने अपनी गठड़ी में से एक डिब्बा निकाला और उस में से दो लाल (रत्न) धर्म पुत्रों को देकर कहा कि यह रत्न राजा को देकर इनके बदले में रुपये ले आओ। दोनों लड़कों ने राजा के पास जाकर वह रत्न दिखाये तथा उनके बदले में अत्यन्त धन प्राप्त करके माता के पास आ गये। माता की इच्छानुसार एक आलीशान मकान खरीद कर उसमें रहने लग पड़े तथा हीरे-जवाहरात आदि का व्यापार करने लगे। जिससे वहां के राजा को वह बहुत प्यारे लगने लगे।

राजा के पास एक अंगुठी थी, जिसके प्रभाव द्वारा स्वर्ग से चार अप्सराएँ आती थीं। वे उस राजा की इच्छानुसार उसे पालकी में बिठा कर प्रत्येक स्थान की सैर करवा कर लाती थीं। एक दिन राजा दोनों लड़कों के साथ नदी में स्नान करने गया। स्नान करते समय राजा की वह अंगुठी पानी में गिर गई। राजा ने कहा, "ऐसा कोई है जो मेरी अंगुठी पानी में से निकाल कर लाए, मैं उसका विवाह अपनी राजकुमारी के साथ कर दूंगा। छोटे भाई ने कहा, "हे राजन्! यदि तुम अपनी राजकुमारी का विवाह मेरे भाई के साथ कर दो तो अंगुठी मैं निकाल कर ला देता हूं। राजा ने उसकी बात को स्वीकार कर लिया। वह तुरन्त पानी में गया और राजा की अंगुठी निकाल कर ले आया। राजा खुश होकर उन्हें अपने महल में ले गया। उसके बड़े भाई से अपनी राजकुमारी

का विवाह कर दिया। राजा के कोई अपना पुत्र भी न था। उसी समय राजा ने अपना राज्य भी उसे सौंप दिया। उस के पश्चात् वह बानिये का पुत्र प्रभु की कृपा से कुशल शासक बन गया। राज्य मिल जाने पर भी वह लड़का सन्तों के वचन अनुसार प्रातः उठकर स्नानादि कर ईश्वर की भक्ति किया करे तथा धर्म मर्यादानुसार अपने नियमों का पालन किया करे।

छः मास व्यतीत होने पर उस बूढ़ी औरत ने कहा, "अब मुझे मेरे घर छोड़ आओ।" धर्म माता के वचन मानकर वह तीनों रात के समय ही उसी घोड़े पर सवार हो कर चल पड़े। प्रातः होते ही सबसे पहले घोड़ा बोला, "अब मुझे भी छुट्टी दो और कहा आपने मुझे पहचाना भी है कि नहीं?" बानिये के पुत्र ने कहा, नहीं। घोड़े ने कहा, "मैं वह सांप हूं जिसे आपने अपनी जाँघ का मांस खिलाया था।" तुरन्त ही दूसरा लड़का बोला, "मैं वह मेंढक हूं, मुझे सांप के मुंह में से निकाल कर मेरी प्राण रक्षा की थी।"

मैंने रक्षार्थ नदी में छलांग लगा कर राजा की अंगुठी निकाल कर आपका विवाह राजकुमारी से करवा दिया।

वृद्ध औरत ने कहा, "मैं वह गाय हूं जो आपकी दुकान पर जाकर अनाज खाने लग गई थी तो आपने मुझे हटाया नहीं था। पिता जी की नाराज़गी सहन करके भी आपने धर्म न छोड़ा।

जैसे आपने धर्म की पालना की है, उसी प्रकार हमने भी प्रभु की कृपा से धर्म की पालना की है और आपको राज सिंहासन पर बिठा दिया है। इतना कह सभी अपने-अपने मार्ग पर चले गये।

इसीलिए गुरु साहिब जी कथन करते हैं कि सभी धर्मों में से इस प्रकार का धर्म करना उचित है।

सगल क्रिआ महि ऊतम किरिआ॥ साधसंगि दुरमति मलु हिरिआ॥

सभी क्रियाओं में से यही उत्तम क्रिया है, जो सत्संगति करनी है, क्योंकि सत्संगति करने से दुरमति=मन्द बुद्धि की मैल हिरिआ=दूर हो जाती है।

सगल उदम महि उदमु भला॥ हरि का नामु जपहु जीअ सदा॥

सभी प्रयासों में से यह भला=उत्तम प्रयास है। जो हृदय में प्रायः हरि का नाम सिमरन करना है।

सगल बानी महि अंम्रित बानी॥ हरि को जसु सुनि रसन बखानी॥

समस्त वाणी में से यही वाणी अमृत रूप है। जो कानों से हरि यश का सुनना है तथा रसीले स्वरों द्वारा बखानी=व्याख्यान करना है।

अर्थात्- सगल बानी=सभी आदतों में से वह बानी=आदत अमृत रूप है, जो कानों

****

द्वारा हरि का गुणगान सुनना है तथा जिह्वा द्वारा हरि का नाम सिमरन करना है।

सगल थान ते ओहु ऊतम थानु ॥ नानक जिह घटि वसै हरि नामु ॥ ८ ॥ ३ ॥

समस्त स्थानों में वह स्थान सर्वश्रेष्ठ है। गुरु साहिब जी कथन करते हैं कि जिस हृदय में हरि का नाम रचा हुआ है।। ८।। ३।।

(चौथी असटपदी)

सलोकु ॥ निरगुनीआर इआनिआ सो प्रभु सदा समालि ॥

हे गुणहीन, इआनिआ=अन्जान (ना समझ) प्राणी! उस मालिक (प्रभु) को हमेशा याद रख।

जिनि कीआ तिसु चीति रखु नानक निबही नालि ॥ १ ॥

गुरु जी कहते हैं कि जिस प्रभु ने तुझे पैदा किया है, उसे हृदय में प्रायः याद रख, वही तुझ से अन्त तक निभायेगा।। १।।

असटपदी ॥ रमईआ के गुन चेति परानी ॥ कवन मूल ते कवन द्रिसटानी ॥

हे प्राणी ! तुम रमईआ=सर्व व्यापक जो प्रभु है, उसके गुणों को याद कर।

पानी मैला माटी गोरी।। इस माटी की पुतरी जोरी।। *(पृष्ठ ३३६)*

इस प्रकार किस मूल से, अर्थात्-गन्दे पानी से तुझे क्या बना दिखाया है, अर्थात्-तेरे शरीर को सुन्दर बना दिया है।

कवन मूलु प्रानी का कहीऐ कवन रूपु द्रिसटानिओ।।

जोति प्रगास भई माटी संगि दुलभ देह बखानिओ।। *(सारग मः ५, पृष्ठ १२१६)*

जिनि तूं साजि सवारि सीगारिआ ॥ गरभ अगनि महि जिनहि उबारिआ ॥

जिस परमेश्वर ने पाँचों तत्वों द्वारा सवारि=तेरे शरीर को बनाया, सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों द्वारा तुझे सिंगारा है तथा गर्भ की अग्नि में से जिसने तुझे उबारिआ=बचाया है।

मात गरभ महि आपन सिमरन दे तह तुम राखनहारे।। (पृष्ठ ६१३)

बार बिवसथा तुझहि पिआरै दूध ॥ भरि जोबन भोजन सुख सूध ॥

बार बिवसथा=बचपन में जिसने माँ के स्तनों से तुझे दूध पिआरै=पिलाना किया है तथा भरी जवानी में जिसने तुझे स्वादिष्ट भोजन खाने की तथा सुख लेने की सूध=सुध, अर्थात् - खबर दी है।

बिरधि भइआ ऊपरि साक सैन ॥ मुखि अपिआउ बैठ कउ दैन ॥

जिस समय तुम बूढ़े हो गये तो तेरी सेवा के लिए तुम पर साक सैन=सम्बन्धी खड़े कर दिये। फिर जिस ने बैठे बिठाये तेरे मुंह में अपिआउ=भोजन डाल दिये हैं। अर्थात्-उस प्रभु की कृपा द्वारा पलंग पर बैठे ही तुझे खाने को सब कुछ मिल रहा है।

****

[पृष्ठ २६७]

इहु निरगुनु गुनु कछू न बूझै॥ बखसि लेहु तउ नानक सीझै॥ १॥

गुरु साहिब जी कथन करते हैं, हे प्रभु! यह गुणहीन जीव आपके किये हुए परोपकार आदि गुण को कुछ भी नहीं समझता है। यदि आप ही बख्श लोगे तो ही यह सीझै=कल्याण (मुक्त) रूप होगा।। १।।

जिह प्रसादि धर ऊपरि सुखि बसहि॥ सुत भ्रात मीत बनिता संगि हसहि॥

जिस प्रभु की प्रसादि=कृपा द्वारा तुम पृथ्वी पर सुखी बस रहे हो तथा सुत=पुत्र, भ्रात=भाई, मित्र तथा बनिता=स्त्री आदि के साथ हंसता खेलता हैं।

जिह प्रसादि पीवहि सीतल जला॥ सुखदाई पवनु पावकु अमुला॥

जिस प्रभु की प्रसादि=कृपा से तुम ठण्डा पानी पीते हो तथा जिस की कृपा से अमुला=मूल्य के बिना ही सुख देने वाली हवा तथा अग्नि मिल रही है।

जिह प्रसादि भोगहि सभि रसा॥ सगल समग्री संगि साथि बसा॥

जिस प्रभु की प्रसादि=कृपा द्वारा सभी रसों को भोग रहे हो तथा समस्त सामग्री के संगि=साथ सुखी बस रहा हैं।

दीने हसत पाव करन नेत्र रसना॥ तिसहि तिआगि अवर संगि रचना॥

जिस प्रभु ने तुझे हसत=हाथ, पाव=पैर, करन=कान, नेत्र=आंखें तथा रसना=जिह्वा आदि सभी इन्द्रे प्रदान किये हैं। उस प्रभु को छोड़ कर तुम अन्य प्राणियों के साथ रचना=रच रहे हो, यानि मिल रहे हो।

ऐसे दोख मूड़ अंध बिआपे॥ नानक काढि लेहु प्रभ आपे॥ २॥

गुरु साहिब जी कहते हैं, इस मूर्ख अन्धे में ऐसे ही दोख=अवगुण हैं, हे प्रभु ! आप ही कृपा करके इस को गुनाहों में से निकालो।। २।।

आदि अंति जो राखनहारु॥ तिस सिउ प्रीति न करै गवारु॥

जो प्रभु आदि से लेकर अन्त तक अर्थात्-बाल्यावस्था से लेकर अंति=मरने तक रखने वाला है। यह गवारु=मूर्ख उस से प्रीत नहीं करता।

जा की सेवा नव निधि पावै॥ ता सिउ मूड़ा मनु नही लावै॥

जिस प्रभु की सेवा करके जीव नवनिधि प्राप्त करता है यह मूर्ख प्राणी उससे अपना हृदय नहीं जोड़ता।

जो ठाकुरु सद सदा हजूरे॥ ता कउ अंधा जानत दूरे॥

जो स्वामी परमात्मा प्रायः उपस्थित है। यह अन्धा अज्ञानी पुरुष उसे दूर जानता है।

****

जा की टहल पावै दरगह मानु॥ तिसहि बिसारै मुगधु अजानु॥

जिसकी सेवा (टहल) सेवा (सिमरन) करके यह जीव यमपुरी में मानु=सम्मान प्राप्त करता है। यह मूर्ख अज्ञात पुरुष उसे बिसारै=भूला बैठा है।

सदा सदा इहु भूलनहारु॥ नानक राखनहारु अपारु॥ ३॥

यह प्राणी सदा सदा=नित्यप्रति भूलने वाला है। गुरु साहिब जी कथन करते हैं, वह अपारु=अनन्त प्रभु स्वयं ही इसकी रक्षा करने वाला है।। ३।।

रतनु तिआगि कउडी संगि रचै॥ साचु छोडि झूठ संगि मचै॥

नाम=रत्न को छोड़कर कउडी= माया से रचै= लगा हुआ है। सत्य बोलना छोड़कर झूठ बोलने में मचै=व्यस्त हो रहा है।

जो छडना सु असथिरु करि मानै॥ जो होवनु सो दूरि परानै॥

जो शरीर त्याग देना है उसे सत्य मान रहा है, जो होना है, उसे दूर परानै=पहचानता है, इस प्रकार कहता है कि मैंने तो मरना ही नहीं, मौत मेरे नज़दीक कैसे आ सकती है?

छोडि जाइ तिस का स्रमु करै॥ संगि सहाई तिसु परहरै॥

जिस माया को यहीं छोड़कर चले जाना है, उस के लिए स्रमु=कष्ट सहन करता है। जिस ने अंग-संग होकर सहायता करनी है, उसे इस प्राणी ने परहरै=त्याग दिया है।

चंदन लेपु उतारै धोइ॥ गरधब प्रीति भसम संगि होइ॥

जैसे गधे को कोई चन्दन का लेप कर दे तो गधा उसे मिट्टी में लेट कर उतार देता है क्योंकि गधे की प्रीत भसम=राख से अर्थात्-मिट्टी से होती है। ऐसे ही गधे की भान्ति जो कामी-जीव है, यदि उसे नाम रूपी चन्दन का लेप करें तो कामी-जीव उसे कुसंगति, अर्थात्-विषय-वासना रूपी पानी से धो देता है, क्योंकि कामी-जीव की विषय रूप भसम से प्रीत होती है।

अंध कूप महि पतित बिकराल॥ नानक काढि लेहु प्रभ दइआल॥ ४॥

बिकराल-भयानक अन्धे कुएं संसार में यह पतित=गिर रहा है। गुरु जी कथन करते हैं, हे दयालू जी! आप स्वयं ही निकाल लो।। ४।।

यथा - **अंध कूप महि पतित होत जगु संतहु करहु परम गति मेरी।।**

(सारग म: ५, पृष्ठ १२१६)

करतूति पसू की मानस जाति॥ लोक पचारा करै दिनु राति॥

इसकी जाति तो मनुष्य है, परन्तु करतूति=कार्यरत्ता पशुओं वाली है तथा रात-दिन लोक पचारा=लोग दिखावे का कार्य करता रहता है।

बाहरि भेख अंतरि मलु माइआ॥ छपसि नाहि कछु करै छपाइआ॥

बाहरी भेस तो साधुओं वाला बनाया हुआ है, परन्तु हृदय में माया की मैल है। चाहे छपाइआ=छुपाने के यत्न कुछ भी करे, अन्दर की मैल छुप नहीं सकती।

बाहरि गिआन धिआन इसनान॥ अंतरि बिआपै लोभु सुआनु॥

बाहर से तो ज्ञान की बातें करता है, ध्यान लगाता है तथा तीर्थों पर स्नानादि करता है। परन्तु हृदय में लोभ रूपी सुआनु=कुत्ता घुसा हुआ है, अर्थात् हृदय लोभ से भरा हुआ है।

अंतरि अगनि बाहरि तनु सुआह॥ गलि पाथर कैसे तरै अथाह॥

हृदय में माया की तृष्णा रूपी आग है तथा-बाहर शरीर पर राख लगाई हुई है। जिस के गले में पत्थर हो, वह अथाह=गहरे समुद्र में कैसे तैर सकेगा। इसी प्रकार जिस के गले में यानि हृदय में पाप रूपी पत्थर पड़े हैं।

अथवा - लोग दिखावा, माया, लोभ-तथा तृष्णा रूपी पत्थर हैं, वह संसार-समुद्र कैसे तैर सकते हैं ?

जा कै अंतरि बसै प्रभु आपि॥ नानक ते जन सहजि समाति॥ ५॥

गुरु साहिब जी कथन करते हैं, जिन के हृदय अन्दर स्वयं परमेश्वर बस रहा हो, वह मनुष्य सहज स्वभाव ही प्रभु में लीन हो जाते हैं।। ५।।

सुनि अंधा कैसे मारगु पावै॥ करु गहि लेहु ओड़ि निबहावै॥

किसी ने आवाज़ देकर कहा, "तुम उसके पास चले जाओ।" क्या इतनी बात सुन कर अन्धा व्यक्ति रास्ता पावै=ढूंढ सकता है ? हां, यदि कोई उसका करु=हाथ पकड़ ले तो जहां उसने जाना है उसे अन्त तक उसकी मंजिल पर निबहावै=पहुंचा देता है। इसी प्रकार शुद्ध मन बुद्धि रूपी आंखों के बिना जो अन्धा व्यक्ति है, वह वेद-शास्त्रों को सिर्फ सुनने मात्र ही ज्ञान वैराग रूपी रास्ते को कैसे प्राप्त कर सकता है ? यदि गुरु साहिब जी उसके हृदय रूपी हाथ को पकड़ लें तो अन्त तक, अर्थात्- परमेश्वर तक उसे पहुंचा देते हैं।

कहा बुझारति बूझै डोरा॥ निसि कहीऐ तउ समझै भोरा॥

जो कानों से बहरा है, वह व्यक्ति पहेली कैसे समझ सकता है। क्योंकि उसे निसि=रात कहें तो वह भोरा=दिन ही समझेगा, यदि दिन कहें तो रात समझेगा। इसी प्रकार निश्चय विचार रूपी कानों के बिना जो बहरा व्यक्ति है, वह परमेश्वर प्राप्ति की शिक्षा को कैसे समझ सकता है? यदि उसे संसार को रात की भान्ति झूठा कहा जाये तो वह संसार को भोरा=दिन की तरह सफेद समझता है। यदि आत्मा को दिन की भान्ति प्रकाश रूप

****
कहें तो वह आत्मा को निसि=रात की तरह झूठा समझता है।

कहा बिसन पद गावै गुंग॥ जतन करै तउ भी सुर भंग॥

गूंगा व्यक्ति विष्णु पद कैसे गा सकता है। यदि वह गाने का प्रयत्न भी करे तो पूर्ण आवाज न निकलने के कारण उसकी सुर भंग=स्वर टूट जाती है।

इसी प्रकार प्रीती रूप जिह्वा से हीन जो व्यक्ति गूंगा है, वह विष्णु जी के पद=यश को कैसे गायेगा ? यदि वह गाने का प्रयत्न भी करे तो उसकी सुर=वृत्ति, भंग=टूट जाती है।

कह पिंगुल परबत पर भवन॥ नही होत ऊहा उसु गवन॥

पिंगला जिसकी टांगे नहीं हैं, वह व्यक्ति पहाड़ पर कैसे भवन=घूम सकता है। अर्थात्-कैसे भवन= घर बना सकता है ? वह तो वहां पर जा ही नहीं सकता। इसी प्रकार साधन रूपी पैरों के बिना जो पिंगला व्यक्ति है, वह पहाड़ समान असीमित परमात्मा में किस तरह अपना भवन=घर बना सकता है, क्योंकि साधनों के बिना मनुष्य उस परमात्मा की ओर गवन= चल नहीं सकता।

करतार करुणा मै दीनु बेनती करै॥ नानक तुमरी किरपा तरै॥ ६॥

गुरु जी कहते हैं, हे करुणा मै=कृपा स्वरूप करतार! मैं आपके आगे दीन हृदय होकर विनय करता हूं, कि यह प्राणी आपकी कृपा द्वारा ही भव-सागर से तर सकता है।। ६।।

संगि सहाई सु आवै न चीति॥ जो बैराई ता सिउ प्रीति॥

जो अंग-संग होकर प्राणी की सहायता करता है, वह प्रभु इसको याद आता ही नहीं। जो सम्बन्धी अर्थात्=कामादि इसके शत्रु हैं उनके साथ यह प्रीति करता है।

बलूआ के ग्रिह भीतरि बसै॥ अनद केल माइआ रंगि रसै॥

जैसे बलूआ=रेत का घर पक्का नहीं होता, वह अचानक ही गिर जाता है इसी प्रकार यह प्राणी पांचों तत्वों समान रेत के घर (शरीर) में बस रहा है तथा माया के रंग में रंग कर आनन्ददायक केल=खुशियां करता है।

अर्थात्=आनन्ददायक माया के रंग में केल= खेलों का रस प्राप्त कर रहा है।

द्रिड़ु करि मानै मनहि प्रतीति॥ कालु न आवै मूड़े चीति॥

हृदय को विश्वास द्वारा इन मायावी पदार्थों को द्रिड़ु=दृढ़ करके मानै=मानता है। अर्थात्-इन्हें सदा स्थिर जानता है। परन्तु मूर्ख मनुष्य को कालु=मौत याद नहीं आती।

बैर बिरोध काम क्रोध मोह॥ झूठ बिकार महा लोभ ध्रोह॥

वैर, विरोध, काम, क्रोध, मोह, झूठ, विषय-विकार, महा=अति लोभ, ध्रोह= छल (धोखेबाजी) इत्यादि विकारों को करता है।

[पृष्ठ २६८]

इआहू जुगति बिहाने कई जनम ॥ नानक राखि लेहु आपन करि करम ॥ ७ ॥

इसे ही युक्ति में, अर्थात्-इन्हीं विकारों में जुगति=जुड़े इस के कई जन्म व्यतीत हो गए हैं। गुरु जी कहते हैं, हे वाहिगुरु! अपनी करम=कृपा करके इसे रख लें।। ७।।

तू ठाकुरु तुम पहि अरदासि ॥ जीउ पिंडु सभु तेरी रासि ॥

हे परमेश्वर ! तुम स्वामी हो, तुम्हारे समक्ष हमारी विनय है। यह जीउ= जान तथा पिंडु= शरीर आदि सब तेरी ही दी हुई रासि=पूंजी है।

तुम मात पिता हम बारिक तेरे ॥ तुमरी क्रिपा महि सूख घनेरे ॥

आप हमारे माता-पिता हो, हम आपके बाल हैं। आपकी क्रिपा=देन में ही हमें घनेरे=बहुत सुख मिल रहे हैं।

कोइ न जानै तुमरा अंतु ॥ ऊचे ते ऊचा भगवंत ॥

हे प्रभु ! आप जी का अन्त कोई नहीं जान सकता। हे भगवान् ! आप सर्वोच्य हो, अर्थात्-ब्रह्मादि से भी आप ऊंचे हो।

सगल समग्री तुमरै सूत्रि धारी ॥ तुम ते होइ सु आगिआकारी ॥

संसार की सम्पूर्ण सामग्री आपकी आज्ञा रूपी अर्थात्-सत्ता रूप सूत्र में धारी=टिकी हुई है। जो सृष्टि आप जी द्वारा पैदा हुई है, वह सारी आप जी की आज्ञाकारी है, अर्थात्-आप जी के अधीन है। अथवा-जो भी सृष्टि हुई है, वह सारी तुम ते=आप जी से तथा आप जी की आगिआकारी=माया से बनी हुई है।

तुमरी गति मिति तुम ही जानी ॥ नानक दास सदा कुरबानी ॥ ८ ॥ ४ ॥

आपकी जो लीला की मिति=मर्यादा है, उसे आप स्वयं ही जानते हो। गुरु जी कहते हैं, मैं सेवक आप जी से प्रायः कुर्बान जाता हूं।। ८।। ४।।

(पाँचवीं असटपदी)

सलोकु ॥ देनहारु प्रभ छोडि कै लागहि आन सुआइ ॥

भेंट देने वाले प्रभु को छोड़कर जो आन सुआइ=अन्य प्रयोजनों में लगते हैं।

नानक कहू न सीझई बिनु नावै पति जाइ ॥ १ ॥

गुरु जी कथन करते हैं, उनका किसी तरह भी सीझई=कल्याण नहीं होता, नाम सिमरन के बिना उनकी इज्ज़त जाती रहती है।। १।।

असटपदी ॥ दस बसतू ले पाछै पावै ॥ एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै ॥

पहला अर्थ-किसी शाहूकार के पास एक नौकर काम करता था, काम-काज करते जब उसे कई साल व्यतीत हो गए तो उसकी नेक नियत्य देखकर शाहूकार के हृदय में

दया आ गई कि इसका परिवार बढ़ गया है, इसे कोई अलग व्यापार करवा दिया जाए तांकि अपना गुजारा अच्छा चला सके। यह बात सोचकर शाहूकार ने दस हज़ार रुपये देकर उसे अलग दुकान खुलवा दी तथा-एक हजार रुपये अलग देकर कहा, यह मेरी अमानत रख लो, जब कभी जरूरत पड़ेगी तो मैं तुझ से ले लूंगा। उसने वह रुपया लेकर रख लिया तथा गद्दी पर बैठ कर व्यापार को अच्छी तरह चलाया। कुछ समय पश्चात् जब शाहूकार ने आकर अपने एक हजार रुपये वापिस मांगे तो नौकर ने कहा, एक सप्ताह तक दूंगा। शाहूकार चुप-चाप चला गया। जब एक सप्ताह के पश्चात् शाहूकार ने फिर मांगा तो उसने जवाब दिया कि अभी तैयार नहीं हुए। आखिर कुछ चक्कर लगवाने के बाद वह मुकर ही गया कि अभी मैं आपके रुपये नहीं दे सकता। इस भाव को मुख्य रखकर गुरु साहिब जी कथन करते हैं कि दस बसतू ले पाछै पावै=दस हजार रुपया लेकर नौकर ने पीछे दुकान में डाल दिया, अर्थात्-सौदा लाकर दुकान भर ली, तथा-

एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै=एक हजार रुपये जो शाहूकार ने अपनी अमानत रखी थी, उस रुपये के न देने से नौकर अपना बिखोटि=विश्वास गवा लेता है।

एक भी न देइ दस भी हिरि लेइ॥ तउ मूड़ा कहु कहा करेइ॥

यदि शाहूकार एक हजार रुपये भी न देवे तथा दस हजार रुपये दिये हुए भी हिरि=छीन ले, अर्थात्-भी=पुनः एक हजार रुपये वापिस न देने के कारण यदि शाहूकार अपना दस हजार रुपये भी छीन ले तो बताओ वह मूर्ख क्या कर सकता है ?

जिसु ठाकुर सिउ नाही चारा॥ ता कउ कीजै सद नमसकारा॥

जिस मालिक से कोई ज़ोर नहीं चल सकता, उसे प्रायः नमस्कार करो।

इसी प्रकार परमेश्वर शाहूकार है, यह प्राणी उसके नौकर हैं। उस परमेश्वर ने सभी को दस इन्द्रे तथा एक मन दिया, देकर जीवों को कहा, "दसों इन्द्रों के साथ जो भी आपका व्यवहार है, वह तुम किये जाओ, परन्तु मन को संसार की ओर मत लगाना, यह मन मेरी ओर लगाकर रखना।" यह बातें सुनकर भी दस बसतू ले पाछै पावै=परमेश्वर से दस इन्द्रे लेकर जीव ने पाछै=संसार की ओर डाल दिये हैं।

एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै=एक मन-वस्तु के न देने के कारण बिखोटि=विश्वास गवा लेता है। एक भी न देइ दस भी हिरि लेइ=एक मन वस्तु के न देने के कारण भी=पुनः यदि वह दस इन्द्रे रूप वस्तु भी छीन ले।

अर्थात्-यदि वह परमेश्वर एक मन भी न दे तथा दस इन्द्रे भी छीन ले।

तउ मूड़ा कहु कहा करेइ=तो कहु=बताओ, यह मूर्ख क्या कर सकता है?

जिसु ठाकुर सिउ नाही चारा=जिस परमात्मा पर इस जीव का कोई ज़ोर नहीं चल सकता।

ता कउ कीजै सद नमसकारा=उसे हमेशा ही नमस्कार करो।

इसी प्रत्याशा से भक्त नामदेव जी ने त्रिलोचन को समझाया है-

नामा कहै तिलोचना मुख ते रामु संम्हालि।।

हाथ पाउ करि कामु सभु चीतु निरंजन नालि।। २१३।। (पृष्ठ १३७६)

दूसरा अर्थ - दस बसतू ले पाछै पावै।। एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै।।

जिस समय प्राणी मां के गर्भ में उल्टा लटका होता है, तो वह परमेश्वर के आगे विनय करता है, "मुझे इस संघन कोठड़ी में से निकालो तो मैं आपको दशमांश दूंगा।" इसकी विनय सुनकर जब परमेश्वर ने मां के गर्भ से बाहर निकाला तो बाहर आते ही उसे माया चिपक गई।

"विचहु गरभै निकलि आइआ।। खसमु विसारि दुनी चितु लाइआ।।" (पृष्ठ १००७)

उस माया के प्रभाव के कारण जो इसने दशमांश देने का वायदा किया था कि बाहर जाकर इन श्वासों द्वारा तेरा भजन करूंगा, वह सब भूल गया।

वही बात गुरु जी जताते हैं कि दशमांश वस्तु तो प्रभु से लेकर पीछे डाल दी। यानि सभी श्वास संसार की ओर लगा दिये हैं। दशमांश मान तो लेता है परन्तु देना बहुत कठिन लगता है।

प्रसंग-खजूर खाने वाले का

एक राहगीर जा रहा था, रास्ते में खजूरों के पेड़ पर रस भरे फल लगे देखकर उसका मन ललचा गया तथा धीरे-धीरे वह पेड़ पर चढ़ कर स्वादिष्ट फल खाकर आनन्द प्राप्त करने लगा। जब वह फल खाकर संतुष्ट हो गया तो नीचे उतरते समय डरने लगा। सोचा यदि मैं गिर गया तो हड्डियें टूट जाएंगी। एक प्रचलित कहावत भी लिखी गई है -

फकीरा फकीरी दूर है, जितनी ऊंची खजूर है।

चढ़ जाये तो अमृतरस, गिर जाये तो चकनाचूर है।

इसी भय के कारण उसने प्रभु के आगे प्रार्थना की, "यदि मैं ठीक ठाक नीचे उतर गया तो १०० चादरें सन्तों को जाकर दूंगा।" जिस समय मध्य में आ गया तो कहता है, "१०० चादरें तो ज्यादा हैं, ५० चादरें दे दूंगा।" जब थोड़ा और नीचे आ गया तो कहता है, "५० चादरें ज्यादा हैं, २५ चादरें दूंगा।" जब समस्त ठीक ठाक नीचे उतर आया तो कहता है, "२५ चादरें तो ज्यादा हैं, १२ दे दूंगा।" परन्तु जब दुकान पर जाकर चादरों का भाव पूछा तो माया खर्च करने से संकोच कर गया। केवल एक चादर लेकर सन्तों के पास आ माथा टेका। आगे सन्तों ने कहा, 'हमें कोई जरूरत नहीं इसे उठाकर ले जा।' उस प्रेमी ने कहा, 'महाराज जी ! इन्कार मत करो, वरना यह भी जाती रहेगी, क्योंकि मैंने पहले १०० चादरें देने का वायदा किया था, परन्तु मन बदल गया तथा एक ही चादर लेकर सोचा था कि यह भी आप न लोगे तो घर वापिस ले जाऊंगा,

इसलिए इसे आप स्वीकार करें, इन्कार मत करो।' इतना कह वह प्रेमी चादर रख कर चला गया। इस तरह दशमांश मानना सरल है, परन्तु देना अति कठिन है।

जैसे घर में अति गरीबी के कारण मनुष्य श्री गुरु रामदास साहिब जी के दरबार में जाकर नाक रगड़ता है, माथा टेकता है, झोली फैलाता है, झाड़ू लगाता है, अरदास करता है, कि 'हे सच्चे पातिशाह ! कृपा करके कमाई में वृद्धि करें तथा खुले भण्डार प्रदान करें। मैं आपको दशमांश दूंगा।' इसकी विनय सुनकर जब श्री गुरु रामदास साहिब जी ने खुले भण्डार प्रदान कर दिये तो लाख रुपया आ गया तो उसका दशमांश दस हजार बन गया, जिस समय दस हजार रुपये गिन कर अलग रखे तो देखकर कहता है कि यह तो ज्यादा हैं, इससे मेरे कई काम चल जाएंगे, मैं फिर कमा कर दे दूंगा।' फिर वह दशमांश वाला रुपया दुकान में डाल देता है। जीव की इस बात पर गुरु जी व्याख्यान करते हैं:-

तीसरा अर्थ - दस बसतू ले पाछै पावै=दशमांश वस्तु लेकर इस जीव ने दुकान में डाल दी। दशमांश वाला रुपया श्री गुरु रामदास साहिब जी को जाकर देना था परन्तु इसने नहीं दिया।

एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै=एक दशमांश वस्तु के न देने कारण यह जीव अपना बिखोटि=विश्वास खो बैठता है।

एक भी न देइ दस भी हिरि लेइ= इस दशमांश वस्तु न देने से भी=पुनः यदि परमात्मा शेष नौ भाग भी हिरि लेइ=छीन ले तो यह मूर्ख प्राणी क्या कर सकता है? इसी विचारानुसार दशमेश पिता जी ने भी कथन किया है-

बाबे के बाबर के दोऊ।। आप करे परमेसर सोऊ।।
दीन साह इन को पहिचानो।। दुनीपति उन कौ अनुमानो।। ९।।
जो बाबे के दाम न दैहै।। तिन को गहि बाबर के लैहै।।
दै दै तिन को बडी सजाइ।। पुनि लैहै ग्रहि लूटि बनाइ।। १०।।

(दसम ग्रन्थ, पृष्ठ ७१)

हरदयाल कवि जी कहते हैं -

धन के भागी चार हैं धरम चोर न्रिप आग।।
कोपै ता पै भ्रात त्रै करै जो जेसटै तिआग। *(सारुकतावली)*

इसलिए अपनी कमाई में से दशमांश देना जीव के लिए आवश्यक है।

चौथा अर्थ - परमेश्वर ने जीव को मकान, मरब्बे, कुएं, कोठियां, कारां, आदि अगिनत पदार्थ दिये हैं, यदि एक पुत्र नहीं दिया तो कहता है, "मुझे परमेश्वर ने कुछ भी नहीं दिया।" इस बात को गुरु जी यथार्थ स्पष्ट करते हैं।

दस बसतू ले पाछै पावै=अगिनत वस्तुयें प्रभु से पाकर यह प्राणी पीछे पा देता है, अर्थात्-भूल जाता है तथा कहता है, मुझे परमात्मा ने क्या दिया है?"

****

एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै=एक पुत्र वस्तु के न मिलने पर अपना बिखोटि=विश्वास गवा लेता है।

एक भी न देइ दस भी हिरि लेइ=यदि एक पुत्र भी न दे तथा दस= अगिनत वस्तुएं भी छीन ले।

तउ मूड़ा कहु कहा करेइ=तो बताओ, यह मूर्ख मनुष्य क्या कर सकता है।

पांचवां अर्थ - दस बसतू ले पाछै पावै।। एक बसतु कारनि बिखोटि गवावै।।

आत्मिक वस्तु ले=लेने के लिए सन्तों के पीछे पड़े, अर्थात्-सन्तों की शरण में जाकर उनकी सेवा करे तथा एक आत्मिक वस्तु की प्राप्ति के लिए अपने हृदय में से बिखोटि=विशेष तौर पर अशुद्धता नाश कर दे तो सन्त अपने उपदेश द्वारा उसे आत्मिक वस्तुएं दस=दस देते हैं।

एक भी न देइ दस भी हिरि लेइ।। तउ मूड़ा कहु कहा करेइ।।

एक यमों का भी=भय नहीं देते, बल्कि आत्म=वस्तु की प्राप्ति की शिक्षा बता कर भी=भय को हिरि लेइ=व्यर्थ कर देते हैं।

तो कहु=बताओ, उसे मूर्खता या अमूर्खता क्या कर सकती है ?

जिसु ठाकुर सिउ नाही चारा।। ता कउ कीजै सद नमसकारा।।

जिस ठाकुर-परमेश्वर पर कोई जोर नहीं चलता, उसे प्रायः नमस्कार करो।

जा कै मनि लागा प्रभु मीठा॥ सरब सूख ताहू मनि वूठा॥

जिसके मन में प्रभु स्वयं मीठा=प्यारा लगता है, अर्थात्-जिसके मन में प्रभु की कृपा मीठी लगती है। उसके मन में समस्त सुख समा जाते हैं।

जिसु जन अपना हुकमु मनाइआ॥ सरब थोक नानक तिनि पाइआ॥ १ ॥

जिस प्राणी से प्रभु ने अपने हुक्म की पालना करवाई है। गुरु साहिब जी कहते हैं, उसने सभी थोक=पदार्थों को पा लिया है।। १।।

अगनत साहु अपनी दे रासि॥ खात पीत बरतै अनद उलासि॥

साहु=बादशाह परमात्मा अपनी ओर से जीव रूप नौकर को अगिनत पदार्थों की भेंट देता है। उस भेंट को लेकर यह जीव आनन्द से खाता पीता है तथा उलासि=खुशी से उसे प्रयोग करता है।

अपुनी अमान कछु बहुरि साहु लेइ॥ अगिआनी मनि रोसु करेइ॥

यदि साहु=शाह परमेश्वर किसी समय अपनी अमान=अमानत में से कुछ बहुरि लेइ=वापिस ले ले तो अज्ञानी अभिकर्ता जीव मन में रोसु=रोष कर लेता है।

अपनी परतीति आप ही खोवै॥ बहुरि उस का बिस्वासु न होवै॥

(इस प्रकार करने से यह जीव) अपनी परतीति-खुशी ख्याति को स्वयं ही खोवै=खो

****

देता है। इसलिए बहुरि=फिर दोबारा उस शाह परमेश्वर का इस जीव पर बिस्वासु=विश्वास नहीं होता। अर्थात्-भरोसा नहीं होता।

जिस की बसतु तिसु आगै राखै॥ प्रभ की आगिआ मानै माथै॥

जिस परमात्मा की वस्तु इस जीव के पास है, यदि खुशी से उसके आगे रख दे तथा प्रभु की आज्ञा को अपने नतमस्तक लगाये।*

ऐसे कहे- **कबीर मेरा मुझ महि किछु नही जो किछु है सो तेरा।।**

तेरा तुझ कउ सउपते किआ लागै मेरा।। २०३।। (पृष्ठ १३७५)

उस ते चउगुन करै निहालु॥ नानक साहिबु सदा दइआलु॥ २॥

तब शाह परमेश्वर उसे उससे चौगुना निहाल कर देता है। क्योंकि गुरु साहिब जी कहते हैं, वह (साहिबु) परमात्मा हमेशा ही दयालू है।।२।।**

इसी प्रकार जिज्ञासु को भी दृढ़ निश्चय रखना चाहिए। यह साधना रूप वस्तु जिस परमेश्वर की दी हुई है, उस के आगे रख दे, अर्थात्-साधना का अभिमान न करे तथा प्रभु की आज्ञा को नतमस्तक मान ले।

गुरु साहिब कथन करते हैं, वह दयावान परमेश्वर उसे उससे भी चौगुना अर्थात्-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति करके यानि चौथी भूमिका का आनन्द देकर निहाल कर देता है।। २।।

---

*जिस समय श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी युद्ध के पश्चात् दमदमा साहिब पहुंचे तो उस समय माता सुंदरी जी ने कहा कि चारों लाल कहां हैं? तो गुरु जी ने- जिस की बसतु तिसु आगै राखै।। प्रभ की आगिआ मानै माथै।। के मुख्यवाक्य के अनुसार कहा कि वह चारों लाल प्रभु की अमानत प्रभु के पास पहुंच गई है तथा खालसे की ओर संकेत करके कहा, "अब यह हज़ारों लाल आपके पास खड़े हैं-"

इन पुत्रन के सीस पर वार दीए सुत चार।।
चार मूए तो किआ भइआ जीवत कई हजार।।

उसके विश्वास को देख कर सतिगुरों ने कहा-जैसे अब तुमने प्रभु की कृपा को मीठा करके माना है। इसी प्रकार भविष्य में भी मानती रहना तथा जा तेरे घर चार पुत्रों की और बख्शिश होगी। इस वर को संयोग से समयानुसार उसके घर चार पुत्र पैदा हुए।

**एक वृद्धा सुखमनी साहिब जी की बहुत भक्तिन थी, प्रतिदिन उठकर सुखमनी साहिब जी का पाठ किया करती, समयानुसार उसका छोटा बेटा मर गया। वाहिगुरु की कृपा को मानती हुई वृद्धा ने उस बालक को उठाकर श्री हरिमंदर साहिब की दर्शनी डिउढी पर माथा टेका तथा बालक को झोली में रखकर सुखमनी साहिब का पाठ करती हुई परिक्रमा करने लगी। उस समय गुरु जी दुख भंजनी बेरी के साथ "थड़ा साहिब" पर दीवान लगाकर सन्गतों को उपदेश दे रहे थे। जिस समय दीवान की समाप्ति हुई तो उस वृद्धा को पास बुलाकर कहा, "क्या कारण है?" वृद्धा ने बालक को उनके आगे लिटाकर कहा -

जिस की बसतु तिसु आगै राखै।। प्रभ की आगिआ मानै माथै।।
उस ते चउगुन करै निहालु।। नानक साहिबु सदा दइआलु।। २।।

अनिक भाति माइआ के हेत॥ सरपर होवत जानु अनेत॥

प्रभु से बिगाड़ कर यह जीव जिस माया के हेत=के लिए अनेक यत्न करता है। सत्य मानो, वह यत्न सरपर=अवश्य ही अनेत=झूठे साबित होते हैं।

बिरख की छाइआ सिउ रंगु लावै॥ ओह बिनसै उहु मनि पछुतावै॥

जो मनुष्य बिरख=वृक्ष की छाया से प्रीत लगाकर बैठता है। जब वह छाया चली जाती है फिर वह मनुष्य पछतावा करता है। इसी प्रकार वृक्षा रूप परमेश्वर की छाइआ=माया से जो प्रीत लगाता है, जिस समय वह माया चली जाती है, तो वह मनुष्य मन में पश्चाताप करता है।

जो दीसै सो चालनहारु॥ लपटि रहिओ तह अंध अंधारु॥

जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह सब चला जाने वाला है। परन्तु यह अंध अंधारु=अन्धों से भी अन्धा जीव उन से ही लपटि रहिओ=चिपक रहा है।

अर्थात्-यह अंध=अन्धा जीव अज्ञान रूप अंधारु= अन्धेरे करके उन से ही लपटि=जुड़ रहा है।

बटाऊ सिउ जो लावै नेह॥ ता कउ हाथि न आवै केह॥

जो पुरुष बटाऊ=राही यानि मुसाफिर से नेह=प्रीत करता है। उसके हाथ कुछ नहीं आता। इसी तरह जितने भी संबन्धी हैं, यह सब मुसाफिरों की भांति हैं, जो पुरुष इन से नेह=स्नेह करते हैं, उन के हाथ कुछ भी नहीं आता।

मन हरि के नाम की प्रीति सुखदाई॥ करि किरपा नानक आपि लए लाई॥ ३ ॥

हे मन ! हरि के नाम की प्रीत ही सुख देने वाली है। गुरु जी कथन करते हैं, यदि प्रभु स्वयं कृपा करें तो वह प्रीत लगती है।। ३।।

मिथिआ तनु धनु कुटंबु सबाइआ॥ मिथिआ हउमै ममता माइआ॥

हे भाई! यह तनु=शरीर, धन तथा समस्त परिवार मिथिआ=झूठा है। अहंभाव देह में करना, ममता माया में करनी यह भी मिथिआ=व्यर्थ है।

मिथिआ राज जोबन धन माल॥ मिथिआ काम क्रोध बिकराल॥

राजपाट, जवानी तथा धन-सम्पति इत्यादि सब कुछ मिथिआ=नाशवान् है। बिकराल=भयानक अर्थात् डरावने काम, क्रोध आदि भी मिथिआ=रहने वाले नहीं हैं।

मिथिआ रथ हसती अस्व बसत्रा॥ मिथिआ रंग संगि माइआ पेखि हसता॥

रथ, हसती=हाथी, अस्व=घोड़े (अश्व) तथा वस्त्र आदि भी मिथिआ= रहने वाले नहीं हैं। जिस माया को देखकर हंस रहा है उस माया से जो रंग=प्रेम करता है वह

भी मिथिआ=झूठा है।

मिथिआ ध्रोह मोह अभिमानु॥ मिथिआ आपस ऊपरि करत गुमानु॥

ध्रोह=कपट करना, सम्बन्धी जनों से मोह करना, जाति का अभिमानु= अहंकार करना इत्यादि सब मिथिआ=असत्य है। अपने आप पर जो घुमण्ड करना है, यह भी मिथिआ=किसी अर्थ नहीं।

असथिरु भगति साध की सरन॥ नानक जपि जपि जीवै हरि के चरन॥ ४॥

सन्तों की शरण पड़कर जो भक्ति करनी है वह अटल है। गुरु जी कहते हैं, हम तो हरि के चरण जप जप कर जीवित हैं।। ४।।

मिथिआ स्रवन पर निंदा सुनहि॥ मिथिआ हसत पर दरब कउ हिरहि॥

वह स्रवन=कान, मिथिआ=निष्फल हैं जो पराई निन्दा सुनते हैं। वह हसत=हाथ निष्फल हैं जो पराया धन हिरहि=चुराते हैं।

[पृष्ठ २६९]

मिथिआ नेत्र पेखत पर त्रिअ रूपाद॥ मिथिआ रसना भोजन अन स्वाद॥

वह नेत्र मिथिआ=निष्फल हैं, जो पराई स्त्री के सुन्दर रूप इत्यादि को देखते हैं। वह रसना भी निष्फल है, जो नाम के बिना अन=अन्य भोजनों के स्वाद लेती है। अर्थात्-वह जिह्वा व्यर्थ है जो उदरपूर्ण वाली रोटी आदि भोजन के बिना अन स्वाद=अन्य चटकीले स्वाद चाहती है।

मिथिआ चरन पर बिकार कउ धावहि॥ मिथिआ मन पर लोभ लुभावहि॥

वह पाँव निष्फल हैं जो पर बिकार कउ=पराये का बुरा करने को धावहि=दौड़ते हैं, अर्थात्-पर=भली-भान्ति विषय विकारों की ओर दौड़ते हैं। वह मन भी मिथिआ=निष्फल है, जो पराये धन को देखकर लोभ में ललचा जाता है।

मिथिआ तन नही परउपकारा॥ मिथिआ बासु लेत बिकारा॥

वह शरीर निष्फल है, जो किसी पर परोपकार नहीं करता। वह नाक मिथिआ=निष्फ़ल है, जो विकार पैदा करने वाली बासु=वासना (खुशबु) लेता है।

बिनु बूझे मिथिआ सभ भए॥ सफल देह नानक हरि हरि नाम लए॥ ५॥

प्रभु के समझे बिना अर्थात् असके ज्ञान के बिना समस्त अंग (इन्द्रे) मिथिआ=निष्फल हो रहे हैं। गुरु जी कहते हैं, हरि हरि नाम लेने से सभी अंगों सहित देह सफल होती है।। ५।।

बिरथी साकत की आरजा॥ साच बिना कह होवत सूचा॥

****

जो वाहिगुरु से लापरवाह है, उस साकत की सारी आरजा=उम्र ही व्यर्थ है। सत्य नाम सिमरन के बिना किस तरह सूचा=पवित्र हो सकता है।

प्रसंग–महात्मा तथा सेवक का

एक महात्मा थे। एक सिक्ख गृहस्थी उनका सच्चा श्रद्धालू था। वह महात्मा के पास आकर उनकी सेवा किया करता था। जहां पर महात्मा रहते थे वह सेवक नित्य वहां पर झाड़ू-पोंछा किया करता था। महात्मा का एक ही उपदेश था कि मनुष्य को नित्य व निमित्त कर्म अवश्य करने चाहिएँ। वह महात्मा से "विचार सागर" भी पढ़ता था। एक दिन पढ़ते-पढ़ते मन में शंका हुई तथा महात्मा के आगे निवेदन किया कि यदि मनुष्य उस ब्रह्म का रूप है तो नित्य व निमित्त कर्म करने की क्या ज़रूरत है? महात्मा ने कहा, इसका उत्तर मैं फिर कभी दूंगा।

तत्पश्चात् वह सेवक अपने घर चला गया, घर जा कर उसने अपने गृहस्थी कार्य किये, रात को सोने के उपरान्त प्रातः उठा और अपना नित्य कर्म किया। फ़ुरसत में महात्मा के पास आया तथा झाड़ू लगाने लगा। महात्मा ने कहा, झाड़ू छोड़ दे। चार-पाँच कोस पर सन्त मण्डली आई हुई है, उनके दर्शन ही कर आएँ। महात्मा सेवक को लेकर वहां आ गये। दर्शन इत्यादि करके रात को वहीं रुक गये। प्रातः उठकर सारी सन्त मण्डली ने स्नान किया तथा कोई ब्रह्म अभ्यास में जुड़ गया, कोई तप में, कोई समाधि में, कोई सेवा में। इस प्रकार सभी सन्तों की क्रिया सेवक को दिखा कर महात्मा वहां से चल पड़े तथा कहा, रास्ते में एक और प्रेमी है उसे भी मिल चलें। जब उस श्रद्धालू के घर जाकर वह ठहरे तो जो सेवक महात्मा के साथ-साथ था उसे बुखार हो गया दो दिन में ही शरीर कमजोर हो गया, खाना पीना सब छूट गया। इस लिए दो दिन वहीं पर निवास किया। जिस समय उसका बुखार ठीक हो गया तो महात्मा ने कहा, अब वापिस चलें, वह सेवक अपने घर तथा महात्मा अपनी कुटिया में चले गये।

जब दूसरे दिन उस सेवक ने आकर कुटिया की स्थिति देखी कि जगह-जगह, घास-फूस, कूड़ा-कचरा, पत्ते आदि बिखरे हुए हैं बैठने के लिए कोई भी स्थान नहीं हैं, चारों ओर देखा कहीं भी सफाई नहीं है। सेवक ने सफाई करने के लिए झाड़ू उठा लिया। उस की ओर देखकर महात्मा ने कहा, "अब तुम झाड़ू क्यों दे रहे हो, आराम के साथ बैठो" सेवक ने कहा, महाराज! कहां बैठूं, चारों ओर तो गंदगी है, पहले जगह साफ कर लूं। चार-पांच दिन सफाई न करने से गन्दगी पड़ी हुई है। बैठने को चित नहीं करता। मुझे सफाई करने से आप क्यों रोक रहे हो। महात्मा ने कहा, तुम पहले अपने शरीर का हाल सुना? उसने उत्तर दिया कि बुखार तो नहीं है लेकिन कमज़ोरी है, चार दिन हो गये स्नान भी नहीं किया, शरीर बहुत गन्दा हो गया है। महात्मा ने कहा, गन्दा हो गया तो क्या हुआ, तुम स्वयं ब्रह्म हो, स्नान की क्या ज़रूरत है। सेवक ने कहा, महाराज

जी! घर-बार की सफाई तथा शरीर की पवित्रता के बिना आत्म-मार्ग में कैसे टिक सकूंगा। महात्मा ने कहा, "इस दृष्टांत से तेरे स्वाल का जवाब तुझे दिया है। जैसे चार पांच दिन सफाई किये बिना जगह की शुद्धि नहीं तथा स्नान के बिना शरीर की शुद्धि नहीं। इसी प्रकार नित्य कर्म किये बगैर अंतःकरण की शुद्धि नहीं होती। इसलिए नित्य व निमित्त कार्य हमेशा करने चाहिएँ यदि प्रतिदिन कथा सुनकर नाम का जाप नहीं करता तो तेरा अंतः करण कैसे शुद्ध होगा ? अंतःकरण की शुद्धि के लिए नित्तनेम वगैरा नित्य निमित्त आदि कर्म अवश्य करने चाहिएँ।"

बिरथा नाम बिना तनु अंध॥ मुखि आवत ता कै दुरगंध॥

इस जीव का शरीर नाम, सेवा, सिमरन, भक्ति के बिना अन्य कार्यों में लगने से व्यर्थ है, यानि-निकम्मा (निष्फल) है। उसके मुंह से कुवचन रूपी, अर्थात्-निन्दा रूपी दुरगंध=बुदबु आती है।

बिनु सिमरन दिनु रैनि ब्रिथा बिहाइ॥ मेघ बिना जिउ खेती जाइ॥

नाम सिमरन के बिना दिन रात इस तरह ब्रिथा बिहाइ=व्यर्थ व्यतीत होते हैं, जिस प्रकार बादलों के बरसने के बिना खेती निष्फल जाती है।

गोबिद भजन बिनु ब्रिथे सभ काम॥ जिउ किरपन के निरारथ दाम॥

गोबिन्द के भजन सिमरन के बिना जीव के सभी कार्य इस प्रकार निष्फल हैं। जिस प्रकार किरपन=कंजूस के दाम=रुपये (धन) प्रयोग में न आने के कारण निष्फल जाते हैं।

धंनि धंनि ते जन जिह घटि बसिओ हरि नाउ॥ नानक ता कै बलि बलि जाउ॥ ६॥

वह व्यक्ति धन्य हैं, धन्य हैं जिनके हृदय में परमेश्वर का नाम बसा हुआ है। गुरु जी कहते हैं कि मैं उन पर कुर्बान जाता हूँ।। ६।।

रहत अवर कछु अवर कमावत॥ मनि नही प्रीति मुखहु गंढ लावत॥

जीव का रहत=रहन सहन कुछ और है तथा कर्म कुछ और कमाता है। मन में तो प्रीत नहीं है, परन्तु मुंह द्वारा प्रीत की गाँठ लगाता है। अर्थात्-ऊपर से ही बातचीत द्वारा प्रेम का दिखावा करता है।

जाननहार प्रभू परबीन॥ बाहरि भेख न काहू भीन॥

सभी के हृदय की जानने वाला प्रभु बहुत परबीन=चतुर है। वह बाहरी किसी भेस को देखकर भीन=भीगता नहीं, अर्थात्-प्रसन्न नहीं होता।

अवर उपदेसै आपि न करै॥ आवत जावत जनमै मरै॥

जो पुरुष अवर=दूसरों को उपदेश देता है तथा स्वयं (वह) कर्म नहीं करता। वह हमेशा जन्म मरन के चक्र में आता जाता रहता है।

जिस कै अंतरि बसै निरंकारु॥ तिस की सीख तरै संसारु॥

जिस पुरुष के हृदय में निरंकारु=वाहिगुरु (परमात्मा) स्वयं बस रहा है। उस की शिक्षा द्वारा सारा संसार तैर रहा है, अर्थात् - मुक्त होता है।

जो तुम भाने तिन प्रभु जाता॥ नानक उन जन चरन पराता॥ ७॥

जो पुरुष आप को भाने=पसंद आये हैं। उन्होंने ही हे प्रभु ! आप को जाता=जाना है। गुरु जी कहते हैं, उन भक्त जनों के चरणों में पड़ना मैं पराता=जान गया हूँ। अर्थात्-उन प्रभु भक्तों के चरणों में पराता=भली भान्ति लीन हो गया हूँ।। ७।।

करउ बेनती पारब्रहमु सभु जानै॥ अपना कीआ आपहि मानै॥

जो पारब्रह्म सब के हृदय की जानता है उसके आगे मैं बेनती करता हूँ,

अर्थात् - तुम सभी उसके आगे बेनती करो। उसका अपना रचा हुआ जो ढोंग है, उसका आनन्द स्वयं ही मानता अर्थात् - भोगता है।

आपहि आप आपि करत निबेरा॥ किसै दूरि जनावत किसै बुझावत नेरा॥

स्वयं ही जगत् की पैदावार, पालना तथा स्वयं ही निबेरा=समाप्त अर्थात् मारता है। अथवा - वह स्वयं ही तीनों कालों में कर्मों के अनुसार जीवों का निबेरा=फैसला (न्याय) करता है। अपने न्यायानुसार किसी हठी को अपना आप दूर महसूस करवाता है, किसी भक्त को गुरु के द्वार पर अपना आप नज़दीक सुझा देता है।

उपाव सिआनप सगल ते रहत॥ सभु कछु जानै आतम की रहत॥

जो प्रभु मनुष्य के अपने किये हुए सभी उपायों तथा समझदारियों से हीन है, वह परमेश्वर आतम=जीव के रहन-सहन को, अर्थात्-आतम=मन की जो भी व्यथा है वह सब कुछ जानता है।

जिसु भावै तिसु लए लड़ि लाइ॥ थान थनंतरि रहिआ समाइ॥

जिसे भावै=चाहता है, उस पुरुष को वह परमेश्वर अपने लड़ि=दामन से बांध लेता है अर्थात्-अपने चरणों से लगा लेता है। प्रत्येक स्थान पर वह समा रहा है।

सो सेवकु जिसु किरपा करी॥ निमख निमख जपि नानक हरी॥ ८॥ ५॥

उसका सेवक वही प्रमाणिक है, जिस पर उसकी कृपा होती है। गुरु जी कथन करते हैं-मैं उस हरि को क्षण-क्षण के समय में जपता हूँ।। ८।। ५।।

(छटी असटपदी)

सलोकु॥ काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनसि जाइ अहंमेव॥
नानक प्रभ सरणागती करि प्रसादु गुरदेव॥ १॥

****

गुरु जी कथन करते हैं, प्रभु की शरण में आने से काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंमेव=निश्चय ही अहंकार आदि सभी विकार बिनसि=समाप्त हो जाते हैं तथा गुरदेव=श्री गुरु रामदास साहिब जी प्रसादु=कृपा करें तो प्रभु की शरण प्राप्त होती है।। १।।

असटपदी ॥ जिह प्रसादि छतीह अंम्रित खाहि ॥ तिसु ठाकुर कउ रखु मन माहि ॥

हे प्राणी! जिस परमेश्वर की कृपा द्वारा तुम छत्तीस प्रकार के अर्थात्-भांति-भांति के भोजन खाते हो। उस ठाकुर को हृदय में याद रखो।

जिसदा दिता सभु किछु लैणा।। छतीह अंम्रित भोजनु खाणा।।

(माझ महला ५, पृष्ठ १००)

अथवा-**छतीह अंम्रित जिनि भोजन दीए।। अंतरि थान ठहरावन कउ कीए।।**

(रामकली महला ५, पृष्ठ ९१३)

तथा-**खटु रस मिठ रस मेलि कै छतीह भोजन होनि रसोई।।**

(भाई गुरदास जी, वार १७/८)

जिह प्रसादि सुगंधत तनि लावहि ॥ तिस कउ सिमरत परम गति पावहि ॥

जिस परमेश्वर की कृपा से तू शरीर पर इत्र आदि सुगन्धियों को लगाता है। उसका सिमरन कर, क्योंकि उसके सिमरन से ही तू परमगति को प्राप्त कर सकेंगा।

जिह प्रसादि बसहि सुख मंदरि॥ तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि॥

जिस परमेश्वर की कृपा से तुम सुखदायक मंदिरों में वास कर रहा है, अथवा-सुखों के मंदरि=अन्दर वास कर रहे हो। उसे प्रायः अपने हृदय में सिमर।

जिह प्रसादि ग्रिह संगि सुख बसना॥ आठ पहर सिमरहु तिसु रसना॥

जिस परमेश्वर की कृपा के कारण तुम घर में सुखों से रह रहे हो। अर्थात्-जिस की कृपा से तुम ग्रिह संगि=परिवार के साथ सुखों सहित रह रहे हो। उस परमेश्वर की आठों पहर अराधना कर।

जिह प्रसादि रंग रस भोग॥ नानक सदा धिआईऐ धिआवन जोग॥ १ ॥

जिस परमेश्वर की प्रसादि=कृपा द्वारा तुम रंग-बिरंगे रसों का भोग करता हैं। अर्थात्-रसों को भोगकर रंग=आनंदित हो रहा हैं। गुरु जी कहते हैं कि हे भाई! उस सिमरन योग प्रभु की अराधना कर।। १।।

जिह प्रसादि पाट पटंबर हढावहि॥ तिसहि तिआगि कत अवर लुभावहि॥

हे भाई ! जिस परमेश्वर की कृपा द्वारा सूती पाट=वस्त्र तथा पटंबर=रेशमी वस्त्र पहनता हैं। उस परमेश्वर को तिआगि=छोड़ कर किस लिए अवर=अन्य पदार्थों में ग्रसत हो रहा हैं।

****

जिह प्रसादि सुखि सेज सोईजै॥ मन आठ पहर ता का जसु गावीजै॥

जिस परमेश्वर की कृपा के कारण तुम सुखदायक सेज पर सोते हो। हे मन! तुम आठों पहर उस प्रभु का यश चिन्तन करो।

[पृष्ठ २७०]

जिह प्रसादि तुझु सभु कोऊ मानै॥ मुखि ता को जसु रसन बखानै॥

जिस परमेश्वर की कृपा से तुझे हर कोई मान देता है। उस परमात्मा का यश तुम मुंह की रसना द्वारा बखानै=व्याख्यान करो।

जिह प्रसादि तेरो रहता धरमु॥ मन सदा धिआइ केवल पारब्रहमु॥

जिस परमेश्वर की कृपा से तेरा स्वै-धर्म बना रहता है। हे मन! उस केवल=शुद्ध पारब्रह्म का प्राय: सिमरन कर।

प्रभ जी जपत दरगह मानु पावहि॥ नानक पति सेती घरि जावहि॥ २॥

उस परमात्मा को सिमरते ही तुम परलोक में मान पाओगे। गुरु साहिब जी कहते हैं कि तुम बहुत सम्मान के साथ अपने सरूप-गृह में या स्वर्ग में जाओगे।

जिह प्रसादि आरोग कंचन देही॥ लिव लावहु तिसु राम सनेही॥

जिस परमेश्वर की कृपा के कारण तेरा शरीर रोगहीन सोने की भान्ति सुन्दर रहता है। उस सनेही=प्रिय राम में तुम अपनी वृत्ति लगाओ।

जिह प्रसादि तेरा ओला रहत॥ मन सुखु पावहि हरि हरि जसु कहत॥

फिर देख, जिसकी कृपा करके भूल करने पर भी तेरा ओला=परदा ढका रहता है। हे मन! उस हरि का यश गाने से तू सुख पाएंगा।

जिह प्रसादि तेरे सगल छिद्र ढाके॥ मन सरनी परु ठाकुर प्रभ ता कै॥

जिस की कृपा करके तेरे सभी छिद्र=दोष (अवगुण) ढके हुए हैं।

कितीआ कुढंग गुझा थीऐ न हितु।। नानक तै सहि ढकिआ मन महि सचा मितु।।

(वार गूजरी म: ५, पृष्ठ ५१८)

हे मन ! उस ठाकुर= पूज्य सत्कार योग प्रभू की शरण को प्राप्त कर।

जिह प्रसादि तुझु को न पहूचै॥ मन सासि सासि सिमरहु प्रभ ऊचे॥

जिस की कृपा के कारण तुझे कोई नहीं पहुंच सकता, भाव-तुझे कोई दुख नहीं दे सकता। अथवा-तेरी समानता नहीं कर सकता। हे मन! उस ऊँचें प्रभु का श्वास-श्वास सिमरन कर।

जिह प्रसादि पाई द्रुलभ देह॥ नानक ता की भगति करेह॥ ३॥

****
जिस की कृपा से जो मानव शरीर प्राप्त होनी अत्यन्त द्रुलभ=कठिन है वह तूने सरलता से ही प्राप्त कर ली है। गुरु जी कहते हैं कि हे मन! तू उसकी भक्ति कर।। ३।।

जिह प्रसादि आभूखन पहिरीजै ॥ मन तिसु सिमरत किउ आलसु कीजै ॥

जिस की कृपा से तूने (कड़े, माला, अंगुठी, हार आदि) आभूखन=आभूषण पहने हैं, हे मन ! उसके सिमरन में तूने आलस क्यों किया है।

जिह प्रसादि अस्व हसति असवारी ॥ मन तिसु प्रभ कउ कबहू न बिसारी ॥

जिसकी कृपा से तुम अस्व=घोड़ों तथा हसति=हाथियों की स्वारी करते हो। हे मन! उस प्रभु को तुम कभी भी बिसारी=भूलाना न।

जिह प्रसादि बाग मिलख धना ॥ राखु परोइ प्रभु अपुने मना ॥

जिस की कृपा से तुझे बाग-बगीचे मिलख=जगीरें तथा धन प्राप्त हुआ है। उस प्रभु को तुम अपने हृदय में परोइ=धारन करके रख।

जिनि तेरी मन बनत बनाई ॥ ऊठत बैठत सद तिसहि धिआई ॥

हे मन ! जिस वाहिगुरु ने तेरी सारी हृदय आदि इन्द्रिय तथा शरीर की सुन्दर बनावट बनाई है। उठते-बैठते प्रायः उसका सिमरन कर।

तिसहि धिआइ जो एक अलखै ॥ ईहा ऊहा नानक तेरी रखै ॥ ४ ॥

गुरु जी कहते हैं, हे मन ! उसका सिमरन कर, जो एक अद्वितीय ब्रह्म अलखै=अदृश्य है, तथा, जो ईहा ऊहा= लोक परलोक में तेरा सम्मान रखने वाला है।। ४।।

जिह प्रसादि करहि पुंन बहु दान ॥ मन आठ पहर करि तिस का धिआन ॥

हे मन! जिस की कृपा से तू दान-पुण्य करता हैं, तू आठों पहर उस प्रभु का सिमरन कर।

प्रसंग-राजा विक्रम का (पुण्य का फल)

उज्जैन का राजा विक्रम बहुत ही महान् शूरबीर था। एक दिन उसके हृदय में ख्याल आया कि मैंने ऐसा कौन सा पुण्य किया है जिसके फलस्वरूप मैं इतना तेजस्वी राजा हुआ हूँ ? इस बात को जानने के लिए उसने विद्वान ज्योतिषी बुलाये। उन से पूछा, "मुझे किस पुण्य के फलस्वरूप यह राज्य प्राप्त हुआ है। इस बात का उत्तर आठ दिनों में दो, नहीं तो तुम्हें बड़ी सख्त सज़ा दी जाएगी।" सभी के अनेकों प्रयत्न करने पर भी कुछ मालूम न हुआ। राजा के प्रोहित की लड़की ने अपने पिता को गहरी सोच में डूबा देखा तो कहने लगी, "पिता जी ! आप चिन्ता न करें, जब राजा अकेला मेरे पास आएगा तो मैं उसके स्वाल का जवाब दे दूंगी।" प्रोहित ने राजा को आकर कहा, "आप मेरे घर चलें, आपके स्वाल का जवाब मेरी लड़की देगी।" तत्पश्चात् राजा विक्रम

ने प्रोहित की लड़की के पास आकर वही स्वाल किया तो उस लड़की ने कहा "राजन! तुम्हारा हाल तो मैं सारा जानती हूँ परन्तु तुम्हारी संतुष्टि के लिये मैं तुम्हें एक महात्मा के पास भेजती हूँ। यहां से १० कोस दूर एक महात्मा बैठे होंगे, जो अन्न नहीं खाते बल्कि जलते हुए कोयले यानि अंगारे ही खाते हैं, वह आपको उत्तर देंगे।" उस लड़की की ब्रात सुन कर राजा उस महात्मा के पास चला गया। बड़ी-बड़ी जटायें तथा आग के अंगारे खाता देखकर राजा उसके पास बैठ गया। तदोपरान्त पहले कन्या की ओर से फिर स्वयं नमस्कार कर उससे अपना वही स्वाल किया कि "मैं किस पुण्य के फलस्वरूप धर्मात्मा राजा हुआ हूँ ?" उस महात्मा ने कहा, मैं तेरे बारे जानता तो हूँ, परन्तु तेरी पूर्ण संतुष्टि के लिए एक अन्य महात्मा के पास भेजता हूँ। यहां से १० कोस दूर बैठे वह केवल राख ही खाते हैं। उनके पास जाकर मेरी ओर से नमस्कार करके पूछना, वह तुझे बतायेंगे। उनके आदेशानुसार राजा ने वहां पहुंच कर उन्हें नमस्कार करके पूछा, "मैं इतना तेजस्वी राजा किस पुण्य के फलस्वरूप हुआ हूँ?"

उन्होंने कहा, "हे राजन् ! तेरा हाल मैं सारा जानता हूँ लेकिन तेरी संतुष्टि के लिए मैं तुझे आगे भेजता हूँ। यहां से १० कोस दूर जाओ, आगे राज दरबार आयेगा। उस राजा के घर लड़का पैदा हुआ होगा, वह दूध नहीं पीता होगा, तुम उसे दूध पिलाकर पूछना, वह तुम्हारे स्वाल का उत्तर देगा।" इतनी बात सुनकर राजा जिस समय वहां पहुंचा तो देखा कि उस राजा के घर लड़का पैदा हुआ है, लेकिन वह दूध नहीं पीता।

उसी समय राजा विक्रम ने उस बालक को दूध पिला कर पूछा, "मैं किस पुण्य के फलस्वरूप इतना तेजस्वी राजा हुआ हूँ?" बालक ने राजा को पिछले जन्म का वृतान्त सुनाना शुरु किया, "हे बादशाह ! एक तुम, दूसरा मैं तथा दोनों ऋषि जो रास्ते में आपको मिले थे। हम सभी मिलकर एक भयानक जंगल में तप कर रहे थे। जिस प्रोहित की कन्या ने तुम्हें भेजा है, उस समय वह बानप्रस्त की स्त्री थी। वह गंगा के किनारे रहती थी। हम चारों को वह रोटियां लाकर दो-दो बाँट जाती थी, शेष हम फल-फूल खाकर ही अपना निर्वाह करते थे। काफी समय तप करते हुए व्यतीत हो गया। एक दिन विष्णु भगवान् जी बूढ़े ब्राह्मण का भेस धारण कर हमारी परीक्षा लेने के लिए आ गये।"

पहले उन्होंने आग खाने वाले महात्मा की कुटिया के पास जाकर कहा, "मैं तीन दिन से भूखा ब्राह्मण हूँ, मुझे पेट भर खाना खिला दो क्योंकि मैं एक बार ही खाना खाता हूँ।" उस सन्त ने कहा, "मैं भी सारे दिन का भूखा हूँ, दो ही रोटियां हैं, एक आप ले लो तथा दूसरी मैं खा लेता हूँ।" ब्राह्मण न माना, फिर सन्त ने कहा, "आप डेढ रोटी ले लो तथा आधी मैं खा लेता हूँ।" ब्राह्मण फिर भी न माना तो सन्त ने क्रोधित होकर कहा, "यदि दोनों रोटियां तुझे दे दूं तो क्या मैं आग खाऊंगा?" उस ब्राह्मण ने कहा, "तथा-अस्तु"। इस लिए उस दिन से वह सन्त आग के अंगारे खा रहा है। फिर वह ब्रा!ह्मण दूसरे सन्त की कुटिया के पास जाकर वही कहने लगा तो उस सन्त ने कहा,

"यदि दोनों रोटियां तुझे दे दूंगा तो क्या मैं राख खाऊं?" ब्राह्मण ने कहा, "तथा-अस्तु।" इसलिए वह सन्त उस दिन से राख ही खा रहा है।

जिस समय वह ब्राह्मण मेरे पास आया तो मैं उसे डेढ़ रोटी देने लगा लेकिन वह न माना तो मैंने कहा, "दोनों रोटियां तुझे देकर मैं भूखा मर जाऊं।" उस ने कहा, "तथा अस्तु"। इसलिए मैं जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़ा हुआ हूँ।

फिर उस ब्राह्मण ने आप से आकर मांगा, आपने आसन विछा कर उसे आदर सहित बिठाया, दोनों रोटियां तथा फल आदि ला कर उसे दिये, एक लस्सी का लोटा भी लाकर उसके आगे रखा। ब्राह्मण वह सब खाकर अति प्रसन्न हुआ तथा जाते हुए आप को वरदान दे गया कि आप अगले जन्म में बड़े तेजस्वी तथा धर्मात्मा राजा होगे, फिर आप ज्ञानवान होकर मुक्त हो जाओगे।

साध संगत जी ! देखो, पुण्य का कितना तेज है कि दो रोटियां प्रेम भावना के साथ खिलाने से राज्य तथा मोक्ष पदार्थ भी प्राप्त हुआ।

जिह प्रसादि तू आचार बिउहारी॥ तिसु प्रभ कउ सासि सासि चितारी॥

जिस की कृपा से तुम श्रेष्ठ कार्य कर रहे हो। उस प्रभु को श्वास-श्वास चितारी=याद कर।

जिह प्रसादि तेरा सुंदर रूपु॥ सो प्रभु सिमरहु सदा अनूपु॥

जिसकी कृपा से तेरा रूप सुंदर है। उस अनूपु=उपमा रहित प्रभु का प्रायः सिमरन कर।

जिह प्रसादि तेरी नीकी जाति॥ सो प्रभु सिमरि सदा दिन राति॥

जिसकी कृपा के कारण तेरी जाति सबसे नीकी=उत्तम है। उस प्रभु का हमेशा रात-दिन सिमरन कर।

जिह प्रसादि तेरी पति रहै॥ गुर प्रसादि नानक जसु कहै॥ ५॥

जिसकी कृपा के कारण संसार में तेरी पति=इज्ञत बनी हुई है। गुरु जी कहते हैं, गुरु की कृपा से मैं उसका यश कहता हूँ॥५॥

जिह प्रसादि सुनहि करन नाद॥ जिह प्रसादि पेखहि बिसमाद॥

जिसकी कृपा से तू करन=कान द्वारा नाद=शब्द सुनता हैं। जिस की कृपा से तू बिसमाद=आश्चर्यजनक कौतुक (आश्चर्यजनक दर्शन) देखता हैं।

जिह प्रसादि बोलहि अंम्रित रसना॥ जिह प्रसादि सुखि सहजे बसना॥

जिस की कृपा द्वारा तू रसीले अमृत रूप मीठे वचन बोलता हैं, जिसकी कृपा से सोये हुए ही तेरा सुखों में वास हो रहा है।

जिह प्रसादि हसत कर चलहि॥ जिह प्रसादि संपूरन फलहि॥

जिसकी कृपा से तुम हंसते हुए चल-फिर रहे हो, अर्थात्-जिसकी कृपा से तुम हाथों

****
से कार्य कर रहे हो तथा पैरों से चल रहे हो। अर्थात्-जिसकी कृपा से तेरे हाथ पाँव चलते हैं। जिस की कृपा से तुम सम्पूर्ण फलों से प्रफुल्लित हो रहे हो।

जिह प्रसादि परम गति पावहि॥ जिह प्रसादि सुखि सहजि समावहि॥

जिसकी कृपा से तुम परम गति=केवल मुक्ति को पाओगे। जिसकी कृपा से सहजि सुखि=आनंदित सुख में समायेगा।

ऐसा प्रभु तिआगि अवर कत लागहु॥ गुर प्रसादि नानक मनि जागहु॥ ६॥

जो ऐसा प्रभु है उसको त्यागकर किस लिए अवर=अन्य की ओर आकर्षित हो रहा है। गुरु जी कहते हैं, गुरु कृपा से प्रभु के सिमरन में ही जागो।। ६।।

जिह प्रसादि तूं प्रगटु संसारि॥ तिसु प्रभ कउ मूलि न मनहु बिसारि॥

जिसकी कृपा के कारण तुम विश्व विख्यात हो। उस प्रभु को कभी भी हृदय से न भुलाना।

जिह प्रसादि तेरा परतापु॥ रे मन मूड़ तू ता कउ जापु॥

जिसकी कृपा से तेरा तेज बना हुआ है। हे मूर्ख मन ! तुम उसका सिमरन करो।

जिह प्रसादि तेरे कारज पूरे॥ तिसहि जानु मन सदा हजूरे॥

जिसकी कृपा के कारण तेरे कार्य पूर्ण होते हैं। हे मन ! तुम उसे हमेशा सर्वव्यापक ही जानो।

जिह प्रसादि तूं पावहि साचु॥ रे मन मेरे तूं ता सिउ राचु॥

जिसकी कृपा से तुम सत्य सरूप पा लोगे। हे मेरे मन! तुम उस के साथ राचु=जुड़ कर रहो।

जिह प्रसादि सभ की गति होइ॥ नानक जापु जपै जपु सोइ॥ ७॥

जिसकी कृपा से सभी का कल्याण होता है। गुरु जी कहते हैं, उस जपने योग्य के जप का जाप कर।। ७।।

आपि जपाए जपै सो नाउ॥ आपि गावाए सु हरि गुन गाउ॥

वह प्रभु जिस से स्वयं नाम जपाता है, वही पुरुष नाम जपता है। जिस से स्वयं गुणगान करवाता है, वही पुरुष उस हरि के गुणों को गाता है।

[पृष्ठ २७१]

प्रभ किरपा ते होइ प्रगासु॥ प्रभू दइआ ते कमल बिगासु॥

प्रभु की कृपा से जीव को प्रगासु=ज्ञान प्राप्त होता है। प्रभु की दया से जीव का हृदय कमल की भान्ति खिल जाता है।

****

प्रभ सुप्रसंन बसै मनि सोइ॥ प्रभ दइआ ते मति ऊतम होइ॥

वह प्रभु स्वयं प्रसन्न हो तो जीव के हृदय में आकर वास करता है। प्रभु की दया से ही जीव की बुद्धि उत्तम हो जाती है।

सरब निधान प्रभ तेरी मइआ॥ आपहु कछू न किनहू लइआ॥

हे प्रभु ! तेरी कृपा से ही सारे निधान=खजाने प्राप्त होते हैं। स्वयं किसी ने कुछ भी नहीं लिया।

जितु जितु लावहु तितु लगहि हरि नाथ॥ नानक इन कै कछू न हाथ॥ ८॥ ६॥

गुरु जी कथन करते हैं, हे हरि नाथ! जिस ओर आप जीवों को लगाते हो, उधर ही यह जीव लग रहे हैं, क्योंकि इन जीवों के अपने हाथ में कुछ भी नहीं है।। ८।।६।।

(सातवीं असटपदी)

सलोकु॥ अगम अगाधि पारब्रहमु सोइ॥ जो जो कहै सु मुकता होइ॥

सोइ=वह अनन्त रूप ब्रहमु=व्यापक परमात्मा हृदय वाणी के कारण असीमित तथा अथाह है। जो जो पुरुष असका सिमरन करता है, वह माया के बन्धनों से मुकता होइ=मुक्त हो जाता है। अर्थात्=उस असीमित तथा अथाह पारब्रह्म की सोइ=शोभा को जो जो पुरुष कथन करता है, वह मुकता=कल्याण सरूप होता है।

सुनि मीता नानकु बिनवंता॥ साध जना की अचरज कथा॥ १॥

गुरु जी बिनवंता=कथन करते हैं, हे मित्र! नाम विलीन पूर्ण सन्तों की आश्चर्यजनक कथा को तुम सुनो।। १।।

नामि रते प्रभ रंगि अपार।। साध गावहि गुण एक निरंकार।। रहाउ।।
साध की सोभा अति मसकीनी।। संत वडाई हरि जसु चीनी।।
अनदु संतन कै भगति गोविंद।। सूखु संतन कै बिनसी चिंद।। २।।
जह साध संतन होवहि इकत्र।। तह हरि जसु गावहि नाद कवित।।
साध सभा महि अनद बिस्राम।। उन संगु सो पाए जिसु मसतकि कराम।। ३।।

(धनासरी मः ५, पृष्ठ ६७६)

असटपदी॥ साध कै संगि मुख ऊजल होत॥ साधसंगि मलु सगली खोत॥

हे भाई! सन्तों का संग करने से जीव का मुंह उज्जवल होता है। सन्तों का संग करने से जीव के आन्तरिक पापों की मैल खोत=दूर हो जाती है।

साध कै संगि मिटै अभिमानु॥ साध कै संगि प्रगटै सुगिआनु॥

सन्तों का संग करके शरीर का अभिमानु=अहंकार मिट जाता है। सन्तों का संग करके सु=श्रेष्ठ ब्रह्म ज्ञान प्रकट होता है।

साध कै संगि बुझै प्रभु नेरा॥ साधसंगि सभु होत निबेरा॥

सन्तों के संग द्वारा परमात्मा को अपने नेरा=नजदीक समझ लेता है। सन्तों के संग द्वारा ही जन्म-जन्म के सभी कर्मों का निबेरा=फैसला हो जाता है।

साध कै संगि पाए नाम रतनु॥ साध कै संगि एक ऊपरि जतनु॥

सन्तों का संग करने से यह जीव नाम रूप रत्न प्राप्त करता है। सन्तों का संग करके एक मन पर काबू करने पर ही सारा ज़ोर लगाता है। अर्थात्-सर्वोत्तम जो परमात्मा है, उस एक की प्राप्ति का यत्न करता है।

साध की महिमा बरनै कउनु प्रानी॥ नानक साध की सोभा प्रभ माहि समानी॥ १॥

ऐसा कौन सा प्रानी=पुरुष है जो सन्तों की महिमा कह सकता है? गुरु जी कहते हैं, सन्तों की शोभा प्रभु में ही समाई हुई है, यानि सन्तों की उपमा प्रभु के समान है, अर्थात् सन्तों की जो महिमा कथन करनी है वह परमात्मा की ही महिमा है।। १।।

साध कै संगि अगोचरु मिलै॥ साध कै संगि सदा परफुलै॥

सन्तों के संग के कारण अगोचरु=इन्द्रिय द्वारा विषयहीन जो परमात्मा है वह मिल जाता है। सन्तों के संग द्वारा यह जीव प्रायः परफुलै=प्रफुल्लित (प्रसन्न) रहता है।

साध कै संगि आवहि बसि पंचा॥ साधसंगि अंम्रित रसु भुंचा॥

सन्तों के संग द्वारा पाँच काम-क्रोध आदि विषय अधीन हो जाते हैं। सन्तों के संग द्वारा ही यह जीव नाम (आत्म-रस) रूपी अमृत को भुंचा=भोगता है।

साधसंगि होइ सभ की रेन॥ साध कै संगि मनोहर बैन॥

सन्तों के संग द्वारा यह सभी की चरण-धूल हो जाता है। सन्तों के संग द्वारा ही मनोहर बैन= सुन्दर वचनों को उच्चारण करता है। अर्थात्-रसीले-रसीले वचन बोलता है।

साध कै संगि न कतहूं धावै॥ साधसंगि असथिति मनु पावै॥

सन्तों का संग करने से मन किसी ओर नहीं दौड़ता। क्योंकि सन्तों के संग द्वारा मन टिक जाता है।

साध कै संगि माइआ ते भिंन॥ साधसंगि नानक प्रभ सुप्रसंन॥ २॥

सन्तों के संग द्वारा मन माया से भिंन= अल्ग अर्थात् निर्लेप हो जाता है। गुरु जी कहते हैं, सन्तों के संग द्वारा प्रभु स्वयं प्रसन्न हो जाता है।। २।।

साधसंगि दुसमन सभि मीत॥ साधू कै संगि महा पुनीत॥

सन्तों का संग करने से समस्त शत्रु मित्र हो जाते हैं। सन्तों का संग करके महा=महान् पापी भी पुनीत=पवित्र हो जाता है। अर्थात् - सन्तों के संग द्वारा जीव का जीवन महा

पुनीत=अत्यन्त पवित्र हो जाता है।

साधसंगि किस सिउ नही बैरु॥ साध कै संगि न बीगा पैरु॥

सन्तों का संग करने से किसी से वैर-विरोध नहीं रहता। सन्तों के संग द्वारा इसका पाँव टेढा नहीं होता। अर्थात्-कुमार्ग की ओर नहीं जाता।

साध कै संगि नाही को मंदा॥ साधसंगि जाने परमानंदा॥

सन्तों का संग करके कोई मंदा=बुरा कर्म नहीं करता। अर्थात्-सन्तों का संग करने से कोई भी मनुष्य उसको मंदा=बुरा नहीं लगता। सन्तों के संग द्वारा यह जीव परम-आनन्द स्वरूप परमेश्वर को जान लेता है।

साध कै संगि नाही हउ तापु॥ साध कै संगि तजै सभु आपु॥

सन्तों के संग द्वारा स्वार्थ रूपी तापु=बुखार नहीं होता। सन्तों के संग करने से ही सारा अहंकार तजै=छुट जाता है।

आपे जानै साध बडाई॥ नानक साध प्रभू बनि आई॥ ३ ॥

सन्तों की पूर्ण महिमा को परमेश्वर स्वयं ही जानता है। अर्थात्-अपनी महिमा सन्त स्वयं ही जानता है। गुरु जी कथन करते हैं, सन्तों की प्रभु से प्रीत बन आई है।। ३।।

साध कै संगि न कबहू धावै॥ साध कै संगि सदा सुखु पावै॥

सन्तों के संग द्वारा यह लोभी मन कभी भी नहीं धावै=दौड़ता। सन्तों के संग द्वारा ही जीव प्रायः सुखों की प्राप्ति करता है।

साधसंगि बसतु अगोचर लहै॥ साधू कै संगि अजरु सहै॥

सन्तों का संग करने से यह जीव अगोचर=इन्द्रियों से दूर आत्म-वस्तु को पा लेता है। सन्तों के संग द्वारा ही यह जीव अजरु=असहनीय वस्तु को सहै=सहन करता है।

साध कै संगि बसै थानि ऊचै॥ साधू कै संगि महलि पहूचै॥

सन्तों का संग करने से परमेश्वर रूप ऊँचे स्थान पर वास करता है। सन्तों के संग द्वारा महलि=स्वरूप में पहुंच जाता है।

साध कै संगि द्रिड़ै सभि धरम॥ साध कै संगि केवल पारब्रहम॥

सन्तों का संग करके वह सभी धर्मों को द्रिड़ै=धारण कर लेता है। अर्थात्-सभी धर्मों को चलाने वाले प्रभु को द्रिड़ै=वस में कर लेता है। भावार्थ-धर्म के सभी चिन्हों को द्रिड़ै=धारण कर लेता है।

खिमा अहिंसा दइआ म्रिद सत बचन तप दान।।
सील सौच त्रिशना बिनां धरम लिंग दस जान।। *(सारुकतावली)*

सन्तों के संग द्वारा ही केवल=शुद्ध पारब्रह्म का स्वरूप हो जाता है।

साध कै संगि पाए नाम निधान ॥ नानक साधू कै कुरबान ॥ ४ ॥

सन्तों के संग द्वारा नाम रूप निधान=खजाना प्राप्त करता है। गुरु जी कहते हैं, हम सन्तों से बलिहार जाते हैं।। ४।।

साध कै संगि सभ कुल उधारै ॥ साधसंगि साजन मीत कुटंब निसतारै ॥

सन्तों का संग करके सभी कुलों का उद्धार कर लेता है। सन्तों के संग द्वारा सज्जनों-मित्रों तथा कुटंब=परिवार को भवसागर से पर उतार लेता है।

साधू कै संगि सो धनु पावै ॥ जिसु धन ते सभु को वरसावै ॥

सन्तों का संग करके जीव उस नाम धन को प्राप्त करता है। जिस नाम धन से प्रत्येक प्राणी तृप्त हो जाता है।

साधसंगि धरमराइ करे सेवा ॥ साध कै संगि सोभा सुरदेवा ॥

सन्तों का सत्संग होने से परलोक में धर्मराज इसकी सेवा करता है। सन्तों के सत्संग द्वारा सुरदेवा=इन्द्र भी शोभा करता है।

साधू कै संगि पाप पलाइन ॥ साधसंगि अंम्रित गुन गाइन ॥

सन्तों के सतसंग द्वारा सभी पाप पलाइन=भाग जाते हैं।

यथा-**साधू की जउ लेहि ओट।। तेरे मिटहि पाप सभ कोटि कोटि।।**

(बसंतु रविदास, पृष्ठ ११९६)

सन्तों के सत्संग से अमृत रूप शुभ गुणों को गाता है।

साध कै संगि स्रब थान गंमि ॥ नानक साध कै संगि सफल जनंम ॥ ५ ॥

सन्तों के सत्संग द्वारा इसकी प्रत्येक स्थान पर गंमि=पहुंच हो जाती है। गुरु जी कहते हैं, सन्तों के सत्संग से ही इसका मानव जन्म सफल हो जाता है।। ५।।

[पृष्ठ २७२]

साध कै संगि नही कछु घाल ॥ दरसनु भेटत होत निहाल ॥

सन्तों का संग करके हठ-योग आदि कठिन साधनों की घाल=कमाई नहीं करनी पड़ती। क्योंकि सन्तों का दर्शन करते ही जीव निहाल हो जाता है।

साध कै संगि कलूखत हरै ॥ साध कै संगि नरक परहरै ॥

सन्तों के संग द्वारा जीव के सभी कलूखत=पाप हरै=निवृत (नाश) हो जाते हैं, सन्तों के संग से नरक परहरै=दूर हो जाता है।

अर्थात्-सन्तों का संग नरकों के दुख को परहरै=दूर कर देता है।

प्रसंग-राजा जनक का

मिथला पुरी के रहने वाले पूर्ण धैर्यवान महान् व्यक्ति राजा जनक जी सैर करते हुए यमपुरी पहुंचे तो नरकों में पापी जीवों को कराहते देखकर कहने लगे कि "इन सभी को छोड़ दो।" इस पर धर्मराज ने कहा, "प्रभु के अदेशानुसार यह अपने किये पापों का फल भोग रहे हैं, आप कोई ऐसी वस्तु दें जिस से इनके पाप समाप्त हो जायें तभी यह नरकों में से निकल सकते हैं।" उसी समय परोपकारी राजा जनक ने तराजू के एक ओर अपना किया हुआ सिमरन डाला तथा दूसरी ओर जीवों के पापों को डाला। सिमरन की शक्ति से जीवों के पाप समाप्त करके सभी का उद्धार किया।

भगत वडा राजा जनकु है गुरमुखि माइआ विचि उदासी।
देव लोक नो चलिआ गण गंधरबु सभा सुखवासी।
जम पुरि गइआ पुकार सुणि विललावनि जीअ नरक निवासी।
धरम राइ नो आखिओनु सभना दी कर बंद खलासी।
करे बेनती धरम राइ हउ सेवकु ठाकुर अबिनासी।
गहिणे धरिओनु इकु नाउ पापां नालि करै निरजासी।
पासंगि पापु न पुजनी गुरमुखि नाउ अतुल न तुलासी।
नरकहु छुटे जीअ जंत कटी गलहु सिलक जम फासी।
मुकति जुगति नावै की दासी।। ५।। *(भाई गुरदास जी, वार १०)*

तथा- धंन धंन राजा जनक है जिन सिमरन कीओ बिबेक।
एक घड़ी के सिमरने पापी तरे अनेक। *(भगत माल)*

साध कै संगि ईहा ऊहा सुहेला॥ साधसंगि बिछुरत हरि मेला॥

सन्तों का संग करने से जीव ईहा ऊहा= लोक परलोक में सुहेला=सुखी होता है। सन्तों के संग द्वारा ही विछुड़े हुए जीव का हरि से मेल हो जाता है।

जो इछै सोई फलु पावै॥ साध कै संगि न बिरथा जावै॥

सन्तों का संग करके जीव जो चाहता है वही फल प्राप्त कर लेता है, क्योंकि सन्तों के सत्संग में आया कोई भी प्राणी बिरथा=खाली नहीं जाता, कुछ न कुछ जरूर लेकर जाता है।

प्रसंग-राजा हरी चंद का

राजा हरी चंद की रानी नित्य रात को सत्संग में जाकर गुरुवाणी की कथा सुनती थी। एक दिन राजा को पता चला तो उसने रानी के पीछे जाकर उसके पाँव की एक खड़ाँव उठा ली तथा घर लाकर उसे अलमारी में रख कर उसे ताला लगा दिया। कथा समाप्त होने पर जब रानी उठकर बाहर आई तो उसने देखा कि उसके पाँव की एक

खड़ाँव नहीं है। सोचा यदि राजा को पता चल गया तो नाराज होगा। उसने उसी समय अन्तर्ध्यान होकर अराधना की तो उसी समय उसी तरह की दूसरी खड़ाँव आ गई, रानी उसे पहन कर घर आ पहुँची।

देखो रानी ने जो इच्छा प्रकट की वही फल प्राप्त कर लिया। भाई गुरदास जी लिखते हैं-

सुखु राजे हरी चंद घरि नार सु तारा लोचन राणी।
साधसंगति मिलि गांवदे राती जाइ सुणै गुरबाणी।
पिछहु राजा जागिआ अधी राति निखंडि विहाणी।
राणी दिसि न आवई मन विचि वरति गई हैराणी।
होरतु राती उठि कै चलिआ पिछै तरल जुआणी।
राणी पहुती संगती राजे खड़ी खड़ाउ नीसाणी।
साधसंगति आराधिआ जोड़ी जुड़ी खड़ाउ पुराणी।
राजे डिठा चलतु इहु एह खड़ाव है चोज विडाणी।
साधसंगति विटहु कुरबाणी।। ६।। *(भाई गुरदास जी, वार १०)*

पारब्रहमु साध रिद बसै॥ नानक उधरै साध सुनि रसै॥ ६॥

सन्तों के हृदय में पारब्रह्म बस रहा है, गुरु जी कहते हैं, सन्तों की रसै=रसना से उपदेश सुनने वाले पुरुष का उद्धार हो जाता है। अर्थात्-सन्तों से उपदेश सुनकर जो उसमें रसै=रच जाता है, वह भवसागर में से पार हो जाता है।। ६।।

साध कै संगि सुनउ हरि नाउ॥ साधसंगि हरि के गुन गाउ॥

सन्तों के संग द्वारा हरि नाम सुणो। सन्तों के संग द्वारा ही हरि के गुण गाओ।

साध कै संगि न मन ते बिसरै॥ साधसंगि सरपर निसतरै॥

सन्तों का संग करने से जीव के हृदय में से प्रभु भूलता नहीं है। सन्तों के संग द्वारा जीव का सरपर=अवश्य निसतरै=उद्धार हो जाता है।

प्रसंग – गनिका का

गनिका चाहे कितनी भी पापी थी जो हमेशा पराये पुरुषों से कुकर्म करती थी, एक दिन वर्षा होने के कारण इसके मकान के नीचे एक महात्मा आकर खड़े हो गये। जब गनिका को पता चला तो उसने उन्हें ऊपर बुलाकर आदर सहित उनकी सेवा की। महात्मा बहुत खुश हुए, उन्होंने अन्तर्ध्यान होकर विचार किया कि यह प्रत्यक्ष उपदेश लेने के योग्य नहीं है लेकिन इसका उद्धार अवश्य करना है। सन्तों के पास एक तोता था, वह तोता गनिका को देकर कहा, "प्रतिदिन प्रातः उठकर इसे राम राम पढ़ाया कर," इतना कहकर सन्त चले गये। तत्पश्चात्, गनिका को ऐसी लगन लगी कि नित्य ही प्रातः

उठकर वह उस तोते को राम राम पढ़ाया करे। राम नाम के तेज से उस का संसार से उद्धार हुआ तथा बैकुण्ठ धाम में चली गई।

गनिका पापण होइ कै पापां दा गलि हारु परोता।
महां पुरखु अचाणचक गनिका वाड़े आइ खलोता।
दुरमति देखि दइआलु होइ हथडु उस नो दितोसु तोता।
राम नामु उपदेसु करि खेलि गइआ दे वणजु सओता।
लिव लगी तिसु तोतिअहु नित पढ़ाए करै असोता।
पतित उधारणु राम नामु दुरमति पाप कलेवरु धोता।
अंत कालि जम जालु तोड़ि नरकै विचि न खाधोसु गोता।
गई बैकुंठि बिबाणि चढ़ि नाउ नाराइण छोत अछोता।
थाउं निथावें माणु मणोता।। २१।। *(भाई गुरदास जी, वार १०)*

साध कै संगि लगै प्रभु मीठा॥ साधू कै संगि घटि घटि डीठा॥

सन्तों का संग करने से प्रभु स्वयं मीठा=प्यारा लगता है। अर्थात्-प्रभु का कार्य अच्छा लगता है। सन्तों के संग द्वारा प्रभु को कण कण में डीठा=देख लिया है।

साधसंगि भए आगिआकारी॥ साधसंगि गति भई हमारी॥

सन्तों का संग करने से हम आगिआकारी=आज्ञाकारी व्यक्ति हो गये हैं। सन्तों का संग करने से हमारी मुक्ति हो गई है।

साध कै संगि मिटे सभि रोग॥ नानक साध भेटे संजोग॥ ७॥

सन्तों के संग से सभी रोग मिट गये हैं, परन्तु गुरु जी कहते हैं कि पूर्ण संजोग=भाग्य के साथ आकर मिलते हैं।। ७।।

साधु मिलै पूरब संजोग।। सचि रहसे पूरे हरि लोग।। *(गउड़ी मः १, पृष्ठ १५३)*

साध की महिमा बेद न जानहि॥ जेता सुनहि तेता बखिआनहि॥

सन्तों की महिमा वेद भी नहीं जानते। वह जितना सुनते हैं उतना ही बखिआनहि=कहते हैं।

प्रसंग-एक राजा का

एक सत्संगी राजा नित्य महात्मा के पास जाकर कथा सुनता था। सन्तों ने एक दिन कथा करते हुए यह बात की कि सन्तों की महिमा अनन्त है। उसे वेद भी नहीं जान सकते।

राजा वेदों में बहुत श्रद्धा रखता था, राजा ने यह पंक्ति को सुनकर महात्मा के साथ बहुत हठ किया कि "यह बात सत्य नहीं है, क्योंकि यदि साधू की महिमा वेद नहीं जान सकते तो अन्य कौन जान सकता है?" सन्तों ने राजा के हठ करने पर कहा, "गुरु जी की वाणी बिल्कुल ठीक है, यह कभी गलत नहीं हो सकती।" राजा ने कहा

कि कैसे ठीक है? सन्तों ने कहा, "इस पंक्ति का ठीक अर्थ तुझे तुम्हारा पुत्र ही सुनाएगा।" उसी समय राजा ने कहा, मेरे घर तो कोई संतान ही नहीं है फिर मुझे उत्तर कैसे मिलेगा। सन्तान के लिए तो मैंने वेदों के अनुसार बहुत यज्ञादि भी करवाए हैं लेकिन देवताओं ने आकाश-वाणी द्वारा कहा है कि सात जन्म तक तेरे घर संतान पैदा नहीं होगी तथा ज्योतिषियों ने भी इसी प्रकार कहा है कि हे राजन्! तेरे भाग्य में सात जन्म तक कोई पुत्र नहीं लिखा है। आप जी ने यह कैसे कह दिया कि तेरा पुत्र ही तुझे इस बात का उत्तर देगा। राजा की यह बात सुनकर सन्तों ने कहा कि हमारे वचन से तेरे घर पुत्र भी पैदा होगा तथा-इस पंक्ति का अर्थ भी तुझे सुनाएगा। राजा यह बात सुनकर चकित हो गया तथा खुश भी हुआ। कुछ समय के पश्चात् महात्मा के वचनानुसार राजा के घर पुत्र ने जन्म लिया। ज्योतिषियों ने उसका जन्म लगन देख कर उसकी उम्र ११ वर्ष ११ माह तथा ११ दिन बताई। राजा को पुत्र के जन्म की प्रसन्नता भी हुई लेकिन उसकी थोड़ी आयु का सुनकर अत्यन्त दुखी भी हुआ। राजा ने अपने पुत्र को धर्म-शास्त्र पढ़ाया। पुत्र ने जब सन्तों के गुणों के बारे में पढ़ा सुना तो उसके हृदय में सन्तों की सेवा करने की श्रद्धा भावना पैदा हुई। इस प्रकार वह घर से चोरी जाकर सन्तों की सेवा करता रहा। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर सन्तों ने वरदान दिया, "तुम लम्बी आयु वाले हो।" उस समय लड़के ने सन्तों को अपनी सारी वार्ता सुनाई। सन्तों ने कहा, "हमारे वरदान से तुम्हारी आयु १०० वर्ष बढ़ गई है। यानि तुम्हारी आयु १११ वर्ष ११ माह तथा ११ दिन होगी।" सन्तों के वर देने के पश्चात् वह लड़का कई वर्ष उन सन्तों की सेवा में ही रहा। तत्पश्चात् वह अपने पिता के पास आया और सन्तों की उपमा कथन की कि सन्तों ने प्रसन्न होकर मेरी आयु १११ वर्ष ११ माह तथा ११ दिन की कर दी है। राजा को गुरु जी की पंक्ति पर तसल्ली हो गई कि यह सत्य है तथा सन्तों की महिमा वेद भी नहीं जान सकते। तत्पश्चात् राजा सन्तों का सेवक बनकर उनकी सेवा करता रहा तथा अपने राज्य में प्रजा से भी सन्त सेवा ही करवाता रहा।

अर्थात्-सन्तों की महिमा को वेद भी नहीं जानते।

यथार्थ-हे भाई! तुम सन्तों की महिमा का बेदु=ज्ञान कर। सिक्ख ने कहा, मैं तो जानता नहीं हूँ। गुरु जी ने कहा, "उपरोक्त पंक्तियों से जितना यश तूने सुना है, उतना ही व्याख्यान कर।"

साध की उपमा तिहु गुण ते दूरि॥ साध की उपमा रही भरपूरि॥

सन्तों की उपमा (रजो, सतो, तमो) तीनों गुणों से दूर है। सन्तों की उपमा सभी स्थानों पर भरपूरि= पूर्ण भाव से समा रही है।

साध की सोभा का नाही अंत॥ साध की सोभा सदा बेअंत॥

सन्तों की सोभा=महिमा का कोई अन्त नहीं है। सन्तों की शोभा प्रायः अनन्त है।

साध की सोभा ऊच ते ऊची॥ साध की सोभा मूच ते मूची॥

सन्तों की शोभा सर्वोच्च है। सन्तों की शोभा मूच ते मूची=सर्वाधिक है।

साध की सोभा साध बनि आई॥ नानक साध प्रभ भेदु न भाई॥ ८॥ ७॥

सन्तों की शोभा सन्तों को ही बनकर आती है। गुरु जी कहते हैं कि हे भाई! साधू तथा प्रभु में कोई भेदु=अंतर नहीं है।। ८।। ७।।

यथा-रविदासु भणै जो जाणै सो जाणु।। संत अनंतहि अंतरु नाही।।

(आसा, रविदास जी, पृष्ठ ४८६)

(आठवीं असटपदी)

सलोकु॥ मनि साचा मुखि साचा सोइ॥

एक सिक्ख ने पूछा, ब्रह्म ज्ञानी के क्या लक्षण हैं? गुरु जी ने उत्तर दिया, जिसके हृदय में सच्चा वाहिगुरु है तथा मुंह में भी वही सच्चा वाहिगुरु वास कर रहा है।

अवरु न पेखै एकसु बिनु कोइ॥ नानक इह लछण ब्रहम गिआनी होइ॥ १॥

आंखों के साथ एक परमात्मा के बिना अन्य किसी को नहीं देखता। गुरु जी कहते हैं, इन उपरोक्त लक्षणों वाला मनुष्य ब्रह्म ज्ञानी होता है।। १।।

फिर ब्रह्म ज्ञानी की महिमा कथन करते हैं-

असटपदी॥ ब्रहम गिआनी सदा निरलेप॥ जैसे जल महि कमल अलेप॥

ब्रह्म ज्ञानी सांसारिक पदार्थों में विलीन होकर भी माया से सदा निरलेप=असंग रहता है। जैसे पानी में खड़ा कँवल का फूल पानी से अलेप=निरलेप रहता है।

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नै साणे।।
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे।। *(पृष्ठ ९३८)*

ब्रहम गिआनी सदा निरदोख॥ जैसे सूरु सरब कउ सोख॥

ब्रह्म ज्ञानी सभी भोग भोगता हुआ भी सदा इस तरह दोष हीन है, जैसे सूर्य समस्त विष्टा आदि नीच रसों को सुकाता हुआ कलंक रहित है।

ब्रहम गिआनी कै द्रिसटि समानि॥ जैसे राज रंक कउ लागै तुलि पवान॥

ब्रह्म की दृष्टि में सभी जीव समान हैं, जैसे राजा तथा रंक=गरीब को पवान=पवन (हवा) एक जैसी ही लगती है।

प्रसंग -मुदाद शिला का

"मुदाद शिला" एक शुद्ध पत्थर है, जिस में से चेहरे का साया नज़र आता है।

****
यह "मुदाद शिला" जंगल में पड़ी हुई थी तथा वहाँ के सभी जानवर तथा पक्षी उस में से अपना चेहरा देख कर प्रसन्न होते थे। मुदाद शिला में सभी के चेहरों का प्रतिबिंब ग्रहण करने की योग्यता थी। इसलिए सभी अपना अपना चेहरा देखते थे।

एक दिन मुदाद शिला ने सोचा कि मैं भी किसी को अपना मित्र बनाऊँ तथा अपने सखा का ही साया पकड़ूँ। उसने जंगल के सभी पशु-पक्षियों के गुण व दोषों पर विचार किया तथा अन्त में उसकी दृष्टि मोर पर पड़ी। फिर सोचा मोर ने तो बादलों को अपना मित्र बनाया हुआ है तथा उनकी गरजना सुनकर वह नाचने लगता है। इसके पंखों में भी सुन्दरता है। इसे प्रीत की उत्कृष्ठता भी है। इसलिए उसने सोचा कि क्यों न मैं मोर को ही अपना प्रियतम बनाऊँ तथा उसी का ध्यान करूँ। ऐसा विचार कर वह मोर का ही ध्यान करने लगी। तथा उसकी दृष्टि मोर के ध्यान में ही लीन हो गई। तत्पश्चात् उस मुदाद शिला में से जो भी जानवर या पक्षी अपना चेहरा देखता उसे अपने चेहरे की जगह मोर ही नज़र आने लगा। सभी ने सोचा कि यह मोर का ध्यान करके सभी को मोर रूप में देख रही है। लेकिन हम तो मोर नहीं हैं। इसकी लीनता मोर में लगी हुई है तथा यह मोर की प्रेमिका हो गई है। चलो इसकी खबर मोर को जाकर ही दी जाए। सभी ने मोर के पास आकर बताया कि मुदाद शिला तेरी प्रेमिका हो गई है। इतनी बात सुनकर जब मोर मुदाद शिला के सामने आया तो वह प्रेम के साथ पिघल कर पानी में बदल गई; मोर ने तुरन्त ही वह पानी पीकर उसे अपने में अभेद कर लिया।

इसी प्रकार ब्रह्म ज्ञानी की बुद्धि रूपी मुदाद शिला में सभी चीजें पकड़ने की शक्ति है। जैसे जल को पाकर जलाकार हो जाती है, इसके अलावा जो भी सामने आया उसे ही ग्रहण कर लिया। परन्तु ब्रह्म ज्ञानी की बुद्धि ने सभी को छोड़कर यह विचार किया कि एक ब्रह्म ही निर्दोष है, इसलिए ब्रह्म पर आश्रित हो गई तथा सभी को ही ब्रह्म रूप करके देखती है।

यथा- **ब्रहमु दीसै ब्रहमु सुणीऐ एकु एकु वखाणीऐ।।**
आतम पसारा करणहारा प्रभ बिना नही जाणीऐ।।

(बिलावलु मः ५, पृष्ठ ८४६)

ब्रहम गिआनी कै धीरजु एक॥ जिउ बसुधा कोऊ खोदै कोऊ चंदन लेप॥

ब्रह्म ज्ञानी के हृदय में एक धैर्य मुख्य है। जैसे बसुधा=धरती को चाहे कोई खोदै=खोदे तथा चाहे कोई चन्दन का लेप करे, धरती दोनों को कुछ नहीं कहती। खोदने वाले को श्राप तथा चन्दन का लेप करने वाले को वर नहीं देती।

इस प्रकार ब्रह्म ज्ञानी सेवा करने वाले को प्रसन्न होकर वरदान नहीं देता, दुख देने गले को श्राप नहीं देता। यदि श्राप या वरदान देता भी है तो वह द्वेष-भावना

****
के साथ नहीं देता। मनुष्य की अपनी भावना ही वर या श्राप का रूप होती है।

ब्रहम गिआनी का इहै गुनाउ ॥ नानक जिउ पावक का सहज सुभाउ ॥ १ ॥

गुरु जी कथन करते हैं, जैसे पावक = अग्नि का यह सहज स्वभाव है कि अग्नि के नज़दीक जो भी व्यक्ति जाता है उसका अन्धेरा, डर तथा ठण्ड दूर कर देती है। इसी प्रकार ब्रह्म ज्ञानी में भी यही गुण है। ब्रह्म ज्ञानी के पास जो भी चलकर आता है, उसका अज्ञान रूप अन्धेरा, जन्म-मृत्यु (यमों का भय) तथा मूर्खता रूप ठण्ड दूर कर देते हैं।। १।।

ब्रहम गिआनी निरमल ते निरमला ॥ जैसे मैलु न लागै जला ॥

ब्रह्म ज्ञानी इस प्रकार निर्मल से भी निर्मल होता है। जैसे जला=जल को कोई मैल नहीं लगती।

ब्रहम गिआनी कै मनि होइ प्रगासु ॥ जैसे धर ऊपरि आकासु ॥

ब्रह्म ज्ञानी के हृदय में ब्रह्म का उजाला होता है, जैसे पृथ्वी पर चारों ओर गगन का प्रकाश होता है। अर्थात्-आकाशचारी सूर्य का प्रकाश होता है।

ब्रहम गिआनी कै मित्र सत्रु समानि ॥ ब्रहम गिआनी कै नाही अभिमान ॥

ब्रह्म ज्ञानी के हृदय में मित्र शत्रु एक समानि=समान होते हैं, ब्रह्म ज्ञानी के चित में देह का अहंकार नहीं होता।

अर्थात्- अपने ब्रह्म ज्ञानी होने का भी अभिमान नहीं होता।

ब्रहम गिआनी ऊच ते ऊचा ॥ मनि अपनै है सभ ते नीचा ॥

ब्रह्म ज्ञानी सर्वोच्च होता है, क्योंकि वह अपने मन के कारण सभी से नीचा होकर रहता है।

यथा- **आपस कउ जो जाणै नीचा।। सोऊ गनीऐ सभ ते ऊचा।।** (पृष्ठ २६६)

प्रश्न-इस प्रकार की समदृष्टि वाले ब्रह्म ज्ञानी कैसे बनते हैं? गुरु जी का उत्तर-

ब्रहम गिआनी से जन भए ॥ नानक जिन प्रभु आपि करेइ ॥ २ ॥

गुरु साहिब जी कहते हैं, वह व्यक्ति ब्रह्म ज्ञानी हुए हैं, जिन्हें परमेश्वर स्वयं ब्रह्म ज्ञानी करता है।

ब्रहम गिआनी सगल की रीना ॥ आतम रसु ब्रहम गिआनी चीना ॥

ब्रह्म ज्ञानी सब की रीना=धूल होकर रहता है। क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी ने आत्म-रस को चीना=जाना है। आत्म रस के जानने वाला ही सबसे नीचा होता है।

ब्रहम गिआनी की सभ ऊपरि मइआ ॥ ब्रहम गिआनी ते कछु बुरा न भइआ ॥

ब्रह्म ज्ञानी की सभी के ऊपर मइआ=कृपा दृष्टि होती है। इस लिए ब्रह्म ज्ञानी

****
की ओर से किसी का कुछ भी बुरा नहीं होता। अर्थात्-कोई बुरा कर्म नहीं होता।

ब्रहम गिआनी सदा समदरसी॥ ब्रहम गिआनी की द्रिसटि अंम्रितु बरसी॥

ब्रह्म ज्ञानी सदीवकाल समदृष्टि वाला होता है, अर्थात्- एक समान सभी को देखता है। ब्रह्म ज्ञानी की दृष्टि में से अमृत की वर्षा होती है।

[पृष्ठ २७३]

ब्रहम गिआनी बंधन ते मुकता॥ ब्रहम गिआनी की निरमल जुगता॥

ब्रह्म ज्ञानी सांसारिक बन्धनों से मुक्त रूप है। ब्रह्म ज्ञानी की वृत्ति निर्मल परमात्मा में जुगता=जुड़ी हुई है।

अथवा- जिज्ञासु के समझाने के लिए ब्रह्म ज्ञानी की युक्ति निर्मल है।

ब्रहम गिआनी का भोजनु गिआन ॥ नानक ब्रहम गिआनी का ब्रहम धिआनु ॥ ३ ॥

ब्रह्म ज्ञानी का भोजन ही ब्रह्म ज्ञान का है, गुरु जी कहते हैं कि ब्रह्म ज्ञानी का ध्यान भी ब्रह्म में ही लगा रहता है।। ३।।

ब्रहम गिआनी एक ऊपरि आस॥ ब्रहम गिआनी का नही बिनास॥

ब्रह्म ज्ञानी की एक परमेश्वर के ऊपर ही आशा स्थायी रहती है। अथवा - एक ब्रह्म ज्ञानी ही सभी उम्मीदों से ऊपरि=विरक्ति रहता है। इस लिए ब्रह्म ज्ञानी का कभी नाश नहीं होता।

ब्रहम गिआनी कै गरीबी समाहा॥ ब्रहम गिआनी परउपकार उमाहा॥

ब्रह्म ज्ञानी के हृदय में निर्धनता का समाहा=आनन्द है। ब्रह्म ज्ञानी को परोपकार करने का उमाहा=उत्साह प्राय: बना रहता है।

प्रसंग-सन्त करम सिंघ जी का

जिस समय १८५७ ईस्वी में दिल्ली विद्रोह हुआ तो बाबा करम सिंघ जी तथा सन्त लाल सिंघ जी की पलटन दिल्ली पहुंची हुई थी। वह लोगों को जलती हुई अग्नि में से निकाल कर गुरुद्वारे में छोड़कर आते थे।

जिस समय आप एक मुहल्ले में पहुंचे तो एक माता जिस का इकलौता पांच वर्षीय पुत्र चौबारे में सोया हुआ आग की लपेट में आया हुआ था। वह औरत घर के दरवाजे में खड़ी रो-रो कर निरंकार के आगे विनय कर रही थी कि "हे प्रभु! तुमने भक्त प्रह्लाद को तपते हुए खम्बे से बचाया था, वैसे ही मेरे बालक की भी रक्षा करो।" इतने में सन्त वहां आ गये तथा माई की दशा को देखा तो सन्तों से उसका रोना देखा न गया, क्योंकि सन्त परोपकारी जो हुए। माई को धैर्य देकर कहा, दो सीढ़ियां लेकर आओ। माई ने भाग-दौड़ करके दो सीढ़ियों का प्रबन्ध किया, रस्सी न मिलने के कारण सन्त

जी ने अपनी पगड़ी से ही सीढ़ियों को बाँधा और ऊपर चढ़ गये।

छोटे सन्त लाल सिंघ जी ने कहा, बाबा जी आग बहुत भड़क रही है आप ऊपर न जाओ, लेकिन बाबा जी यह पंक्ति पढ़ते हुए -

"आपे पावकु आपे पवना।। जारै खसमु त राखै कवना।।" (पृष्ठ ३२९)

चौबारे में जा पहुंचे।

सोये हुए बालक को चादर लपेट कर अपनी पीठ पर बाँध लिया तथा अन्य कीमती सामान भी माई का जो हाथ लगा उसे नीचे गिरा दिया तथा बालक को नीचे लाकर माता की गोद में डालकर चले गये। पीछे से माई बहुत आशीर्वाद देती रही, लेकिन इस तरह के परोपकार ब्रह्म ज्ञानी ही कर सकते हैं, क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी के हृदय में परोपकार करने की प्रायः चेष्टा रहती है।

ब्रहम गिआनी कै नाही धंधा॥ ब्रहम गिआनी ले धावतु बंधा॥

ब्रह्म ज्ञानी के हृदय में कोई धंधा=जंजाल नहीं हैं, क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी ने अपने धावतु= भागते हुए हृदय को बाँध लिया है, अर्थात्- अपने अधीन कर लिया है।

ब्रहम गिआनी कै होइ सु भला॥ ब्रहम गिआनी सुफल फला॥

ब्रह्म ज्ञानी द्वारा जो भी होता है वह भला ही होता है, इस लिये ब्रह्म ज्ञानी श्रेष्ठ फलों से प्रफुल्लित होता है।

ब्रहम गिआनी संगि सगल उधारु॥ नानक ब्रहम गिआनी जपै सगल संसारु॥४॥

ब्रह्म ज्ञानी के संग द्वारा सभी का उद्धार होता है। गुरु जी कथन करते हैं, ब्रह्म ज्ञानी का सम्पूर्ण सृष्टि ही सिमरन (जाप) करती है।। ४।।

ब्रहम गिआनी कै एकै रंग॥ ब्रहम गिआनी कै बसै प्रभु संग॥

ब्रह्म ज्ञानी के हृदय को एक परमेश्वर के प्रेम का रंग चढ़ा रहता है। इसीलिए प्रभु ब्रह्म ज्ञानी के साथ आ कर वास करता है

ब्रहम गिआनी कै नामु आधारु॥ ब्रहम गिआनी कै नामु परवारु॥

ब्रह्म ज्ञानी के हृदय को एक नाम का आधारु=आसरा है। ब्रह्म ज्ञानी के हृदय में जो नाम है उसी को ही उसने अपना परिवार निश्चित किया होता है।

ब्रहम गिआनी सदा सद जागत॥ ब्रहम गिआनी अहंबुधि तिआगत॥

ब्रह्म ज्ञानी ज्ञान जागरण में प्रायः जागता रहता है। ब्रह्म ज्ञानी अभिमान वाली बुद्धि को त्याग देता है।

ब्रहम गिआनी कै मनि परमानंद॥ ब्रहम गिआनी कै घरि सदा अनंद॥

ब्रह्म ज्ञानी के हृदय में परमानंद=ब्रह्मानन्द रहता है। इस लिए ब्रह्म ज्ञानी के अन्तःकरण

रूप गृह में हमेशा अनंद=समृद्धि रहती है।

ब्रहम गिआनी सुख सहज निवास॥ नानक ब्रहम गिआनी का नही बिनास॥५॥

ब्रह्म ज्ञानी सहज सुख=आत्म सुख में निवास करता है। गुरु जी कहते हैं कि इस करके ही ब्रह्म ज्ञानी का नाश नहीं होता है। यानि जन्म-मरण में नहीं आता।। ५।।

प्रश्न - ब्रह्म ज्ञानी कौन है? उत्तर—

ब्रहम गिआनी ब्रहम का बेता॥ ब्रहम गिआनी एक संगि हेता॥

जो ब्रह्म का बेता=जानकार होता है, वही ब्रह्म ज्ञानी होता है। ब्रह्म ज्ञानी का एक वाहिगुरु के साथ ही हेता=प्रेम है।

ब्रहम गिआनी कै होइ अचिंत॥ ब्रहम गिआनी का निरमल मंत॥

ब्रह्म ज्ञानी के हृदय में अचिंत=निश्चिन्तता होती है।

यथा - **चिंत अचिंता सगली गई।। प्रभ नानक नानक नानक मई।।**

(पृष्ठ ११५७)

इसी पर ब्रह्म ज्ञानी का मंत=उपदेश, निरमल=स्वच्छ है।

ब्रहम गिआनी जिसु करै प्रभु आपि॥ ब्रहम गिआनी का बड परताप॥

जिसे प्रभु स्वयं चाहे उसी व्यक्ति को ब्रह्म ज्ञानी बनाता है। ब्रह्म ज्ञानी का प्रताप सबसे बड़ा होता है।

ब्रहम गिआनी का दरसु बडभागी पाईऐ॥ ब्रहम गिआनी कउ बलि बलि जाईऐ॥

ब्रह्म ज्ञानी का दर्शन बड़े भाग्य से ही प्राप्त होता है। मन वाणी करके ब्रह्म ज्ञानी से हम बलिहार जाते हैं।

ब्रहम गिआनी कउ खोजहि महेसुर॥ नानक ब्रहम गिआनी आपि परमेसुर॥६॥

ब्रह्म ज्ञानी को महेसुर=मही+ईसुर=पृथ्वी के राजे भी खोजते हैं। अथवा-महेसुर=शिव जी आदि देवते भी खोजहि=ढूंढते हैं। क्योंकि गुरु जी कथन करते हैं ब्रह्म ज्ञानी स्वयं परमेश्वर का रूप है।। ६।।

ब्रहम गिआनी की कीमति नाहि॥ ब्रहम गिआनी कै सगल मन माहि॥

परमेश्वर रूप होने के कारण ब्रह्म ज्ञानी की कीमत नहीं पड़ सकती तथा ब्रह्म ज्ञानी के हृदय में सम्पूर्ण सृष्टि कल्पनात्मक रूप है। अर्थात्-ब्रह्म ज्ञानी के हृदय में समस्त शुभ गुण निवास करते हैं।

ब्रहम गिआनी का कउन जानै भेदु॥ ब्रहम गिआनी कउ सदा अदेसु॥

ब्रह्म ज्ञानी का भेद कौन जान सकता है? अर्थात्-कोई नहीं जान सकता। इस लिए ब्रह्म ज्ञानी को सदा अदेसु=नमस्कार करनी चाहिए।

****

महिमा न जानहि बेद।। ब्रहमे नही जानहि भेद।।
अवतार न जानहि अंतु।। परमेसरु पारब्रहम बेअंतु।।
संकरा नही जानहि भेव।। खोजत हारे देव।।
देवीआ नही जानै मरम।। सभ ऊपरि अलख पारब्रहम।। २।। (पृष्ठ ८९४)

ब्रहम गिआनी का कथिआ न जाइ अधाख्यरु ॥ ब्रहम गिआनी सरब का ठाकुरु ॥

"ब्रह्म ज्ञानी" पूर्ण शब्द है, इसका आधा अक्षर जो ब्रह्म है, वह भी कहा नहीं जा सकता। भाव-ब्रह्म ज्ञानी का अध=आधार (आसरा) जो अखरु=नाश से रहित ब्रह्म है। उसके बारे में कुछ भी कहा नहीं जाता, अथवा-ब्रह्म ज्ञानी की महिमा का आधा अक्षर भी कथन नहीं किया जा सकता, अर्थात्-कम मात्रा में भी उपमा का व्याख्यान किया नहीं जा सकता। ब्रह्म ज्ञानी सभी का ठाकुर=स्वामी है।

ब्रहम गिआनी की मिति कउनु बखानै ॥ ब्रहम गिआनी की गति ब्रहम गिआनी जानै ॥

ब्रह्म ज्ञानी की मिति=मर्यादा को कौन कथन कर सकता है। ब्रह्म ज्ञानी की गति को ब्रह्म ज्ञानी स्वयं ही जान सकता है।

ब्रहम गिआनी का अंतु न पारु ॥ नानक ब्रहम गिआनी कउ सदा नमसकारु ॥ ७ ॥

ब्रह्म ज्ञानी के आर-पार का अन्त नहीं है। गुरु जी कथन करते हैं कि हम ब्रह्म ज्ञानी को सदा नमस्कार करते हैं।। ७।।

ब्रहम गिआनी सभ स्रिसटि का करता ॥ ब्रहम गिआनी सद जीवै नही मरता ॥

ब्रह्म स्वरूप होने के कारण ब्रह्म ज्ञानी सम्पूर्ण सृष्टि का करता=रचयिता है। अर्थात्-सारी दुनिया का मालिक है। ब्रह्म ज्ञानी प्रायः जीवित है कभी भी नहीं मरता।

ब्रहम गिआनी मुकति जुगति जीअ का दाता ॥ ब्रहम गिआनी पूरन पुरखु बिधाता ॥

ब्रह्म ज्ञानी जीवों की मुक्ति की युक्ति का दाता है। ब्रह्म ज्ञानी सभी में पूर्ण फल (वर) देने वाला अकाल पुरख का रूप है।

ब्रहम गिआनी अनाथ का नाथु ॥ ब्रहम गिआनी का सभ ऊपरि हाथु ॥

ब्रह्म ज्ञानी अनाथ=यतीमों का नाथु=स्वामी है। ब्रह्म ज्ञानी का सभी के सिर पर कृपा का हाथ है, अर्थात्-सभी का सहाई है।

ब्रहम गिआनी का सगल अकारु ॥ ब्रहम गिआनी आपि निरंकारु ॥

यह सम्पूर्ण आकार ब्रह्म ज्ञानी का अपना ही है। क्योंकि ब्रह्म ज्ञानी सभी को अपना रूप ही समझता है। ब्रह्म ज्ञानी स्वयं ही निरंकार स्वरूप है।

[पृष्ठ २७४]

ब्रहम गिआनी की सोभा ब्रहम गिआनी बनी ॥

****

नानक ब्रहम गिआनी सरब का धनी॥ ८॥ ८॥

ब्रह्म ज्ञानी की शोभा ब्रह्म ज्ञानी को ही बनी=योग्य है। गुरु जी कथन करते हैं, ब्रह्म ज्ञानी सभी का धनी=मालिक है।। ८।। ८।।

(नौवीं असटपदी)

प्रश्न - एक सिक्ख ने बेनती की - "अस्पृश्य" (जो छूआ न जा सके) के लक्षण क्या हैं? गुरु उत्तर -

सलोकु॥ उरि धारै जो अंतरि नामु॥ सरब मै पेखै भगवानु॥

जो अपने हृदय में नाम को धारण करता है तथा सभी प्राणियों में अकाल पुरख को पूर्ण रूप से देखता है।

निमख निमख ठाकुर नमसकारै॥ नानक ओहु अपरसु सगल निसतारै॥ १॥

प्रत्येक समय में परमात्मा को नमस्कार करता है। गुरु जी कथन करते हैं कि वही "अस्पृश्य" महात्मा सभी को पार उतार लेता है।। १।।

ङंङा खटु सासत्र होइ ङिआता।। पूरकु कुंभक रेचक करमाता।।
ङिआन धिआन तीरथ इसनानी।। सोमपाक अपरस उदिआनी।।
राम नाम संगि मनि नही हेता।। जो कछु कीनो सोऊ अनेता।। *(पृष्ठ २५३)*
तथा- **निरहार वरती आपरसा।। इकि लूकि न देवहि दरसा।।**
इकि मन ही गिआता।। *(पृष्ठ ७१)*

असटपदी॥ मिथिआ नाही रसना परस॥ मन महि प्रीति निरंजन दरस॥

जो जिह्वा से झूठे वचनों का परस=उच्चारण नहीं करता, अर्थात्-रसना को झूठे वचनों से छूने नहीं देता तथा हृदय में निरंजन=परमात्मा के दर्शन की अभिलाषा रखता है।

पर त्रिअ रूपु न पेखै नेत्र॥ साध की टहल संतसंगि हेत॥

पराई स्त्री के सुन्दर रूप को विषयी भावना से नेत्र=आंखों से नहीं देखता है। सन्तों की सेवा तथा सन्तों के साथ हेत=प्रेम करता है।

करन न सुनै काहू की निंदा॥ सभ ते जानै आपस कउ मंदा॥

करन=कानों से किसी की निन्दा नहीं सुनता। बल्कि अपने आप को सब से बुरा समझता है।

भक्त कबीर जी के कथनानुसार :-

कबीर सभ ते हम बुरे हम तजि भलो सभु कोइ।।
जिनि ऐसा करि बूझिआ मीतु हमारा सोइ।। ७।। *(पृष्ठ १३६४)*
निंदक कउ फिटके संसारु।। निंदक का झूठा बिउहारु।।
निंदक का मैला आचारु।। दास अपुने कउ राखनहारु।। *(पृष्ठ ११५१)*

****

तथा- अपने दास कउ कंठि लगावै।। निंदक कउ अगनि महि पावै।। (पृष्ठ ११३८)

अथवा-जे ओहु अठसठि तीरथ न्हावै।। जे ओहु दुआदस सिला पूजावै।।
जे ओहु कूप तटा देवावै।। करै निंद सभ बिरथा जावै।। १।।
साध का निंदकु कैसे तरै।। सरपर जानहु नरक ही परै।। (पृष्ठ ८७५)

गुरप्रसादि बिखिआ परहरै॥ मन की बासना मन ते टरै॥

गुरु की कृपा से विषयों को परहरै=दूर त्याग देता है। मन की बुरी वासनाओं को मन से दूर करता है।

इंद्री जित पंच दोख ते रहत॥ नानक कोटि मधे को ऐसा अपरस॥ १ ॥

गुरु जी व्याख्यान करते हैं कि जो इन्द्रियजीत है, अर्थात्-इन्द्रियों पर काबू रखता है तथा कामादि पांच दोषों से रहित है। ऐसा मनुष्य अस्पृश्य कहलाने के काबिल करोड़ों में से कोई एक ही होता है।। १।।

प्रश्न-वैष्णव के लक्षण क्या हैं? गुरु उत्तर-

बैसनो सो जिसु ऊपरि सु प्रसंन॥ बिसन की माइआ ते होइ भिंन॥

जिस पर वह परमेश्वर स्वयं प्रसन्न है तथा जो परमेश्वर की माया से भिंन=अलग यानि असंग होता है। वही विष्णु उपासना करने वाला शुद्ध वैष्णव है।

करम करत होवै निहकरम॥ तिसु बैसनो का निरमल धरम॥

जो कर्म करता हुआ निहकरम=निष्काम होता है। उस वैष्णव का धर्म निर्मल है।

काहू फल की इछा नही बाछै॥ केवल भगति कीरतन संगि राचै॥

जो किसी कर्म के फल की इच्छा नहीं बाछै=चाहता, केवल परमेश्वर की भक्ति तथा उसके कीरतन=यश गाने में ही रचा रहता है।

मन तन अंतरि सिमरन गोपाल॥ सभ ऊपरि होवत किरपाल॥

जिसके मन, तन में गोपाल परमेश्वर का सिमरन है। तथा सांसारिक उपयोग में सब पर कृपालू होता है।

आपि द्रिड़ै अवरह नामु जपावै॥ नानक ओहु बैसनो परम गति पावै॥ २ ॥

स्वयं तो हृदय में नाम को दृढ़ करके रखता है तथा अन्यों को नाम सिमरन करवाता है। गुरु जी कथन करते हैं कि वह वैष्णव परमगति=केवल मुक्ति को प्राप्त करता है।। २।।

प्रश्न-"भगउतीए" (रासधारीया भक्त) के लक्षण क्या हैं? गुरु उत्तर -

भगउती भगवंत भगति का रंगु॥ सगल तिआगै दुसट का संगु॥

भगउती=रासधारीया असली वह है, जिसको प्रभु की भक्ति का रंग चढ़ गया है तथा जो सभी प्रत्यक्ष दुष्टों का संगु=साथ (संगति) छोड़ देता है, अर्थात्-कामादि बुरे कर्मों

****

का त्याग कर देता है।

सो भगउती जो भगवंतै जाणै।। गुर परसादी आपु पछाणै।।
धावतु राखै इकतु घरि आणै।। जीवतु मरै हरि नामु वखाणै।।
ऐसा भगउती उतमु होइ।। नानक सचि समावै सोइ।। (पृष्ठ ८८)

मन ते बिनसै सगला भरमु॥ करि पूजै सगल पारब्रहमु॥

(उसके) मन से सारा भ्रम दूर हो गया है। सभी में पारब्रह्म को भरपूर जानकर पूजता है।

साधसंगि पापा मलु खोवै॥ तिसु भगउती की मति ऊतम होवै॥

तथा सन्तों के संग में बैठकर पापों की मैल को खोवै=दूर करता है। उस भक्त की मति=बुद्धि उत्तम होती है।

प्रसंग-चोर के पाप निवृत होने का

बार देश में एक "सुरजन दास" नामक उदासीन महात्मा हुए हैं जो प्रथम अवस्था में सबसे बड़े डाकू थे। एक बार सन्त टहल दास उदासीन महात्मा ने भण्डारा करने का संकल्प करके हजारों रुपये की वस्तुएँ मंगवाई हुई थीं। भण्डारे की तारीख में अभी कुछ दिन बाकी थे। जिस समय डाकूओं को पता चला तो उन्होंने सन्त टहल दास जी के डेरे में आकर सारा सामान लूट लिया। इतने में सन्त टहल दास जी जाग पड़े, उन्होंने डाकूओं को पूछा कि आप कौन हैं तथा क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा, हम डाकू हैं तथा आपका माल लूट रहे हैं। सन्तों ने वचन किया कि यह तो अच्छा ही हुआ, हमने भी तो भण्डारा कर के लुटाना ही था, आप ने स्वयं ही लूट लिया, हां! यह तो बहुत अच्छा हुआ। सन्त जी अन्दर जाकर अन्य सामान भी ले आये तथा उनके पास लाकर कहने लगे कि इस सामान के साथ मेरी चमड़ी भी ले जाओ कोई चीज़ डालने के काम आयेगी। यह बात सुनते ही डाकूओं का हृदय पिघल गया तथा शरमिन्दा होकर कहने लगे, "महाराज! हमारा दोष क्षमा कर दो।" सन्त जी ने उनके सरदार को कहा, यह पाप जो तू कर रहा है, इसका फल तुझे अकेले को ही भुगतना पड़ेगा, तेरे साथी इस पाप में सहयोगी नहीं होंगे। सन्तों के वचन सुनकर वह चरणों में गिर पड़ा तथा हाथ जोड़ कर कहने लगा, अपने चरणों से लगाकर मेरे दोष क्षमा कर दो। सन्तों ने कहा, ओइ दृष्ट! हमारे चरण तो छोड़ दे लेकिन उसने न छोड़े, फिर सन्तों ने उस की पीठ पर चिमटा मारा उससे उसकी पीठ पर निशान पड़ गया परन्तु उसने चरण फिर भी न छोड़े। लोगों ने भी कहा लेकिन उसने पाँव नहीं छोड़े। सन्तों ने ज़ोर से चिमटा मारकर कहा, अब तो चरण छोड़ दे लेकिन उसने फिर भी न छोड़े। जब सन्तों ने तीसरी बार चिमटा मारा तो उसका शरीर जख्मी हो गया परन्तु उस डाकू ने सन्तों के चरणों से सिर न उठाया। इस पर सन्तों ने प्रसन्न होकर उसे बाजू से पकड़ कर उठाया तथा

****
अपने गले से लगा कर कहा, "तेरे तीन जन्मों के पाप समाप्त हो गये हैं।" तत्पश्चात् सन्तों ने उसे अपने चरणों में स्थान देकर अपना सेवक बना लिया तथा राम राम के सिमरन का उपदेश देकर महापुरुष बना दिया।

भगवंत की टहल करै नित नीति॥ मनु तनु अरपै बिसन परीति॥

जो भक्त परमेश्वर की सेवा नित्य नेम से करता है, और क्या कहना, अपने मन तन को परमात्मा की प्रीति में अर्पण कर देता है।

हरि के चरन हिरदै बसावै॥ नानक ऐसा भगउती भगवंत कउ पावै॥ ३॥

तथा हरि के चरणों को अपने हृदय में रखता है। गुरु जी व्याख्यान करते हैं कि ऐसा भक्त परमेश्वर को प्राप्त कर लेता है।। ३।।

प्रश्न - पण्डित के लक्षण क्या होते हैं? गुरु उत्तर-

सो पंडितु जो मनु परबोधै॥ राम नामु आतम महि सोधै॥

पण्डित वह जो अपने मन को पर=भली भांति, बोधै=ज्ञान देता है तथा आतम= मन में "राम है नाम जिसका" उसका सोधै=निर्णय करता है।

सो पंडितु जो तिहा गुणा की पंड उतारै।। *(मलार मः ३, पृष्ठ १२६१)*

राम नाम सारु रसु पीवै॥ उसु पंडित कै उपदेसि जगु जीवै॥

सभी वेदों शास्त्रों के सारु=सिद्धान्त रूप राम नाम रस को पीता है। उस पण्डित के उपदेश के कारण जगत् जीवित है।

हरि की कथा हिरदै बसावै॥ सो पंडितु फिरि जोनि न आवै॥

जो हरि की कथा को अपने हृदय में बसा लेता है। वह पण्डित फिर योनि के चक्कर में नहीं पड़ता।

बेद पुरान सिम्रिति बूझै मूल॥ सूखम महि जानै असथूलु॥

जो पण्डित चार वेद, अठारह पुरान, सत्ताईस समृतियों के मूलु=मूल (परमात्मा) को बूझता है तथा सूक्ष्म स्वरूप, निर्गुण ब्रह्म में समस्त विशाल ब्रह्मण्ड को कल्पनात्मक जानता है।

चहु वरना कउ दे उपदेसु॥ नानक उसु पंडित कउ सदा अदेसु॥ ४॥

फिर - (ब्राह्मण, क्षत्रिय, शुद्र, वैश्य) इन चारों ही वर्गों के प्राणियों को जो प्रेम सहित उपदेश देता है। गुरु जी कहते हैं कि हम उस पण्डित को हमेशा नमस्कार करते हैं।। ४।।

बीज मंत्रु सरब को गिआनु॥ चहु वरना महि जपै कोऊ नामु॥

बीज मंत्रु=बीज मात्र अर्थात् समानता से सब को परमेश्वर का ज्ञान है। छोटे बालक

****
से भी पूछा जाए तो वह भी कहता है कि वह परमात्मा है।

अर्थात्-सर्व मन्त्रों का बीज=कारण रूप "ओ अंकार" सहित "सतिनामु" मन्त्र है। उस नाम को चहु जातियों में से चाहे कोई भी जपे, उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है।

जो जो जपै तिस की गति होइ॥ साधसंगि पावै जनु कोइ॥

सतिनामु मन्त्र को जो जो प्राणी जपेगा, उसकी मुक्ति होगी। परन्तु इस नाम को सन्तों के संग में मिलकर कोई विरला ही जनु=मनुष्य प्राप्त करता है।

करि किरपा अंतरि उर धारै॥ पसु प्रेत मुघद पाथर कउ तारै॥

जिस पर अकाल पुरख (परमात्मा) कृपा करता है-वह नाम को हृदय के अन्दर धारण कर लेता है। नाम ऐसा समर्थ है-जो पशु, प्रेत, मुघद=मूर्ख तथा पत्थरों जैसे सख्त स्वभाव वाले पुरुषों को भी पार उतारता है।

यथा - **पसू परेत मुगध कउ तारे पाहन पारि उतारै।।** *(पृष्ठ ८०२)*

सरब रोग का अउखदु नामु॥ कलिआण रूप मंगल गुण गाम॥

सभी रोगों की निवृत्ति की अउखदु=औषधि नाम है। कल्याण स्वरूप जो परमेश्वर है, मंगल करने वाला है, उसके गुणों को गाम=गाओ।

काहू जुगति कितै न पाईऐ धरमि॥
नानक तिसु मिलै जिसु लिखिआ धुरि करमि॥ ५॥

उसके नाम के बिना अन्य किसी जुगति=युक्ति द्वारा तथा अन्य किसी धर्म द्वारा उस परमेश्वर की प्राप्ति नहीं होती। गुरु जी कथन करते हैं कि नाम उसको प्राप्त होता है जिसके माथे पर प्रारम्भ से ही श्रेष्ठ कर्मों का लेख लिखा होता है।। ५।।

प्रत्यक्ष रामदासिये घुंघरू बांध कर नाचते गाते तथा मांग कर खाते हैं।

यथा- **घूंघर बाधि भए रामदासा रोटीअन के ओपावा।।**
बरत नेम करम खट कीने बाहरि भेख दिखावा।। *(मारू म: ५, पृष्ठ १००३)*

प्रश्न - असल रामदासियों के लक्षण क्या हैं?

रामदासिया एक भेष है, उसके लक्षण अब बताते हैं-

[पृष्ठ २७५]

जिस कै मनि पारब्रहम का निवासु॥ तिस का नामु सति राम दासु॥

जिस के हृदय में पारब्रह्म के नाम का निवास है। उस का नाम सति=निश्चय ही राम का दास है।

आतम रामु तिसु नदरी आइआ॥ दास दसंतण भाइ तिनि पाइआ॥

उसको आतम रामु=परमात्मा, अर्थात्-अपना आप राम रूप करके नज़र आया

है। उसने सेवकों में सेवक भाव ही पाया है।

सदा निकटि निकटि हरि जानु॥ सो दासु दरगह परवानु॥

जो हरि को प्रायः नजदीक से नजदीक जानता है। वह राम का सेवक दरगह में स्वीकार होता है।

अपुने दास कउ आपि किरपा करै॥ तिसु दास कउ सभ सोझी परै॥

अपने स्वीकृत सेवक पर जब परमेश्वर स्वयं कृपा करता है, तो उस सेवक को स्वयं समझ पड़ जाती है।

सगल संगि आतम उदासु॥ ऐसी जुगति नानक राम दासु॥ ६॥

फिर वह शारीरक रूप में सभी के साथ अर्थात्-गृहस्थ में रहते हुए भी आतम=मन से सभी से उदासु=खिन्न रहता है।

गुरु जी कहते हैं-ऐसी युक्ति वाला रामदासिया है।। ६।।

प्रश्न - जीवन मुक्त अवस्था वाले के क्या लक्षण हैं? गुरु द्वारा उत्तर -

प्रभ की आगिआ आतम हितावै॥ जीवन मुकति सोऊ कहावै॥

जो अपने आतम=हृदय में प्रभु की आज्ञा को प्रेम सहित लाता है, वही मनुष्य जीवन मुक्त अवस्था वाला कहलाता है।

तैसा हरखु तैसा उसु सोगु॥ सदा अनंदु तह नही बिओगु॥

उसे जैसा हर्ष होता है, वैसा दुख होता है। हर्ष तथा दुखी अवस्था से ऊपर जो आनन्द है, वह आनन्द उसको हमेशा बना रहता है, उसे बिओगु=दुख नहीं होता।

तैसा सुवरनु तैसी उसु माटी॥ तैसा अंम्रितु तैसी बिखु खाटी॥

(फिर उसकी वृत्ति ऐसी सम हो जाती है) जैसा उसे सवर्ण प्रतीत होता है, वैसी ही मिट्टी। जैसा उसको अमृत मीठा लगता है, वैसा ही उसे ज़हर लगता है। जितनी कौड़ी विष महसूस करता है उतना ही अमृत, दोनों एक समान रूप खाटी=प्राप्त होते हैं।

तैसा मानु तैसा अभिमानु॥ तैसा रंकु तैसा राजानु॥

जैसा उसे अपना मानु=आदर लगता है, वैसा ही अपना अभिमानु= निरादर लगता है। अर्थात्-आदर-निरादर में कोई अंतर नहीं समझता। वह कहता है-

जे लोक सलाहे ता तेरी उपमा जे निंदै त छोडि न जाई।। *(सूही मः ४, पृष्ठ ७५७)*

रंकु=कंगाल, राजानु=राजा, गरीब तथा अमीर, राजा तथा कंगाल, दोनों से एक जैसा व्यवहार करता है।

जो वरताए साई जुगति॥ नानक ओहु पुरखु कहीऐ जीवन मुकति॥ ७॥

****
परमात्मा जो भी करता है, साई=उसे वह जीवन मुक्त वाला पुरुष युक्ति सहित ही निश्चय करता है कि वाहिगुरु ने जो किया है, ठीक किया है।

अथवा- इन्द्रियों को जो भी प्रयोग करता है, साई=वह युक्ति पूर्वक प्रयोग करता है। गुरु जी कहते हैं कि वह व्यक्ति जीवन मुक्त अवस्था वाला कहा जाता है।। ७।।

मान मोह दोनो कउ परहरि गोबिंद के गुन गावै।।

कहु नानक इह बिधि को प्रानी जीवन मुकति कहावै।। *(पृष्ठ ८३१)*

यथा- **जीवन मुकतु सो आखीऐ जिसु विचहु हउमै जाइ।। ६।।**

(मारू मः १, पृष्ठ १०१०)

प्रसंग-जीवन मुक्त जड़ भरथ महात्मा का

किसी देश का एक राजा था, उसके कोई सन्तान नहीं थी। अनेक यत्नों द्वारा भी जब उसके सन्तान न हुई तो उसने कई विद्वानों तथा ज्योतिषियों से सन्तान उत्पति का साधन पूछा। एक ज्योतिषी ने कहा, "हे राजन् ! यदि आप सन्तों की सेवा करोगे तो उनके आशीर्वाद से अवश्य सन्तान पैदा होगी।" उसी समय राजा ने नदी के किनारे एक विशाल आश्रम बनवा दिया तथा उसमें साधू-सन्तों का निवास होने लगा। राजा अपनी रानी सहित वहां पर अन्न-पानी, वस्त्र आदि लिजा कर हर तरह से सन्तों की सेवा करने लगा। राजा रानी की सेवा पर प्रसन्न होकर एक महात्मा ने पूछा, "हे राजन्! तुम किस भावना से सेवा कर रहे हो?" राजा ने अपनी झोली फैलाकर कहा, "महात्माजन! आपकी कृपा से मेरे पास सब कुछ है परन्तु केवल सन्तान की कमी है, आप कृपा करो कि हमारे भी आंगन में फूल खिले।" सन्तों ने कहा, "राजन् ! चिन्ता मत करो, आपके घर दो पुत्र पैदा होंगे लेकिन उनमें से एक को गृहस्थी बनाकर राज्य सौंप देना तथा दूसरे को साधू बनाना और स्वयं राज्य त्यागकर जीवन मुक्त होकर रहना।"

सन्तों के वर अनुसार कुछ समय पश्चात् राजा के घर दो पुत्र पैदा हुए। उस दिन के पश्चात् राजा के हृदय में सन्तों प्रति अत्यन्त श्रद्धा हो गई तथा प्रतिदिन सत्संग में जाने लगा, जिससे राजा के मन को बड़ी शान्ति मिली। शास्त्र में जीवन मुक्त अवस्था के लक्षण पढ़े तथा वैसे ही महात्माओं की तलाश करने लग पड़ा। तलाश करते हुए पता चला कि 'जड़ भरथ' नामक महात्मा में जीवन मुक्त अवस्था वाले पूरे लक्षण हैं।

जीवन मुक्त अवस्था वाले महात्मा में पांच गुण होते हैं, जो इस प्रकार हैं:-

१ हर पल अपने स्वरूप का ज्ञान रहना।

२ तृष्णा तथा वासना आदि से रहित होना।

३ किसी से वाद विवाद न करना।

४ हर पल दुख का आभाव होना।

गुरूवाणी में श्री गुरु तेग बहादुर जी व्याख्यान करते हैं:-

जो नरु दुख मै दुखु नही मानै।।
सुख सनेहु अरु भै नही जा कै कंचन माटी मानै।। १।। रहाउ।।
नह निंदिआ नह उसतति जा कै लोभु मोहु अभिमाना।।
हरख सोग ते रहै निआरउ नाहि मान अपमाना।। १।।
आसा मनसा सगल तिआगै जग ते रहै निरासा।।
कामु क्रोधु जिह परसै नाहनि तिह घटि ब्रहमु निवासा।। २।।

(सोरठि मः ९, पृष्ठ ६३३)

५ हर पल हृदय में खुशी रहनी, अनंद में मस्त रहना।

इस तरह के पांच गुण 'जड़ भरथ' महात्मा में दिखाई देते थें। राजा को उन सन्तों के दर्शनों की बहुत इच्छा हुई। उन सन्तों की परीक्षा लेने के लिए राजा के अपने बाग में एक नीम का वृक्ष था, उस पर निमोलियां लगी हुई थीं, जो भी कोई सन्त आता, उसे राजा कहता था कि इस आम के वृक्ष पर छोटे-छोटे आम लगे हुए हैं। इनके पकने पर सेर-सेर के हो जाते हैं। इन फलों को आप खा जाना। आप जाने की जल्दी मत करो। उसे देखकर महात्मा कहते, हे राजन्! यह तो नीम का वृक्ष है आम नहीं है। इतना कह वह चले जाते थे। राजा समझ जाता कि यह 'जड़ भरथ' महात्मा नहीं है। राजा ने उस बाग में एक तोता भी रखा हुआ था जो आने जाने वाले सन्तों को तथा राजा को आदर सहित मीठे-मीठे वचन सुनाकर प्रसन्न करता था तथा सन्तों को कहता था कि सन्त जी! मैंने सुना है कि प्रभु का नाम जन्म-मरण के बन्धन को काट देता है। परन्तु मेरा तो लोहे का पिंजरा जो मेरे लिए बंधन रूप है, इसको नहीं काटता, मैं रात दिन नाम लेता रहता हूँ, कोई उपाय बताओ जिस से मेरा यह बन्धन टूट जाए।

महात्मा ने अनेकों युक्तिएं बताईं लेकिन उसका पिंजरा न टूटा।

अन्त में एक दिन घूमते फिरते 'जड़ भरथ' महात्मा भी आ गये। जिस समय बाग के अन्दर गये तो तोते ने बहुत मीठे-मीठे वचनों से उनका स्वागत किया तथा प्रश्न किया महाराज जी! कोई ऐसी युक्ति बताओ जिस से यह लोहे का पिंजरा टूट जाए।

सन्तों ने कहा, "मन इन्द्रिय को रोक कर मुर्दे की भान्ति लेट जा, अभी पिंजरा टूट जायेगा।" राम राम जपने से तोता का हृदय तो पहले ही शुद्ध था। सन्तों के वचनानुसार जिस समय मन इन्द्रिय प्राणों को रोक कर लेट गया तो इतने में राजा आ गया, तोते ने पहले की भान्ति मीठे वचन बोलकर आदर न किया। राजा ने माली से पूछा, "तोता कहां है? बोलता नहीं।" माली ने देखकर कहा, "वह तो मरा पड़ा है।" उसी समय राजा ने उस पिंजरे को अपने पास मंगवाया, तोते को पिंजरे में से बाहर निकाला, उस पर हाथ फेर कर सुगन्धित इत्र छिड़का। परन्तु तोते ने आँख भी न खोली, फिर राजा ने कहा, इसे बाहर खुली हवा में रखो, शायद ठीक हो जाये।

जिस समय तोते को खुली हवा में रखकर सभी अपने-अपने कार्य में व्यस्त हे

****
गये तो वह मौका पाकर उड़कर एक वृक्ष की टाहनी पर जा बैठा तथा महात्मा 'जड़ भरथ' का धन्यवाद किया कि उन महापुरुषों की कृपा से ही मेरी मुक्ति हो पाई है। जब राजा को इस बात का पता चला तो वह भी महात्मा के चरणों में पड़ गया तथा कुशल-मंगल पूछ कर कहने लगा, "इस आम के वृक्ष के फल पककर सेर-सेर के हो जाते हैं तथा बहुत ही मीठे होते हैं, कृपा आप इसके फल अवश्य खाकर जाना, जाने की शीघ्रता नहीं करनी।" 'जड़ भरथ' महात्मा ने जाने की कोई शीघ्रता न की। राजा ने अनेक प्रकार की परीक्षाएँ लीं लेकिन सन्तों के हृदय में व्यग्रता न आई। अन्त में राजा ने नम्रता में आकर विनय की, "आप कोई ऐसी युक्ति बताएँ जिससे मैं गृहस्थ में रहकर भी सुख दुख आने पर हर्ष तथा शोक प्रकट न करूँ, बल्कि जीवन मुक्ति अवस्था के आनन्द को प्राप्त करूँ।"

महात्मा ने कहा, हे राजन्! तीन गुण ही व्यक्ति को दुखी तथा सुखी करते हैं, तुम इन तीनों गुणों को त्याग दो, तुम्हारा तीनों गुणों से कोई सम्बन्ध नहीं है, तेरा स्वरूप निर्गुण है।

जैसे बादाम रोगन का - बादामों के पौधे, पत्ते, टाहनी, फलों, फूलों आदि से कोई सम्बन्ध नहीं होता, बल्कि बादाम के ऊपरी छिलके को तोड़कर उस में से गिरी निकाल कर उसे रगड़ कर बादाम रोगन निकाल कर शेष तलछट को फैंक दिया जाता है।

इसी प्रकार यह तीनों गुण तथा तीनों कारण सूक्ष्म, स्थूल शरीर तलछट के समान हैं। तुम इन में रहते हुए भी इन से अल्ग हो। जैसे तलछट ने अपने भीतर बादाम रोगन छिपा रखा है, दर्शन नहीं करने देता, तलछट बादाम रोगन का बन्धन रूप है। इसी तरह तलछट रूप तीनों शरीरों तथा तीनों गुणों ने तेरे स्वरूप को छिपा रखा है। इस लिए तेरे स्वरूप में यह सभी बन्धन रूप हैं, विचार कर इन सभी को तुम त्याग कर मुक्त रूप हो जाओ। माता पिता, स्त्री, पुत्र आदि जिन सम्बन्धियों में तेरी ममता है इन्हें नाशवान समझकर त्याग दे। यह तेरे सम्बन्धी नहीं, बल्कि तेरे शरीर के सम्बन्धी हैं। इन्हें त्यागकर फिर शरीर की ममता को भी त्याग दे तथा हृदय, बुद्धि आदि को व्यग्र रूप समझकर त्याग दे, त्रिगुण आत्मिक माया जो सभी का कारण है उसे भी त्याग दे।

इस प्रकार के शुभ विचारों द्वारा आत्मा रूपी बादाम रोगन को निकाल कर त्रिगुण रूप माया को तलछट रूप जान कर यानि मिथिआ रूप समझ कर त्याग दे जिस समय माया रूप तीनों गुणों का त्याग करेंगा तो त्रिगुण अतीत आत्मिक वस्तु को अपना स्वरूप निश्चय करके जीवन मुक्त हो जाएँगा।

"जड़ भरथ" नामक महापुरुषों से आदेश सुनकर राजा तीनों गुणों को त्यागकर दुख सुख में समरूप होकर रहने लगा।

पारब्रहम के सगले ठाउ॥ जितु जितु घरि राखै तैसा तिन नाउ॥

प्रत्यक्ष सभी स्थान (योनी रूप सभी स्थान) पारब्रहम परमेश्वर के हैं। जिस जिस घर में जिस जिस व्यक्ति को रखता है, वैसा ही उसका नाम पैदा होता है। जैसे ऊपर कह कर आये हैं-अपृश्य, वैष्णव, भक्त, पण्डित, जीवन मुक्ति जैसी प्रक्रिया को यह जीव धारण करता है, वैसा ही उसका नाम पड़ जाता है।

अर्थात्-जिस जिस योनी में रखता है, वैसा ही उसका नाम पड़ जाता है- कुत्ता, बिल्ली, गधा आदि।

आपे करन करावन जोगु॥ प्रभ भावै सोई फुनि होगु॥

वह स्वयं ही करने वाला है तथा करवाने वाला है। जो प्रभु चाहता है फिर वही होता है।

पसरिओ आपि होइ अनत तरंग॥ लखे न जाहि पारब्रहम के रंग॥

स्वयं ही परमेश्वर अनत तरंग=अनन्त तरंगों के रूप में फैल रहा है उस पारब्रह्म के रंग=चमत्कार समझे नहीं जा सकते।

जैसी मति देइ तैसा परगास॥ पारब्रहमु करता अबिनास॥

जैसी शिक्षा प्रदान करता है, वैसा ही परगास=ज्ञान होता है। वह यश रूप ब्रह्म=व्यापक परमेश्वर सब का कर्ता तथा नाश से रहित है।

सदा सदा सदा दइआल॥ सिमरि सिमरि नानक भए निहाल॥ ८॥ ९॥

वह प्रभु पहले भी हमेशा दयालू था, अब भी दयालू है, भविष्य में भी सदा दयालू होगा। साहिब कहते हैं- जो उस के नाम का सिमरन करते हैं, वह प्रायः निहाल हुए हैं।। ८।। ९।।

(दसवीं असटपदी)

सलोकु॥ उसतति करहि अनेक जन अंतु न पारावार॥

अनेक जन उस परमात्मा की स्तुति करते हैं, जिस के आर-पार का अन्त नहीं आता।

नानक रचना प्रभि रची बहु बिधि अनिक प्रकार॥ १॥

सतिगुरु जी कथन करते हैं-प्रभु ने अनेक प्रकार की रचना बहुत सी विधियों द्वारा रची हुई है।। १।।

पहले सतिगुरु जी अच्छे व्यक्तियों का प्रसंग सुनाते हैं—

असटपदी॥ कई कोटि होए पूजारी॥ कई कोटि आचार बिउहारी॥

कई करोड़ परमेश्वर की पूजा करने वाले पूजारी हुए हैं। अथवा कई करोड़ पूजा के हठी हुए हैं, जो पूजा के धान से हटकर रहे हैं। अथवा कई करोड़ पू=नरकों के जारी=साड़ने वाले गुरमुख हुए हैं। कई करोड़ आचार=श्रेष्ठ कर्तव्यों की पालना करने वाले हुए हैं।

कई कोटि भए तीरथ वासी॥ कई कोटि बन भ्रमहि उदासी॥

कई करोड़ तीर्थों पर वास करने वाले हैं। कई करोड़ उदासीन होकर बन=जंगलों में भ्रमहि=भटक रहे हैं।

कई कोटि बेद के स्रोते॥ कई कोटि तपीसुर होते॥

कई करोड़ वेदों के स्रोते=सुनने वाले हैं। कई करोड़ तप करने वालों के ईश्वर, महान् तपी हुए हैं।

कई कोटि आतम धिआनु धारहि॥ कई कोटि कबि काबि बीचारहि॥

कई करोड़ व्यक्ति आतम=अपने स्वरूप के ध्यान को धारण करते हैं। कई करोड़ व्यक्ति कवि होकर काव्य शास्त्र पर विचार कर रहे हैं।

कई कोटि नवतन नाम धिआवहि॥ नानक करते का अंतु न पावहि॥ १ ॥

कई करोड़ ऐसे हैं, जो परमेश्वर के नवतन=नवीन से नवीन नाम का सिमरन करते हैं। गुरु जी कथन करते हैं, परन्तु वह कर्त्ता का अन्त नहीं पा सकते।। १।।

अब माया में लीन व्यक्तिओं का हाल सुनाते हैं—

कई कोटि भए अभिमानी॥ कई कोटि अंध अगिआनी॥

कई करोड़ व्यक्ति अभिमानी=अहंकारी हो रहे हैं। कई करोड़ व्यक्ति अन्धे अज्ञानी हो रहे हैं। अर्थात्-स्वरूप ज्ञान से रहित हो रहे हैं।

कई कोटि किरपन कठोर॥ कई कोटि अभिग आतम निकोर॥

कई करोड़ व्यक्ति किरपन=कृपण हो रहे हैं, कई करोड़ कठोर हृदय वाले हो रहे हैं। कई करोड़ व्यक्ति अभिग=लीन न होने वाले हैं, परमेश्वर में लीन न होने वाले हैं तथा आतम=हृदय उनका नि=विशेष करके भक्ति रंग से कोरा है।

कई कोटि पर दरब कउ हिरहि॥ कई कोटि पर दूखना करहि॥

कई करोड़ व्यक्ति पराये धन को हिरहि=चुराते हैं। कई करोड़ व्यक्ति पराई निन्दा करते हैं।

कई कोटि माइआ स्रम माहि॥ कई कोटि परदेस भ्रमाहि॥

कई करोड़ व्यक्ति माया की प्राप्ति में कई प्रकार के स्रम=कष्ट सहन करते हैं। कई करोड़ व्यक्ति प्रदेशों में भ्रमाहि=भटक रहे हैं।

जितु जितु लावहु तितु तितु लगना॥ नानक करते की जानै करता रचना॥ २ ॥

परन्तु जहां जहां लगाता है, वहां वहां कोई लगता है। गुरु जी कथन करते हैं कि कर्ता पुरख की रचना को कर्ता वाहिगुरु स्वयं ही जानता है।। २।।

****

अब संसार की कुल जनता की गिनती करते हैं।

कई कोटि सिध जती जोगी॥ कई कोटि राजे रस भोगी॥

कई करोड़, सिद्ध, कई करोड़ जती, कई करोड़ योगी हो रहे हैं। कई करोड़ रस भोग करने वाले राजा हो रहे हैं।

कई कोटि पंखी सरप उपाए॥ कई कोटि पाथर बिरख निपजाए॥

कई करोड़ पक्षी पैदा किये हैं, कई करोड़ साँप पैदा किये हैं। कई करोड़ पत्थर तथा वृक्ष उत्पन्न किये हैं।

कई कोटि पवण पाणी बैसंतर॥ कई कोटि देस भू मंडल॥

कई करोड़ पवन, जल तथा बैसंतर=अग्नि देवता हैं। कई करोड़ देश तथा कई करोड़ भू मंडल=पृथ्वी मण्डल बनाए हैं।

[पृष्ठ २७६]

कई कोटि ससीअर सूर नख्यत्र॥ कई कोटि देव दानव इंद्र सिरि छत्र॥

कई करोड़ ससी=चन्द्रमा, सूर=सूर्य तथा नख्यत्र=तारे बनाए हैं। कई करोड़ देवते, असुर तथा इन्द्र बनाए हैं। जिस इन्द्र के सिर पर छत्र शोभ रहा है।

सगल समग्री अपनै सूति धारै॥ नानक जिसु जिसु भावै तिसु तिसु निसतारै॥ ३॥

सम्पूर्ण सामग्री को अपने आदेश, अथवा-सत्ता रूपी सूत्र में धारण करता है। गुरु जी कहते हैं कि परमेश्वर जिस जिस को तारना चाहता है उसे तार लेता है।। ३।।

कई कोटि राजस तामस सातक॥ कई कोटि बेद पुरान सिम्रिति अरु सासत॥

कई करोड़ रजो गुण, तमो गुण तथा सतो गुण हुए हैं,

अर्थात् - राजसी, तामसी, शातकी व्यक्ति हुए हैं। कई करोड़ वेद, पुराण, समृतियें तथा शास्त्र हुए हैं।

कई कोटि कीए रतन समुद॥ कई कोटि नाना प्रकार जंत॥

कई करोड़ रत्न तथा समुद्र किये हैं, अथवा - कई करोड़ रत्नों के समुद्र किये हैं। कई करोड़ नाना=कई प्रकार के जंत=जीवों की रचना की है।

कई कोटि कीए चिर जीवे॥ कई कोटि गिरी मेर सुवरन थीवे॥

कई करोड़ व्यक्ति चिरंजीव किये हैं। कई करोड़ साधारण गिरी=पर्वत तथा पहाड़ियें पैदा की हैं तथा कई करोड़ सोने के सुमेर पर्वत थीवे= हुए हैं।

कई कोटि जख्य किंनर पिसाच॥ कई कोटि भूत प्रेत सूकर म्रिगाचं॥

कई करोड़ यक्ष, किंनर तथा पिशाच पैदा किये हैं। जख्य=कुबेर की वंश में से हुए

****
हैं। किंनर हाहा-हू हू गन्धर्वों के साथ जोड़ी बजाने वाले हैं। पिसाच=भूतों की एक जाति है। कई करोड़ भूत, प्रेत, सूकर=सूअर, म्रिगाच=हिरनों को खाने वाले शेर आदि पैदा किये हैं।

सभ ते नेरै सभहू ते दूरि॥ नानक आपि अलिपतु रहिआ भरपूरि॥ ४॥

सभी (गुरमुखों) के नजदीक है, सभी (मनमुखों) से दूर है। गुरु जी कहते हैं, वह प्रभु स्वयं अलिपत भी है तथा सभी में परिपूर्ण भी हो रहा है।। ४।।

कई कोटि पाताल के वासी॥ कई कोटि नरक सुरग निवासी॥

कई करोड़ जीव पाताल में निवास करने वाले हैं। कई करोड़ नरक-स्वर्ग में निवास करने वाले हैं।

कई कोटि जनमहि जीवहि मरहि॥ कई कोटि बहु जोनी फिरहि॥

कई करोड़ जन्म ले रहे है, कई करोड़ जीवन व्यतीत कर रहे हैं तथा कई करोड़ ही मृत्यु को प्राप्त कर रहे हैं। कई करोड़ योनियों के चक्कर में फंसे हुए हैं।

कई कोटि बैठत ही खाहि॥ कई कोटि घालहि थकि पाहि॥

कई करोड़, ऐसे व्यक्ति हैं जो बैठे ही खा रहे हैं। मुखि अपिआउ बैठ कउ दैन।। तथा कई करोड़ घालहि=कमाते ही थक जाते हैं।

कई कोटि कीए धनवंत॥ कई कोटि माइआ महि चिंत॥

कई करोड़ व्यक्ति धनवंत=धनवान् किये हैं। कई करोड़ माया में ही चिन्तित किये हैं।

जह जह भाणा तह तह राखे॥ नानक सभु किछु प्रभ कै हाथे॥ ५॥

जहां जहां परमेश्वर रखना चाहता है वहीं वहीं रखता है। क्योंकि गुरु जी कथन करते हैं, सब कुछ प्रभु के हाथ में ही है।। ५।।

अब परमेश्वर के प्रेमी व्यक्तियों का हाल सुनाते हैं-

कई कोटि भए बैरागी॥ राम नाम संगि तिनि लिव लागी॥

कई करोड़ संसार से वैराग लिये हुए हैं। उनकी लीनता परमेश्वर के नाम के साथ लगी हुई है।

कई कोटि प्रभ कउ खोजंते॥ आतम महि पारब्रहमु लहंते॥

कई करोड़ व्यक्ति प्रभु को खोज रहे हैं। वह आतम=हृदय में ही पारब्रह्म को लहंते=जान लेते हैं।

कई कोटि दरसन प्रभ पिआस॥ तिन कउ मिलिओ प्रभु अबिनास॥

कई करोड़ ऐसे हैं जिन को प्रभु दर्शन की पिआस=इच्छा लगी हुई है। जिन्हें इच्छा

लगी हुई है, उनको प्रभु अविनाशी मिला है।

कई कोटि मागहि सतसंगु ॥ पारब्रहम तिन लागा रंगु ॥

कई करोड़ संत्संग को ही मांगते हैं। उन्हें पारब्रह्म का रंगु=प्रेम लग जाता है।

जिन कउ होए आपि सुप्रसंन ॥ नानक ते जन सदा धनि धंनि ॥ ६ ॥

जिन पर परमेश्वर स्वयं प्रसन्न हुआ है। गुरु जी कहते हैं, वह व्यक्ति प्रायः धन्य हैं।। ६।।

कई कोटि खाणी अरु खंड ॥ कई कोटि अकास ब्रहमंड ॥

कई करोड़ सुरंगें तथा खण्ड बनाये हैं। कई करोड़ आकाश तथा ब्रह्मण्ड किये हैं।

कई कोटि होए अवतार ॥ कई जुगति कीनो बिसथार ॥

कई करोड़ अवतार हुए हैं। कई युक्तियों द्वारा इस सृष्टि का विस्तार किया है।

कई बार पसरिओ पासार ॥ सदा सदा इकु एकंकार ॥

उस परमेश्वर ने कई बार इस संसार के विस्तार का विकास किया है। लेकिन सदा=स्थिर रूप जो एक ओ अंकार है, वह प्रायः एक रूप ही रहता है।

कई कोटि कीने बहु भाति ॥ प्रभ ते होए प्रभ माहि समाति ॥

कई करोड़, जीव बहु-भान्ति रचित किये हैं। वह जीव प्रभु द्वारा पैदा होकर प्रभु में ही समा जाते हैं।

ता का अंतु न जानै कोइ ॥ आपे आपि नानक प्रभु सोइ ॥ ७ ॥

उस प्रभु का अन्त कोई नहीं जानता, गुरु जी कथन करते हैं, वह प्रभु स्वयं प्रत्येक स्थान पर परिपूर्ण हो रहा है।। ७।।

कई कोटि पारब्रहम के दास ॥ तिन होवत आतम परगास ॥

जो कई करोड़ पारब्रह्म के दास हुए हैं। उन को आतम=अपने आप का परगास= ज्ञान होता है।

कई कोटि तत के बेते ॥ सदा निहारहि एको नेत्रे ॥

जो कई करोड़ तत=सिद्धान्त के बेते= जानने वाले हुए हैं। वह नेत्रे=आंखों द्वारा सदा एक को ही निहारहि=देखते हैं।

कई कोटि नाम रसु पीवहि ॥ अमर भए सद सद ही जीवहि ॥

जो कई करोड़ नाम रस को पीते हैं। वह अ-मर=मृत्यु से रहित होकर सदा सदा ही जीवत रहते हैं।

कई कोटि नाम गुन गावहि॥ आतम रसि सुखि सहजि समावहि॥

जो कई करोड़ परमेश्वर के नाम तथा गुणों को गाते हैं। वह सरलता से ही सुख स्वरूप आत्म-रस में समा जाते हैं।

अपुने जन कउ सासि सासि समारे॥ नानक ओइ परमेसुर के पिआरे॥८॥१०॥

वह परमेश्वर अपने भक्तजनों को श्वास-श्वास सम्भालता रहता है। गुरु जी कहते हैं कि जिनको सम्भालता है, वही परमेश्वर के असल प्यार वाले कहे जाते हैं।। ८।। १०।।

(ग्यारवीं असटपदी)

सलोकु॥ करण कारण प्रभु एकु है दूसर नाही कोइ॥

सभी बातों को करने तथा करवाने वाला जो एक प्रभु है, उसके बिना दूसरा कोई समर्थ नहीं हैं। अथवा- सारे करण=षडयंत्र के कारण=साधन जो महत्व आदि हैं, उनका कारण जो एक प्रभु है, उसके बिना दूसरा अन्य कोई नहीं हैं।

नानक तिसु बलिहारणै जलि थलि महीअलि सोइ॥ १॥

गुरु जी कथन करते हैं, उस वाहिगुरु से हम सदा बलिहार जाते हैं, वह प्रभु जल, थल मही=पृथ्वी, अलि=आकाश में पूर्ण है।। १।।

असटपदी॥ करन करावन करनै जोगु॥ जो तिसु भावै सोई होगु॥

समस्त संसार के करन=साधन जो महत्व आदि हैं, उनके द्वारे पर करवाने वाला भी स्वयं ही है तथा करने वाला भी स्वयं ही है। जो उस परमेश्वर को अच्छा लगता है वही कुछ होता है।

खिन महि थापि उथापनहारा॥ अंतु नही किछु पारावारा॥

एक क्षण में थापि=उत्पति, पालना तथा उथापनहारा=विनाश करने वाला है तथा उसके आर-पार का कुछ अन्त नहीं आता।।

[पृष्ठ २७७]

हुकमे धारि अधर रहावै॥ हुकमे उपजै हुकमि समावै॥

वह परमेश्वर स्वयं अधर=आसरे से रहित है, अन्यों को अपने आदेश में धारण करके रखता है। अथवा-अधर=आकाश आदि को अपने आदेश में धारण रखता है। उस के आदेश में सभी जीव पैदा होते हैं, आदेश में ही समा जाते हैं।

हुकमे ऊच नीच बिउहार॥ हुकमे अनिक रंग परकार॥

उसके आदेश में ही ऊँच तथा नीच का व्यवहार हो रहा है। उसके आदेश में ही अनेक प्रकार के रंग=आनन्द हो रहे हैं।

करि करि देखै अपनी वडिआई॥ नानक सभ महि रहिआ समाई॥ १॥

****

वह परमेश्वर अपनी वडिआई= इच्छानुसार स्वयं ही पैदा करके देखता है। गुरु जी कथन करते हैं कि सभी में वह परमेश्वर समा रहा है।। १।।

प्रभ भावै मानुख गति पावै॥ प्रभ भावै ता पाथर तरावै॥

प्रभु की इच्छा से ही मनुष्य नाम सिमरन करके गति पावै=मुक्ति प्राप्त करता है। यदि प्रभु न चाहे तो मुक्ति प्राप्त नहीं होती, प्रभु की इच्छा हो तो पत्थरों को भी मुक्त कर देता है।

प्रसंग-शाहूकार का

सहारनपुर निवासी एक सेठ शाहूकार का कार्य करता था। उसके दो पुत्र थे। समयानुसार उसने दोनों की शादी कर दी। एक दिन अपनी आयु को भोग कर उस शाहूकार की पत्नी मर गई, जिस से शाहूकार को बहुत दुख महसूस हुआ तथा वैसे भी वह समयानुसार वृद्ध हो चुका था।*

बिस्तर पर पड़ा बलगम निकालता रहता था, पुत्र-वधूयें देखकर बहुत नफरत करने लगीं। क्योंकि वह कंजूस बहुत था, किसी को खाने-पीने के लिए माया नहीं देता था। इसलिये दोनों पुत्रों को उनकी पत्नियें कहने लगीं कि आप अपने पिता जी को हरिद्वार ले जायें। वहां जाकर दान-पुण्य तथा गंगा स्नान करेगा, कुछ सत्संग करेगा, जिस से इस की आयु सफल हो जायेगी। दोनों लड़कों ने अपने पिता को हरिद्वार जाने के लिए कहा, लेकिन वह न माना। फिर सम्बंधियों को बुला कर उनसे कहलाया कि आपका अन्तिम समय है इसलिए सभी संकल्प त्याग कर हरिद्वार जायें तथा वहां पर सत्संग व स्नानादि करें। आपके पुत्र भले हैं तथा वह आपके पास समय समय पर रहकर सेवा करेंगे, वह शाहूकार फिर भी न माना। वह क्रोधित होकर कहने लगा, अभी तो मैं जीवित हूँ आप मुझे अभी घर से निकाल रहे हो, मैं कभी भी गंगा पर जाकर स्नान नहीं करूंगा, क्योंकि गंगा का जल ठण्डा तथा वाई होता है इसलिए मैं पीऊंगा भी नहीं। वहां के साधू तथा ब्राह्मण ठग होते हैं, वह तो मुझे लूट कर खा जाएंगे। इसलिए मैं उनका दर्शन भी नहीं करना चाहता।

कुछ समय के पश्चात् वह अपने श्वास पूर्ण कर मृत्यु को प्राप्त हुआ। उसकी मृत्यु पर सभी सगे-सम्बन्धी इक्ट्ठे हो गये। सभी ने विचार-विमर्श करके यह फैसला किया कि पिता जी का अन्तिम संस्कार गंगा पर ही करना चाहिये तथा सत्रहवीं का भण्डारा आदि भी वहीं पर करेंगे। इस विचार अनुसार उन्होंने एक सुन्दर पालकी सजाई, उसमें मृतक देह को रखकर हरिद्वार की ओर चल पड़े। रास्ते में रात पड़ने पर उन्होंने एक धर्मशाला

---

*जैसे साहिब श्री गुरु नानक देव जी का कथन है:-

सतरि का मति हीणु असीहां का विउहारु न पावै।।
नवै का सिहजासणी मूलि न जाणै अप बलु।। *(माझ वार, पृष्ठ १३८)*

में अपना निवास कर लिया। गर्मी का मौसम होने के कारण पालकी अन्दर कमरे में रख दी, स्वयं सभी बाहर लेट गये तथा आपस में बातें करने लगे कि पिता जी को गंगा पर रहने के लिए बहुत कहा, लेकिन वह न माने। अब तो उनकी हड्डियें गंगा में ही प्रवाह कर देंगे, जिससे इनकी मुक्ति हो जायेगी, इस प्रकार बातें करते हुए वह सो गये।

अन्दर एक कोढ़ी रहता था, वह सभी बातें सुनता रहा तथा अपने हृदय में विचार करने लगा कि यहां तो मुझे कोई पूछता नहीं, हरिद्वार में बहुत दानी आते हैं जो दान पुण्य करके चले जाते हैं, वहां पर मेरा निर्वाह अच्छी तरह से हो जायेगा। यदि मैं हरिद्वार चला जाऊं तो अच्छा है। इस बात पर विचार करके उसने मुर्दे को अपने आसन पर रख दिया तथा स्वयं मुर्दा बनकर उस पालकी में लेट गया। सुबह होते ही वे सभी लोग उठे तथा उस पालकी को उठाकर हरिद्वार की ओर चल पड़े। जिस समय हरिद्वार पहुंच कर ब्राह्मण-साधू इक्ट्ठे करके अपने पिता के संस्कार के लिए पालकी खोलने लगे तो उसी समय कोढ़ी ने भी अंग हिलाये, वे एक दम चकित हो उठे कि मुर्दा जीवित हो गया। जब उन्होंने कपड़े उतारकर देखा तो पालकी में कोढ़ी निकला। उसे देखकर सभी डर गये कि यह कोढ़ी कहां से आ गया। जब उसे पूछा तो उसने सारा वृत्तान्त सुनाया कि आपका पिता वहीं पर ही है। रात को जिस धर्मशाला में आप ठहरे थे उसमें मैं भूखा रहता था। तभी मैं पालकी में लेट कर यहां पर आ गया हूं, यहां पर भीख मांगकर पेट भर खाना खाऊंगा।

उसकी बातें सुनकर वे आपस में कहने लगे कि हमारा पिता जीवित तो गंगा पर नहीं आया लेकिन मर कर भी पहुंच नहीं सका। शेष व्यक्ति वहीं पर रुक गये और शाहूकार का लड़का एक आदमी को साथ लेकर अपने पिता के मृत शरीर को लेने वापिस आया। वहाँ आकर उसने देखा कि वह मृत शरीर वहीं पर पड़ा है। वह उस मुर्दे को अपनी घोड़ी से बाँध कर और स्वयं उस पर स्वार होकर चल पड़े। लेकिन घोड़ी मुर्दे के भय के कारण आगे की बजाय पीछे की ओर चल पड़ी और सहारनपुर पहुंच गई। लोग देखकर हंसने लगे और कहने लगे कि इसे तो आप पालकी में लिटा कर हरिद्वार ले गये थे फिर यह घोड़ी पर यहां कैसे पहुंच गया? उन्होंने सारा वृतान्त उन लोगों को सुनाया। फिर सभी ने विचार किया कि जो व्यक्ति हरिद्वार बैठे हैं उन्हें वापिस बुलाकर इसका अन्तिम संस्कार यहीं पर कर दिया जाये। आखिर उस शाहूकार की अंत्येष्टि वहीं सहारनपुर में की गई। चौथे दिन उस की हड्डियें चुनकर अपने प्रोहित को कहने लगे कि प्रोहित जी! आप स्वयं जाकर इसकी अस्थियों को गंगा में प्रवाह कर आयें।

सभी ने अपनी अपनी मर्जी अनुसार प्रोहित जी को किसी ने दो रुपये, किसी ने पाँच रुपये, किसी ने सात रुपये तथा किसी ने दस रुपये दिये। इस प्रकार १०० रुपये इकट्ठे हो गये। जिस समय प्रोहित अस्थियां लेकर शहर से बाहर निकला तो मन में

ख्याल आया कि यदि यह सारा रुपया साथ लेकर जाऊंगा तो रास्ते में डाकू लूट लेंगे, क्यों न मैं इन्हें घर पर ही रख जाऊं। यह सोचकर बाहर एक जंगल में किसी वृक्ष की टाहनी पर उन अस्थियों की गुथली बांधकर वह प्रोहित घर आ गया। पीछे से एक भंगी लकड़ियें काटने उस जंगल में पहुंचा तथा वह उसी वृक्ष पर चढ़ गया। वहां पर गुथली देखकर उसने समझा कि शायद इसमें धन है। वह गुथली उतारकर वहां से दूर चला गया। जब उसने वह गुथली खोलकर उलटी की तो उस में से हड्डियां निकाल कर एक तरफ फैंक दी तथा धन, सोना तथा कफन आदि लेकर अपने घर चला गया।

इतने में प्रोहित ने वहां वृक्ष के पास आकर उस गुथली को तलाश किया लेकिन जब उसे वह गुथली न मिली तो उसने हरिद्वार जाकर झूठे पत्र लिखवाये और वापिस घर आकर कहने लगा, यह लो पत्र तथा मैं अस्थियों को गंगा जी में बहा आया हूँ। इससे इन लोगों को तसल्ली हो गई कि हमारे पिता की अस्थियां गंगा में पहुंच गईं। छः माह के पश्चात् उस भंगी ने गुथली में से निकले उस कपड़े का कमीज सिला लिया जिससे पालकी को ढका हुआ था। भंगी वह कमीज पहन कर उस सेठ के घर सफाई करने के लिए आया, अभी वह सफाई कर ही रहा था कि घर की एक औरत ने उस की कमीज के कपड़े को पहचान लिया तथा उसने अपने पति से कहा। उसके पति ने तुरंत ही भंगी को धमका कर पूछा तो भंगी ने सारी बात सच सच बता दी कि मैं जंगल में लकड़ें लेने गया था। वहां वृक्ष पर लटकी गुथली को मैंने उतारा तथा उसमें से हड्डियों को एक तरफ फैंक दिया तथा धन, सोना आदि निकाल कर मैंने खर्च लिये। यह कपड़ा भी उसी गुथली में से निकला था। शाहूकार के पुत्रों ने कुटुंब के मुख्य व्यक्ति को भेजकर उस प्रोहित को बुलाया तथा पूछा गया कि जो पत्र तुम हरिद्वार से लिखवा कर लाये थे वह सत्य है या झूठ। इस बात को सत्य कथन करना, नहीं तो हम तुझे अपना प्रोहित नहीं मानेंगे। यह बात सुनकर प्रोहित डर गया तथा एक युक्तिपूरक बात कही कि आपके पिता जी जीवित कभी गंगा पर नहीं गये तथा मरनोपरान्त जब आप उन्हें पालकी में बिठाकर लिजाने लगे तो भी वह रास्ते में ही रह गये। तो फिर मेरे साथ कैसे जा सकते थे। यह बात सुनकर सभी ने विचार किया वह प्रभु की ओर से लापरवाह थे सो प्रभु ने चाहा ही नहीं कि उसकी मुक्ति हो। इसलिए उसकी मुक्ति हो नहीं पाई।

अर्थात्-पत्थर की भान्ति भारे पापियों को, अथवा पत्थर की तरह कठोर हृदय वालों को भव-सागर से पार उतार देता है।

प्रभ भावै बिनु सास ते राखै॥ प्रभ भावै ता हरि गुण भाखै॥

प्रभु चाहे तो श्वासों के बिना भी जीवित रखता है।*

---

* जैसे सुरांक राजा को जीवित रखा था, चाहे उसका सीस काट दिया गया था फिर भी वह पहाड़ की चोटी पर बैठा हुआ कौरवों तथा पाँडवों का युद्ध देखता रहा।

****

प्रभु चाहे तो यह जीव हरि के गुणों का भाखै=उच्चारण करता है।

प्रभ भावै ता पतित उधारै॥ आपि करै आपन बीचारै॥

प्रभु चाहे तो पतित=पापियों को उधारै=मुक्त कर देता है। वह अपने विचार स्वयं करता है, अन्य किसी से विमर्श नहीं लेता।

दुहा सिरिआ का आपि सुआमी॥ खेलै बिगसै अंतरजामी॥

(लोक-परलोक, भक्त-स्वेच्छुक, देवता तथा दानव इन) दोनों ओर का मालिक वह स्वयं परमेश्वर है। स्वयं ही संसार खेल को देखकर प्रसन्न होता है, स्वयं ही अन्तर्यामी है।

जो भावै सो कार करावै॥ नानक द्रिसटी अवरु न आवै॥ २॥

जो उसे अच्छा लगता है वही कार्य करवाता है। गुरु जी कथन करते हैं कि उसके बिना हमें अन्य कोई नज़र नहीं आता।। २।।

कहु मानुख ते किआ होइ आवै॥ जो तिसु भावै सोई करावै॥

बताओ! मनुष्य से क्या हो सकता है? जो उस परमेश्वर को अच्छा लगता है वही कर्म मनुष्य से करवाता है।

इस कै हाथि होइ ता सभु किछु लेइ॥ जो तिसु भावै सोई करेइ॥

यदि इस मनुष्य के हाथ में हो तो सब कुछ अपने आप ही ले ले। लेकिन जो उस प्रभु को अच्छा लगता है यह जीव वही करता है।

अनजानत बिखिआ महि रचै॥ जे जानत आपन आप बचै॥

अनजाने में यह प्राणी विषयों में, अथवा बिखिआ=माया में फंस जाता है। यदि कुछ जानता हो तो कि इसका परिणाम बुरा है तो स्वयं को बचा ले।

भरमे भूला दह दिसि धावै॥ निमख माहि चारि कुंट फिरि आवै॥

भ्रम से भूला हुआ दस दिशाओं में लौ लिये करते हुए दौड़ता फिर रहा है। एक क्षण में ही संकल्पों के कारण चारों कोने घूम आता है।

करि किरपा जिसु अपनी भगति देइ॥ नानक ते जन नामि मिलेइ॥ ३॥

परमेश्वर कृपा करके जिसे अपनी भक्ति देता है। गुरु जी कहते हैं कि वह पुरुष (नामि) परमात्मा के साथ मिल जाता है। अर्थात् अभेद हो जाता है।। ३।।

खिन महि नीच कीट कउ राज॥ पारब्रहम गरीब निवाज॥

वह पारब्रह्म ऐसा गरीब-नवाज़ है। जो एक क्षण में ही कीड़े जैसे नीच=निम्न व्यक्ति को राज्य दे देता है।

जा का द्रिसटि कछू न आवै॥ तिसु ततकाल दह दिस प्रगटावै॥

जा का=जिस प्राणी का तेजस्व कुछ भी नज़र न आता हो। उसे ततकाल=तुरन्त ही दस दिशाओं, अर्थात् चारों ओर प्रकट कर देता है।

जा कउ अपुनी करै बखसीस॥ ता का लेखा न गनै जगदीस॥

जगत् का मालिक परमेश्वर जिसे अपनी बखशिश करता है। उसके कर्मों का हिसाब (लेखा) नहीं गिनता।

जीउ पिंडु सभ तिस की रासि॥ घटि घटि पूरन ब्रहम प्रगास॥

जीव को पिंडु=शरीर आदि सम्पूर्ण रासि=पूंजी उस प्रभु की दी हुई है। उस ब्रह्म स्वरूप का प्रकाश कण-कण में पूर्ण हो रहा है।

अपनी बणत आपि बनाई॥ नानक जीवै देखि बडाई॥ ४॥

अपनी सृष्टि रचना प्रभु ने स्वयं बनाई है। गुरु जी कहते हैं कि मैं उसकी बड़ाई (महानता) को देखकर जीवित हूँ।। ४।।

इस का बलु नाही इसु हाथ॥ करन करावन सरब को नाथ॥

इस जीव का बल इसके अपने हाथों में नहीं है क्योंकि सभी कार्यों को करने करवाने वाला वह स्वयं ही सब का नाथ=स्वामी है।

आगिआकारी बपुरा जीउ॥ जो तिसु भावै सोई फुनि थीउ॥

यह बपुरा=बेचारा जीव तो उस हरि का आज्ञाकारी, अर्थात् उसके आदेशाधीन है। जो प्रभु चाहता है फिर वही होता है।

कबहू ऊच नीच महि बसै॥ कबहू सोग हरख रंगि हसै॥

कभी तो यह प्राणी ऊंची तथा निम्न योनियों (स्थानों) में वास करता है। कभी तो कर्मों के अनुसार शोक करके रोता है तथा कभी खुशी के रंग में हँसता है।

कबहू निंद चिंद बिउहार॥ कबहू ऊभ अकास पइआल॥

कभी निन्दा तथा चिंद=स्तुति का व्यवहार करता है। कभी ऊभ=ऊँचे आकाश में जाता है कभी पइआल=पाताल में जाता है।

कबहू बेता ब्रहम बीचार॥ नानक आपि मिलावणहार॥ ५॥

कभी शास्त्र ज्ञानी होकर ब्रह्म का विचार करता है। अथवा-कभी ब्रह्म विचार का बेता=ज्ञानवान होता है। परन्तु जीव को अपने साथ मिला लेने वाला वह प्रभु स्वयं ही है।। ५।।

कबहू निरति करै बहु भाति॥ कबहू सोइ रहै दिनु राति॥

कभी यह प्राणी बहु प्रकार के नृत्य करता है। कभी यह प्राणी दिन रात सोया

****
ही रहता है।

कबहू महा क्रोध बिकराल॥ कबहूं सरब की होत रवाल॥

कभी महा क्रोध=बहुत गुस्से के कारण बिकराल=डरावनी सूरत वाला दीखने लग जाता है। तथा कभी यह प्राणी सभी के चरणों की रवाल=धूल होता है।

कबहू होइ बहै बड राजा॥ कबहु भेखारी नीच का साजा॥

कभी यह जीव राजा की भान्ति बड़ा होकर बैठता है। तथा कभी भिखारी होकर निम्न वर्ग वाला स्वांग सजा लेता है।

कबहू अपकीरति महि आवै॥ कबहू भला भला कहावै॥

कभी तो अपने अपकीरति=अपयश करवाने में आता है। कभी अपने आप को भला भला कहलाता है।

जिउ प्रभु राखै तिव ही रहै॥ गुरप्रसादि नानक सचु कहै॥ ६ ॥

जिस प्रकार प्रभु रखता है उसी प्रकार यह प्राणी रहता है। गुरु जी कहते हैं कि गुरु कृपा से हम सत्य कथन करते हैं। अथवा-जिस पर गुरु की कृपा होती है वह सत्य नाम को कहता है।

कबहू होइ पंडितु करे बख्यानु॥ कबहू मोनिधारी लावै धिआनु॥

कभी यह जीव पण्डित होकर शास्त्रों का व्याख्यान करता है। कभी यह जीव मोनिधारी=मौनी बनकर ध्यान लगाता है।

कबहू तट तीरथ इसनान॥ कबहू सिध साधिक मुखि गिआन॥

कभी यह जीव तीर्थों के किनारों पर रह कर तीर्थों पर ही स्नान करता रहता है। कभी यह जीव सिद्ध तथा साधिक=जिज्ञासु होकर मुँह द्वारा ज्ञान की बातें करता है।

कबहू कीट हसति पतंग होइ जीआ॥ अनिक जोनि भरमै भरमीआ॥

कभी यह जीव कीड़े, हाथी, पतंगे आदि जीव बनकर अनेक योनियों में भटकने वाला होकर भरमै=घूमता है।

असथावर जंगम कीट पतंगा।। अनिक जनम कीए बहु रंगा।। १।।
ऐसे घर हम बहुतु बसाए।। जब हम राम गरभ होइ आए।। १।। रहाउ।।
जोगी जती तपी ब्रहमचारी।। कबहू राजा छत्र पति कबहू भेखारी।। *(पृष्ठ ३२५)*

[पृष्ठ २७८]

नाना रूप जिउ स्वागी दिखावै॥ जिउ प्रभ भावै तिवै नचावै॥

यह जीव स्वागी=बहुरूपीय की भान्ति तरह तरह के लिबास धारण करके दिखाता है। परन्तु जिस प्रकार प्रभु चाहता है उसी प्रकार जीव को नचाता है।

****

जो तिसु भावै सोई होइ॥ नानक दूजा अवरु न कोइ॥ ७॥

उस प्रभु की जो भावना होती है वही कुछ होता है। गुरु जी कथन करते हैं-उस के बिना दूसरा अन्य कोई नहीं है।। ७।।

कबहू साधसंगति इहु पावै॥ उसु असथान ते बहुरि न आवै॥

यदि यह जीव कभी सत्संग में बैठ जाय तो उस सत्संग स्थान से उदास होकर वापिस सांसारिक संघर्षों की ओर नहीं आता।

अथवा - वापिस फिर योनियों में नहीं आता।

अंतरि होइ गिआन परगासु॥ उसु असथान का नही बिनासु॥

सत्संग के तेज के कारण ही इस जीव के हृदय में ज्ञान की रौशनी हो जाती है। फिर ज्ञान की रौशनी इसे उस स्थान पर ले जाती है जिस अस्थान=टिकाने (स्थान) का कभी बिनासु=नाश नहीं होता।

मन तन नामि रते इक रंगि॥ सदा बसहि पारब्रहम कै संगि॥

सत्संग में मन तन से एक नामी के नाम रंग में लीन रहते हैं, वह सदा ही पारब्रह्म के साथ रहते हैं।

जिउ जल महि जलु आइ खटाना॥ तिउ जोती संगि जोति समाना॥

जिस प्रकार समुद्र के जल में नदीयों का जल आकर खटाना=मिल जाता है। उसी प्रकार वह मनुष्य ज्योति स्वरूप परमात्मा के साथ ज्योति स्वरूप होकर समाना=अभेद हो जाता है।

सूरज किरणि मिले जल का जलु हूआ राम।।
जोती जोति रली संपूरनु थीआ राम।।

(बिलावलु मः ५, पृष्ठ ८४६)

जो जनु भाउ भगति कछु जानै ता कउ अचरजु काहो।।
जिउ जलु जल महि पैसि न निकसै तिउ ढुरि मिलिओ जुलाहो।। १।।

(धनासरी कबीर, पृष्ठ ६९२)

हरि का सेवकु सो हरि जेहा।। भेदु न जाणहु माणस देहा।।
जिउ जल तरंग उठहि बहु भाती फिरि सललै सलल समाइदा।। ८।।

(मारू मः ५, पृष्ठ १०७६)

मिटि गए गवन पाए बिस्राम॥ नानक प्रभ कै सद कुरबान॥ ८॥ ११॥

उनके चौरासी लाख योनियों में आने जाने के गवन=चक्कर मिट गए हैं, तथा बिस्राम=आराम के सुख प्राप्त किये हैं। गुरु जी कहते हैं कि हम उस प्रभु से सदा बलिहार जाते हैं।। ८।। ११।।

(बाहरवीं असटपदी)

सलोकु॥ सुखी बसै मसकीनीआ आपु निवारि तले॥

प्रस्तावना :- श्री गुरु अर्जुन देव जी के पास आकर एक श्रद्धालु ने कहा, "मुझे अपना सिक्ख बना लो।" गुरु जी ने कहा - सिक्ख बनना बहुत कठिन है, परन्तु उसने बार-बार यही कहा कि मुझे अपना सिक्ख बना लो। हजूर ने कहा कि पहले हमारा काम करो, फिर तुझे हम सिक्ख बनायेंगे। उसने कहा, जी! जो कहोगे मैं वही काम करूंगा। गुरु जी ने एक आदेश-पत्र (हुक्मनामा) लिखकर उसके हाथ में दे दिया और किसी का नाम बता कर कहा कि उस सिक्ख को यह आदेश-पत्र देकर आओ, लेकिन उससे सौ रुपये भेंट लेकर यह आदेश-पत्र उसे सौंपना है। गुरु जी के आदेशानुसार वह सिक्ख चल पड़ा। चलते चलते वह अपनी मंजिल उस सिक्ख के घर पर पहुंच गया। नमस्कारादि करके कहने लगा, आपके गुरु जी ने आपके नाम यह आदेश-पत्र भेजा है लेकिन पहले आप सौ रुपये भेंट करें तो यह आदेश-पत्र मिलेगा। चाहे वह सिक्ख निर्धन ही था तथा उसके घर में सौ रुपया नहीं था फिर उस सिक्ख ने गुरु के श्रद्धालु को आदर सहित पलंग पर बिठाकर जल-पान की सेवा की। तत्पश्चात् स्वयं सामान बेचने चला गया। जरूरत अनुसार घर का सामान बेचकर सौ रुपया लाकर उस श्रद्धालु को दिया तथा वह आदेश-पत्र ले लिया। उसे अपने सिर पर रख कर माथा टेका। जिस समय आदेश-पत्र खोलकर पढ़ा तो उस में गुरु जी ने लिखा हुआ था कि कार-सेवा के लिए पाँच सौ रुपये अवश्य भेजना। चाहे वह सिक्ख निर्धन था फिर भी उसने कोई संकोच न किया तथा मन में यह भी ख्याल न लाया कि गुरु जी ने मुझे यह क्या लिखकर भेजा है।

जिस समय रुपये का इन्तजाम करने के लिए घर से बाहर निकला तो रास्तें में एक ढंढोरची मिल पड़ा। उसने ढोल बजा कर कहा, "आज पहलवानों की कुश्ती होगी, जो भी मसकीनिये पहलवान के साथ कुश्ती करेगा, उसे इनाम दिया जायेगा। यदि मसकीनिये पहलवान को हरा देगा तो एक हजार रुपये इनाम में मिलेंगे, वरना सिर्फ पाँच सौ ही मिलेंगे।" यह बात सुनकर वह सिक्ख बहुत प्रसन्न हुआ तथा मन ही मन कहने लगा, गुरु साहिब ने अपना काम आप ही सँवार लिया है। उसी समय वह सिक्ख मल-अखाड़े की ओर दौड़ पड़ा। भागते-भागते उसका गला सूख गया, रास्ते में एक कुआँ देखा, जिस पर लोगों की काफी भीड़ लगी हुई थी। सिक्ख ने उस कुएँ के पास पहुंच कर कहा कि सभी पीछे हट जाओ, पहले मुझे पानी पीने दो। वहां पर मसकीनिया खड़ा था, उसने कहा, तुम तो अभी आ रहे हो, तुम्हें किस बात की जल्दी है, ज़रा ठहर जाओ। सिक्ख ने कहा, मुझे जल्दी इस लिए है कि मैंने मसकीनिये पहलवान के साथ कुश्ती करनी है। सो मैं जल्दी जाना चाहता हूं। मसकीनिये ने कहा, व्यर्थ अपनी जान क्यों

गवा रहे हो, तुम तो उसकी एक चपेड़ भी सहन नहीं कर पाओगे।

यह बात सुनकर सिक्ख ने अपना हाल सुनाया कि मेरे गुरुदेव ने कार-सेवा के लिए पाँच सौ रुपये मंगवाये हैं। उनका वचन पूरा करने के लिए मैं यह कुश्ती करने को तैयार हुआ हूँ। यह मैं भी समझता हूँ कि उस से कुश्ती नहीं कर सकता। लेकिन गुरु के निमित जान देने के लिए भी तैयार हूँ। सिक्ख की उत्साहित बातें सुनकर मसकीनिये का हृदय पिघल गया तथा कहने लगा, "मसकीनिया पहलवान मैं ही हूँ, तुम चिन्ता मत करो, दो चार हाथ दिखाकर मैं तेरे नीचे गिर जाऊंगा और तुम मेरे ऊपर चढ़ जाना, इस प्रकार तुझे एक हजार रुपये मिल जायेंगे तथा सभी लोगों में तेरी जै जै कार हो जायेगी।"

इस प्रकार विमर्श करके वे दोनों मल-अखाड़े में पहुंच गये, बहुत ढोल आदि बजाए गए, लोग इकट्ठे हो गये। जब मसकीनिये के सामने उस सिक्ख को देखा तो लोग हैरान होकर बातें करने लगे कि यह कमजोर सा व्यक्ति कुश्ती लड़ने नहीं आया, बल्कि अपनी मौत खरीदने आया है।

परन्तु वह दोनों कुछ समय आपस में ऊपर-नीचे होते रहे, अन्त में समकीनिया नीचे गिर पड़ा और वह सिक्ख मसकीनिये के ऊपर चढ़ गया। लोगों ने तालियां बजानी शुरु कर दीं कि मसकीनिया हार गया तथा सुकड़ा जीत गया है। उसी समय उस सिक्ख को एक हज़ार रुपया मिल गया और मसकीनिये को पांच सौ रुपये मिल गये। फिर मसकीनिये ने उस सिक्ख से पूछा कि जिस गुरु के लिए तुम अपनी जान कुर्बान करने के लिए तैयार हो गये, वह गुरु कहां रहता है? उस गुरु जी का दर्शन मुझे भी करवाओ। सिक्ख मसकीनिये को साथ लेकर चल पड़ा, पहले उसकी अपने घर लाकर जल-पान से सेवा की, फिर जो गुरु का श्रद्धालु घर बैठा था उसे और मसकीनिये को साथ लेकर गुरु की ओर चल पड़ा। चलते-चलते वह अमृतसर पहुंच गये, जहां पर श्री गुरु अर्जुन देव जी एकांत स्थान पर बैठे सुखमनी साहिब का उच्चारण कर रहे थे। गुरु जी के आगे सिक्ख ने अपनी भेंट रख कर माथा टेका, फिर मसकीनिये ने भी अपनी भेंट रख कर गुरु जी को चरण वन्दना की। उस समय गुरु जी ने वर देते हुए कहा-

सुखी बसै मसकीनीआ आपु निवारि तले॥

हे मसकीनिये पहलवान! तुम सुखी रहोगे, क्योंकि तुम अपने बल तथा अहंकार को दूर करके सिक्ख के तले=नीचे गिर पड़ा है।

बडे बडे अहंकारीआ नानक गरबि गले॥ १ ॥

साहिब श्री गुरु अर्जुन देव जी कहते हैं, रावण तथा दुर्योधिन जैसे बड़े बड़े अभिमानी हैं, वह माता के गर्भ में ही गल रहे हैं।

अथवा - सब को सांझा उपदेश देते हैं-जो व्यक्ति मसकीनीआ=निर्धनता आदि गुणों

****
को धारण करता है तथा स्वयं भी अभिमान को त्याग शरीर के समस्त अंगों के नीचे जो चरण हैं, उन चरणों की धूल ग्रहण करता है, वह व्यक्ति सुखी रहता है। गुरु जी कहते हैं-जो जाति तथा विद्या का अभिमान करते हैं, वह हमेशा गरबि=अहंकार में गल जाते हैं।। १।।

यथा - **कमरि कटारा बंकुड़ा बंके का असवारु।।**
गरबु न कीजै नानका मतु सिरि आवै भारु।। ३।। (पृष्ठ ९५६)

असटपदी ॥

जिस कै अंतरि राज अभिमानु ॥ सो नरकपाती होवत सुआनु ॥

जिस व्यक्ति के हृदय में राज्य का अभिमानु=अहंकार होता है।

अर्थात्=अहंकार करके जीवों पर जुल्म करता है। वह सुआनु=कुत्ता लोभी व्यक्ति नरकों में पाती=पत्न यानि गिर जाता है। अथवा-वह व्यक्ति कुत्तों वाले नरक में पाती=जाता है। वहां उसे कुत्ते काट-काट कर खाते हैं।

अथवा - वह व्यक्ति नरकों में जाकर अर्थात् - नरकों का दुख भोग कर फिर सुआनु=कुत्ते की योनि में पैदा होता है।

जो जानै मै जोबनवंतु ॥ सो होवत बिसटा का जंतु ॥

जो जानता है कि मैं यौवन अवस्था वाला हूँ तथा जवानी की ताकत में मस्त होकर गरीबों को दुख देता है। वह व्यक्ति मरकर गन्दगी का कीड़ा होता है।

आपस कउ करमवंतु कहावै ॥ जनमि मरै बहु जोनि भ्रमावै ॥

जो व्यक्ति अपने आप को शुभ कर्मों वाला कहलाता है,

अर्थात्-अपने किये कर्मों का अहंकार करता है। वह जन्म-मृत्यु के चक्कर में अनेक योनियों में भ्रमावै=भटकता रहता है।

धन भूमि का जो करै गुमानु ॥ सो मूरखु अंधा अगिआनु ॥

जो व्यक्ति धन तथा ज़मीन का गुमानु=अहंकार करता है। वह मूर्ख है, अन्धा है तथा अज्ञानी है। अथवा-वह मूर्ख अज्ञान के कारण अन्धा है।

करि किरपा जिस कै हिरदै गरीबी बसावै ॥ नानक ईहा मुकतु आगै सुखु पावै ॥ १ ॥

प्रभु कृपा करके जिस पुरुष के हृदय में गरीबी अर्थात्-नम्रता आदि गुणों का वास करता है। गुरु जी कहते हैं-वह पुरुष ईहा मुकतु=इस लोक के बन्धनों से छूट कर आगै= परलोक में सुख पाता है।

अथवा-ईहा सुखु पावै=इस लोक में सुख प्राप्त करता है तथा आगै मुकतु=परलोक में मुक्ति प्राप्त करता है।

अथवा-ईहा मुकतु=इस लोक में जीवन-मुक्ति को तथा आगै=परलोक में विदेह मुक्ति के सुख पाता है।। १।।

धनवंता होइ करि गरबावै॥ त्रिण समानि कछु संगि न जावै॥

जो पुरुष धनवंता=धनवान होकर अहंकार करने में आता है अन्त में वह धन त्रिण समानि=एक तिनके जितना भी भाव थोड़ा सा भी उसके साथ नहीं जाता।

बहु लसकर मानुख ऊपरि करे आस॥ पल भीतरि ता का होइ बिनास॥

जो मनुष्य चार तरह की लसकर=सेना पर अधिक उम्मीद रखता है कि यह सेना मेरी सहायता करेगी।

अथवा-जो ज्यादा लसकर=सेनाओं पर तथा मनुष्यों पर उम्मीद करता है। उस पुरुष का एक क्षण में ही नाश हो जाता है।

सभ ते आप जानै बलवंतु॥ खिन महि होइ जाइ भसमंतु॥

जिस शरीर को सबसे अधिक बल वाला समझता है। (मरने के समय वही शरीर) एक क्षण में भस्म रूप हो जाता है।

किसै न बदै आपि अहंकारी॥ धरम राइ तिसु करे खुआरी॥

जो पुरुष स्वयं अहंकारी होकर अपने तुलनात्मक अन्य किसी को बदै=समझता, अर्थात्-जानता नहीं है। अन्त में धर्मराज उसको खुआरी=तिरस्कृत करेगा, अर्थात्-उसे अत्यन्त दुख देगा।

गुरप्रसादि जा का मिटै अभिमानु॥ सो जनु नानक दरगह परवानु॥ २॥

गुरु की कृपा द्वारा जिस पुरुष का अभिमानु=अहंकार मिट जाता है। गुरु जी कथन करते हैं-वह पुरुष परमेश्वर की दरगाह में परवानु=प्रवान हो जाता है।। २।।

कोटि करम करै हउ धारे॥ स्रमु पावै सगले बिरथारे॥

यह जीव करोड़ों कर्म करता हुआ, बहुत ही स्रमु पावै=थकावट पाता है। कर्म करके जो हउ धारे=अहंकार को धारण करे (कि मैंने किये हैं) तो वह किये हुए सभी कर्म बिरथारे=वयर्थ भाव निष्फल चले जाते हैं।

अनिक तपसिआ करे अहंकार॥ नरक सुरग फिरि फिरि अवतार॥

जो पुरुष कई प्रकार की तपस्या करके अभिमान करता है। वह बार बार नरकों-स्वर्गों में अवतार=प्रवास करता है।

अनिक जतन करि आतम नही द्रवै॥ हरि दरगह कहु कैसे गवै॥

अनेक साधनों समान यत्नों के करने से भी जिसका आतम=हृदय उदार अर्थात्-कोमल (कृपालु) नहीं होता। कहो तो, वह हरि की दरगाह में कैसे जा सकेगा?

यथार्थ-हरि की दरगाह में उसका यश (गुणगान) कैसे गाया जाए।

आपस कउ जो भला कहावै॥ तिसहि भलाई निकटि न आवै॥

जो पुरुष अपने आप को सबसे भला=अच्छा कहलाता है। उस पुरुष के नज़दीक भलाई तो आती ही नहीं।

प्रसंग-रंके बंके का

भक्त नामदेव जी तीर्थ यात्रा करते हुए पंडर पुर पहुंचे तो आगे मंदिर में आरती हो रही थी, अन्य लोगों को छैणे बजाते देखकर, आप अपनी जुत्ती निकालकर बजाने लगे तो पण्डितों ने उन्हें धक्के मारकर मंदिर में से निकाल दिया। उस समय नामदेव जी मंदिर के पीछे बैठकर प्रभु से प्रार्थना करने लगे, फलस्वरूप प्रभु ने अपने कन्धों पर उठाकर मंदिर का मुंह नामदेव की ओर कर दिया।

नामदेव जी को अभिमान हो गया कि मेरे समान प्यारा भक्त भगवान् का अन्य कोई नहीं है। एक दिन प्रभु के पास आकर कहने लगे - "हे प्रभु! मुझ से अधिक बड़ा न प्रिय भक्त अन्य कोई आपका है?" प्रभु ने उसका दिल रखने के लिए दो बार तो कहा कि तुझ से अधिक अन्य कोई मुझे प्यारा नहीं है।

जब तीसरी बार पूछा तो उसका अहंकार तोड़ने के लिए प्रभु ने कहा-तुम्हारे से तो मुझे रंका बंका दोनों अधिक प्यारे हैं। तुझे तो मैं कभी कभी दर्शन देता हूं तथा उनके पास तो मैं रात दिन रहता हूं। यह बात सुनकर नामदेव चलता-चलता रंके बंके के घर पहुंच गया। क्या देखता है कि छप्परी टूटी हुई है, मंजी भी घटिया है। सारा सामान गरीबों वाला देखकर नामदेव ने हृदय में विचार किया कि ऐसी जगह पर भगवान् सारा दिन कैसे रहते होंगे। शायद यह घर रंके बंके का न हो। तब आवाज़ देकर पूछा रंके बंके का घर यही है? एक कुँवारी कन्या अन्दर बैठी हल्दी पीस रही थी। उसने कहा- 'जी हां! रंके बंके का घर यही है, आओ बैठो।' नामदेव जी अन्दर गये तो उस कन्या ने आदर सहित बिठाया। नामदेव जी ने पूछा - "भगवान् रात दिन यहीं पर रहते हैं?" तो कन्या ने उत्तर दिया—"हां जी, यहीं पर रहते हैं।" नामदेव जी ने पूछा- "अब कहां गये हुए हैं?"

कन्या ने कहा, 'अभी बाहर गये हैं, थोड़ी देर तक आ जाएंगे।'

फिर नामदेव जी ने पूछा, 'रंका-बंका कहां गए हुए हैं?'

कन्या ने कहा, 'वह अपनी उपजीविका के लिए लकड़ी लेने गए हैं।'

नामदेव जी ने फिर पूछा, 'तुम क्या कर रही हो?'

कन्या ने उत्तर दिया, 'हल्दी पीस रही हूं।'

नामदेव जी ने पूछा, 'किस के लिए पीस रही हो?'

कन्या ने कहा, 'भगवान् के लिए हल्दी पीस रही हूं।'

****
फिर नामदेव जी ने पूछा, 'भगवान् को क्या हुआ है, क्या कहीं पर गिर पड़े हैं?'

कन्या ने उत्तर दिया, 'नहीं! उनके कन्धे में बहुत दर्द हो रही है। छींबा जाति का एक नया ही भक्त नामदेव हुआ है। मंदिर में आरती के समय उसने छैणों की जगह जुत्तियां बजानी शुरु कर दी थीं। इस गलती के कारण उसे पण्डितों ने धक्के मारकर मंदिर में से बाहर निकाल दिया था। इस पर वह मंदिर के पीछे बैठ कर रोने लगा तथा भगवान् से शिकायत करने लगा। उस समय नामदेव को खुश करने के लिए भगवान् ने मंदिर का मुंह घुमा दिया।

मंदिर घुमाने के कारण भगवान् के कन्धे को चोट आ गई है। इसलिए दर्द हो रही है लेकिन नामदेव ने भगवान् का कोई ख्याल न किया। बल्कि अभिमान कर रहा है कि मेरे समान प्रिय भक्त अन्य कोई नहीं है। प्रिय भक्त तो वह होता है जो भगवान् से प्यार करे। नामदेव का भगवान् से कोई प्यार नहीं क्योंकि उस ने पूछा भी नहीं कि आपको कोई कष्ट तो नहीं हुआ।

वह भगवान् दयालु है, जो बिना किसी स्वार्थ से सब के कार्य करता है। जिस समय नामदेव की ओर मंदिर का मुंह घुमा कर भगवान् यहां आए तो मैंने उनका कन्धा जख्मी पाया और पूछने पर भगवान् ने बताया, "बहन जी! नामदेव के लिए देहुरा घुमाया है। उसी से मेरा कन्धा जख्मी हो गया है तथा बहुत दर्द हो रही है।"

यह बात सुनकर रात मैंने उस कन्धे पर तेल की मालिश भी की थी तथा अन्य कई दवाईयां भी लगाई हैं। कई बार नींद आई तथा कई बार उठ भी जाते थे। इसी मंजी पर सारी रात लेटे रहे, अभी उठ कर बाहर गये हैं तथा मैं उनके लिए हल्दी पीस रही हूं। जब आएंगे तो उनके कन्धे पर इसका लेप करूंगी।

इतने में भगवान् जी भी आ कर उस मंजी पर बैठ गए तथा कहने लगे, "बहन जी! दर्द बहुत हो रही है।" यह सुनकर उस कन्या ने हल्दी में अन्य चीजें मिलाकर भगवान् के कन्धे पर उसका लेप किया तथा सेंक कर पट्टी बांध दी। यह दृश्य देखकर नामदेव चकित हो उठा और समस्त अहंकार टूट गया। प्रभु के चरण पकड़ कर अपने अपराध की क्षमा याचना की और कहा, "प्रभु! मैं तो अपने आप को ही सर्व प्रिय समझता था, लेकिन सबसे प्रिय भक्त तो यह हैं, जिन के घर पर आपने निवास किया हुआ है। कृप्या आप मुझे अपने प्रिय भक्त रंका बंका के दर्शन भी कराओ। प्रभु ने कहा, चलो, वह जंगल में लकड़ी काट रहे होंगे। अभी थोड़ी दूर ही गये थे कि सामने से रंका बंका आते दिखाई दिये। प्रभु ने कहा, देखो! वह आ रहे हैं। नामदेव ने कहा, "ऐसे भक्तों को आप माया देकर सुखी क्यों नहीं रखते?"

प्रभु ने कहा, "मैं तो देता हूं लेकिन वह लेते ही नहीं, क्योंकि वह माया को भक्ति में बाधा समझते हैं। मैंने बहुत कहा और माया दी भी थी। जिस समय भी माया देता हूं तो वह रोने लग जाते हैं, बल्कि अन्न-जल भी त्याग देते हैं।" नामदेव ने कहा, "मेरे

****
सामने आप उन्हें माया दें, मैं भी देखूं कि वह कैसे रोते हैं?" प्रभु ने कहा, "इस दोष के सुपात्र भी तुम ही होगे।" नामदेव ने कबूल कर लिया तथा प्रभु ने हीरों की थैली देते हुए कहा, "इसे रंका बंका के यहां रख आओ।" नामदेव भगवान् के कहे अनुसार रख आया, भगवान् तथा नामदेव छुप कर बैठ गये।

आगे-आगे रंका आ रहा था तथा उसके पीछे बंका। जब रंका उस थैली के निकट पहुंचा तो डरकर कहने लगा, "हाय नागिन! हाय नागिन!" और रोने लगा तथा पैरों से उस पर मिट्टी डालकर उसे ढक दिया, रोता हुआ ही आगे चला गया। बंके ने दूर से देखा कि मेरा भाई चलते-चलते रास्ते में रुका था। वह दौड़कर आया और अपने भाई से पूछने लगा, "तुम वहां क्यों रुके थे?" इस पर रंका रोते हुए कहने लगे, "भगवान् ने हमें मारने के लिए रास्ते में नागिन रखी हुई थी तथा मुझे डंक मारने लगी थी, (अर्थात्-मैं उसे उठाने लगा था) लेकिन मैं बहुत मुश्किल से बचा हूं। फिर मैंने सोचा कि मेरा भाई बंका पीछे आ रहा है, कहीं उसे न खा जाए, इसलिए मैंने वहां रुक कर उस पर मिट्टी डाली थी।" यह बात सुनकर बंका रोने लग पड़ा। रंके ने पूछा, "तुम क्यों रो रहे हो? तुमने तो उसे देखा भी नहीं तथा न ही उसने तुझे डंक मारा है।"

बंके ने कहा, "मैं तेरे लिए रो रहा हूं कि तुम्हारी ब्रह्माकार वृत्ति हट कर मायाकार वृत्ति क्यों हुई है। माया समझ कर तुमने उस पर मिट्टी क्यों डाली, इतना समय तुम प्रभु से विमुख क्यों हुए, तुम्हें प्रभु से विमुख नहीं होना चाहिए था।"

इस तरह की वार्तालाप सुनकर नामदेव अत्यन्त चकित हुआ और सोचने लगा कि मैं क्या भक्त हूं, असल भक्त तो रंका बंका है। मेरा स्वयं को भक्त समझना ठीक नहीं है।

सरब की रेन जा का मनु होइ॥ कहु नानक ता की निरमल सोइ॥ ३॥

लेकिन जिस पुरुष का मन सभी की चरण धूल होता है। गुरु जी कहते हैं-उस पुरुष की निरमल सोइ=शोभा होती है।। ३।।

जब लगु जानै मुझ ते कछु होइ॥ तब इस कउ सुखु नाही कोइ॥

जब तक यह मैं मैं करने वाला मनुष्य जानता है कि जो कुछ हो रहा है, वह मुझ से ही हो रहा है। तब तक इसे कोई सुख प्राप्त नहीं होता।

जब लगु मेरी मेरी करै।। तब लगु काजु एकु नही सरै।।

(भैरउ कबीर जी, पृष्ठ ११६०)

जब इह जानै मै किछु करता॥ तब लगु गरभ जोनि महि फिरता॥

जब यह जीव जानता है कि मैं ही सब कुछ करता हूं। तब तक यह योनियों द्वारा गर्भ में घूमता ही रहता है।

जब धारै कोऊ बैरी मीतु॥ तब लगु निहचलु नाही चीतु॥

जब तक यह किसी को वैरी या मित्र मानता है। तब तक इसका अपना हृदय निहचलु=स्थित अर्थात्-टिकाने नहीं रहता।

जब लगु मोह मगन संगि माइ॥ तब लगु धरम राइ देइ सजाइ॥

जब तक यह माया के मोह में मगन=मस्त रहता है। तब तक इस को धर्मराज सजाइ=दण्ड देता रहता है।

प्रभ किरपा ते बंधन तूटै॥ गुरप्रसादि नानक हउ छूटै॥ ४॥

गुरु जी कथन करते हैं-प्रभु की कृपा से सभी बन्धन टूट जाते हैं तथा गुरुओं की प्रसादि=कृपा से अहंकार भी मिट जाता है।। ४।।

[पृष्ठ २७९]

सहस खटे लख कउ उठि धावै॥ त्रिपति न आवै माइआ पाछै पावै॥

तृष्णालु व्यक्ति सहस=हजारों रुपये कमाकर, फिर लाखों के पीछे दौड़ता है लेकिन उसे सब्र नहीं आता, अर्थात्-संतोष नहीं आता। हर समय अपने आप को माया के पीछे ही पाता है।

प्रसंग-सिकंदर बादशाह का

एक समय सिकंदर बादशाह के हृदय में विचार आया कि मैं भी बादशाह हूँ तथा समुद्र भी बादशाह कहलाता है लेकिन यह होना नहीं चाहिए।

सिकंदर बादशाह ने समुद्र के साथ युद्ध करने के लिए आक्रमण कर दिया। काफी मात्रा में सेना समुद्र पर ले जाकर खड़ी कर दी। जब धनुष खींचकार बाण मारने लगा तो समुद्र ब्राह्मण का रूप धारण कर उसके निकट आ खड़ा हुआ। सिकंदर से पूछा-'क्या कारण है, यहां पर सेना ला कर क्यों खड़ी की है?' सिकंदर ने उत्तर दिया-मैं दुनिया का बादशाह हूँ तथा तुम नदियों के बादशाह हो। इसलिए मैं तुम से युद्ध करने आया हूँ या फिर तुम मेरे अधीन हो जाओ।

समुद्र ने कहा - युद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं, यूं ही प्रजा की तबाही होगी। जैसे तुम कहोगे मैं उसी प्रकार करने के लिए तैयार हूँ। सिकंदर ने कहा - तुम फिर मुझको टैक्स दिया करो। समुद्र ने उसी समय छोटी सी थाली हीरे-जवाहरात की भर कर सिकंदर को भेंट कर दी तथा उसे खुश करके चला गया।

कुछ समय के पश्चात् सिकंदर को ख्याल आया कि मैं इतना महान् सम्राट हूँ तथा समुद्र ने छोटी सी थाली मुझको भेंट करके मुझसे मजाक किया है। सिकंदर फिर धनुष खींचकर बाण चलाने लगा। समुद्र फिर ब्राह्मण का रूप धारण कर आया तथा पूछने लगा- अब क्या बात है? सिकंदर ने कहा कि तुमने छोटी सी थाली भेंट करके मुझसे मजाक किया है। उसी समय समुद्र ने अपनी मौज के साथ एक पूरा किनारा

****

हीरे-जवाहरात आदि के साथ भर दिया।

बादशाह ने समस्त सेना को आदेश दिया कि जितने भी उठाये जाते हैं उठाकर थैले भर लो। सभी ने थैले भर लिए लेकिन वह हीरे-जवाहरात समाप्त होने में ही न आये। फिर सिकंदर ने कहा-इन लालों तथा हीरों को डालने के लिए कोई बर्तन भी दो। समुद्र ने छोटी सी नाव दे दी। उस नाव को देखकर सिकंदर बादशाह कहने लगा-यह नाव तो बहुत छोटी है, इस में यह सब नहीं आयेंगे।

समुद्र ने कहा-तुम इन्हें डालकर तो देखो, यदि तुम पाँच टोकरियें डालोगे तो दस की जगह बनेगी। यदि दस डालोगे तो बीस की जगह बन जाएगी। जब सिकंदर बादशाह ने वह हीरे-जवाहरात आदि डाल लिए तो वह नाव फिर भी न भरी।

इसी प्रकार तृष्णालु व्यक्ति का पेट भी नहीं भरता। जैसे उस नाव तथा सिकंदर का पेट न भरा। इसी कारण गुरु साहिब कहते हैं—

त्रिसना बिरले ही की बुझी हे।। १।। रहाउ।।
कोटि जोरे लाख क्रोरे मनु न होरे परै परै ही कउ लुझी हे।। १।।

(गउड़ी मः ५, पृष्ठ २१३)

तथा - **माटी को पुतरा कैसे नचतु है।।**
देखै देखै सुनै बोलै मिरताओ फिरतु है।।

(आसा रविदास, पृष्ठ ४८७)

अनिक भोग बिखिआ के करै॥ नह त्रिपतावै खपि खपि मरै॥

उस माया को प्राप्त कर फिर विषयों के अनेक भोग भोगता है। भोग से भी तृप्त नहीं होता, बल्कि उन में ग्राह्य होकर मरता है।

बिना संतोख नही कोऊ राजै॥ सुपन मनोरथ ब्रिथे सभ काजै॥

संतोष धारण किये बिना कोई भी तृप्त नहीं होता। जैसे स्वपन के मनोरथ व्यर्थ होते हैं, वैसे ही इस मनुष्य के सभी कार्य नाम के बिना ब्रिथे=निष्फल हैं।

अथवा- अपने कार्यों के लिए जितने भी मनोरथ=संकल्प करता है, वह सभी स्वपन की भांति निष्फल हैं।

प्रसंग-लोभी पुरुष का

एक समय राजा भोज की सभा में एक व्यक्ति ने आकर प्रश्न किया कि जिस में फँस कर मनुष्य निकल न सके, ऐसी दलदल कौन सी है? राजा भोज की सभा में १४०० प्रसिद्ध विद्वान पण्डित प्रायः रहते थे। सब ने अपने अपने विचार प्रकट किये लेकिन सभी एक दूसरे से सहमत न हुए, इसलिए तसल्ली न हुई। फिर राजा भोज ने अपने राज-पुरोहित को बुलाकर कहा कि तुम सबसे महान् विद्वान हो, यदि तुमने इस प्रश्न का उत्तर आठ दिन के अन्दर-अन्दर न दिया तो तुझे कत्ल करवा दिया जायेगा। पुरोहित को विचार करते हुए छः दिन व्यतीत हो गये, लेकिन कुछ भी समझ में न आया। सातवें

दिन शहर छोड़कर बाहर जंगल में एकान्त स्थान पर बैठकर सोचने लगा।

इतने में एक वृद्ध गडरिया भेडें चराता हुआ उधर आया, जो पुराना सत्संगी तथा विचारवान था। उसने निकट आकर राज-पुरोहित से पूछा-"आप प्रसन्न क्यों नहीं हो? आप किस चिन्ता से ग्रस्त हो?" राज-पुरोहित ने अपना सारा दुःख सुनाया कि राजा भोज की सभा में एक व्यक्ति ने "दलदल" का प्रश्न किया है। उसका उत्तर यथोचित्त किसी ने न दिया। अब मुझे आठ दिन की अवधि मिली है, जिसमें से छः दिन बीत चुके हैं, सातवां दिन व्यतीत हो रहा है लेकिन अभी तक कोई समझ नहीं आई। यह बात सुनकर गडरिया कहने लगा, तुमने राज्य नौकरी से क्या लेना है। उसे छोड़कर तुम मेरे मुरीद बन जाओ, मैं तुझे पारस दूंगा क्योंकि पारस सर्वोत्तम वस्तु है। यह किसी योग्य शिष्य या पुत्र को ही दी जाती है। मेरी शादी भी नहीं हुई है, मैं फकीरी भेष में ही घूम रहा हूँ, इसलिए मेरा कोई पुत्र भी नहीं है। तुम शिष्य बनकर ही ले लो। (क्योंकि जब भी कोई किसी से गुण लेता है तो शिष्य बनकर ही लेता है)। यह पारस ऐसी विचित्र वस्तु है कि यदि तुम सात पीढ़ियों तक भी खाते रहोगे तो समाप्त नहीं होगी। तुम्हें नौकरी करने की भी आवश्यकता नहीं पड़ेगी।

इन बातों को सुनकर वह ब्राह्मण शिष्य बनने के लिए सहमत हो गया। गडरिये ने कहा - यदि तुम मेरे शिष्य बनने के लिए तैयार हो तो मैं अपनी भेड का दूध दुहकर पहले स्वयं पीऊँगा, तत्पश्चात् तुझे प्रशाद दूंगा। यदि तुम पीओगे तो तुझे पारस मिलेगा। ब्राह्मण कहने लगा - मुझे भेड का दूध पीना मना है, फिर तुम मुसलमान हो, तुम्हारा जूठा दूध कैसे पीऊँगा। ब्राह्मण की यह बात सुनकर वह गडरिया उठकर चला गया। इसके पश्चात् ब्राह्मण ने सोचा कि इस पाप की निवृति के लिए तो मैं प्रायश्चित कर लूंगा, लेकिन नौकरी से तो हमेशा के लिए छूट जाऊँगा। इतना विचार कर ब्राह्मण ने आगे होकर गडरिये से कहा- निस्संदेह भेड का दूध दुहकर आप पीएँ तथा मुझे भी दें, मैं पी लूंगा, लेकिन पारस अवश्य दे देना। यह सुनकर गडरिये ने कहा - वह समय बीत गया, अब मैं पीकर, फिर कुत्ते को पिलाऊंगा, उसके पश्चात् तुझे दूंगा। यदि तुम पी लोगे तो पारस मिलेगा। ब्राह्मण ने कहा- कुत्ते का जूठा मैं नहीं पीऊँगा। गडरिया फिर चल पड़ा। ब्राह्मण ने सोचा-जब प्रायश्चित करना ही है तो इक्ट्ठा ही कर लूंगा, दुकान पर भी तो कुत्ते, बिल्लियां दूध जूठा कर ही जाते हैं।

यह विचार कर गडरिये को फिर बुलाया और कहा-अच्छा मैं कुत्ते का जूठा भी पी लूंगा। गडरिये ने कहा-पहले क्यों नहीं माना। अब वह समय गुजर गया है। अब मैं अपना जूठा तथा कुत्ते का जूठा दूध मनुष्य की खोपड़ी में डालकर मीठे की जगह भेड की ताजी मेंगन डालकर दूंगा। इतना सुनकर ब्राह्मण ने कहा-यह कैसे हो सकता है? गडरिया भेडें चराता हुआ आगे चल पड़ा। ब्राह्मण ने विचार किया कि सभी पापों का प्रायश्चित इक्ट्ठा ही कर लूंगा। पारस लेने से पुत्र-पौत्रे तो सुखी हो जाएंगे। फिर

****
गडरिये को बुला कर कहा-अच्छा! जैसे तुम कहोगे मैं वैसे ही करूंगा। उसी समय गडरिये ने अपने बर्तन में भेड का दूध निकाला, स्वयं पीकर, कुत्ते को पिलाकर, मनुष्य की खोपड़ी में डालकर तथा बीच में भेडों की मेंगने डालकर उस ब्राह्मण को दिया।

जिस समय ब्राह्मण उसे उठा कर अपने मुंह तक लाया तो गडरिये ने उसका हाथ पकड़ लिया और कहा - पुरोहित जी! यह पीना नहीं। यह तो मैंने आपके प्रश्न का उत्तर दिया। यही लोभ रूपी "दलदल" है, जिसमें मनुष्य फंसकर धर्म-अधर्म का विचार नहीं करता।

इसलिए गुरु साहिब ने कहा है कि लोभ वश होने कारण प्राणी के अन्दर संतोष नहीं आता तथा संतोष के बिना कोई भी मनुष्य पदार्थों से संतुष्ट नहीं होता। तभी यह बात कही है—

लोभी का वेसाहु न कीजै जे का पारि वसाइ।।
अंति कालि तिथै धुहै जिथै हथु न पाइ।। (पृष्ठ १४१७)

नाम रंगि सरब सुखु होइ॥ बडभागी किसै परापति होइ॥

नाम के प्रेम रस में सभी सुख प्राप्त होते हैं। लेकिन नाम का प्रेम किसी भाग्यशाली अति श्रेष्ठ को ही प्राप्त होता है।

करन करावन आपे आपि॥ सदा सदा नानक हरि जापि॥ ५॥

गुरु जी कहते हैं- वह हरि स्वयं ही सब कुछ करने कराने वाला है। इसलिए प्रायः उस हरि का सिमरन कर।। ५।।

करन करावन करनैहारु॥ इस कै हाथि कहा बीचारु॥

वह करनैहारु=परमात्मा स्वयं ही करने कराने वाला है। अथवा - पहले करने वाला था, अब करने वाला है तथा आगे करने वाला होगा। विचार लो! इस बेचारे जीव के हाथ में क्या है।

जैसी द्रिसटि करे तैसा होइ॥ आपे आपि आपि प्रभु सोइ॥

जैसी दृष्टि प्रभु जीव पर करता है, यह जीव वैसा ही हो जाता है। अथवा-वैसा ही फल प्राप्त करता है।

वह प्रभु पहले भी स्वयं था, अब भी स्वयं है तथा भविष्य में भी स्वयं ही होगा।

जो किछु कीनो सु अपनै रंगि॥ सभ ते दूरि सभहू कै संगि॥

प्रभु ने जो कुछ किया है, वह अपने रंगि=आनन्द में ही किया है, अर्थात्-अपनी मौज में ही किया है। सभी (नास्तिकों) से दूर है तथा सभी (भक्तों) के अंग-संग है।

बूझै देखै करै बिबेक॥ आपहि एक आपहि अनेक॥

वह परमेश्वर स्वयं ही जीवों के कर्म देख कर बूझै=समझता है, फिर स्वयं फल

****
देने का बिबेक=विचार करता है। निर्गुण रूप होने के कारण आप एक रूप है, सर्गुण रूप होने के कारण वह स्वयं अनेक रूप है।

मरै न बिनसै आवै न जाइ ॥ नानक सद ही रहिआ समाइ ॥ ६ ॥

वह मर कर नाश नहीं होता, न आता है न ही जाता है। गुरु जी कहते हैं-वह सदा ही सभी स्थानों पर व्यापक है।। ६।।

आपि उपदेसै समझै आपि ॥ आपे रचिआ सभ कै साथि ॥

वह स्वयं ही गुरु रूप हो कर उपदेश देता है, स्वयं ही जिज्ञासु रूप होकर समझता है तथा स्वयं ही सभी के साथ रचिआ=मिला हुआ है।

आपि कीनो आपन बिसथारु ॥ सभु कछु उस का ओहु करनैहारु ॥

अपनी बिसथारु=व्यवस्था को उसने स्वयं ही किया है। सब कुछ उसका अपना ही किया हुआ है तथा वह स्वयं ही करने वाला है।

उस ते भिंन कहहु किछु होइ ॥ थान थनंतरि एकै सोइ ॥

कहो तो! उससे भिंन=अलग कुछ होता है? प्रत्येक स्थान पर वह एक स्वयं ही पूर्ण है।

अपुने चलित आपि करणैहार ॥ कउतक करै रंग आपार ॥

अपने आडम्बर को वह स्वयं ही करने वाला है। वह आपार=अनन्त रंगों के चमत्कारों को करता है।

मन महि आपि मन अपुने माहि ॥ नानक कीमति कहनु न जाइ ॥ ७ ॥

वह स्वयं ही मन=जीव में है तथा मन=जीव उसके अपने भीतर है। अर्थात्-ताने-पेटे की भांति अभेद रूप है। गुरु जी कहते हैं- उस प्रभु की कीमत कही नहीं जाती।। ७।।

सति सति सति प्रभु सुआमी ॥ गुरपरसादि किनै वखिआनी ॥

वह प्रभु स्वामी पहले भी सत्य था, अब भी सत्य है तथा भविष्य में भी सत्य ही होगा।

अथवा- सति=सतिगुरों के उपदेश द्वारा जिसने सति=सतिनामु मन्त्र का जाप किया है, उसने प्रभु स्वामी को सत्य स्वरूप निश्चत किया है। लेकिन गुरुओं की कृपा द्वारा यह बात किसी भाग्यवान ने वखिआनी=कही है।

सचु सचु सचु सभु कीना ॥ कोटि मधे किनै बिरलै चीना ॥

जो कुछ प्रभु ने किया है वह पहले भी सत्य था, अब भी सत्य है तथा भविष्य में भी सत्य ही होगा। अथवा-सचु=निश्चय करके जो कुछ सत्य प्रभु ने किया है वह सब सत्य है। लेकिन इस बात को करोड़ों में से किसी विरले ने चीना=जाना है।

****

भला भला भला तेरा रूप॥ अति सुंदर अपार अनूप॥

हे परमेश्वर! तेरा रूप पहले भी भला था, अब भी भला है, तथा आगे भी भला ही होगा। अर्थात्-तीनों काल में तेरा रूप भला है। अथवा-भला=भली-भांति तेरा रूप भलों से भला है। अथवा-भले गुरु से भला=श्रेष्ठ उपदेश लेने से आप जी का स्वरूप भला=श्रेष्ठ निश्चय किया है। आप जी का स्वरूप अति सुन्दर है, अपार=अन्त से रहित है तथा अनूप=उपमा से रहित है।

निरमल निरमल निरमल तेरी बाणी॥ घटि घटि सुनी स्त्रवन बख्याणी॥

हे प्रभु! आप जी की वेद-वाणी, यानि-नाम-वाणी, अर्थात्-श्री गुरु ग्रन्थ साहिब जी की वाणी पहले भी निर्मल थी, अब भी निर्मल है, तथा भविष्य में भी निर्मल होगी।

अथवा- हे निर्मल परमात्मा! आप जी की नाम रूपी वाणी निर्मल से भी निर्मल है।

अथवा-निर्मल गुरु के निर्मल उपदेश द्वारा जिस ने तेरी नाम वाणी का जाप किया है, उसका अन्तःकरण निर्मल हुआ है। घटि घटि=शरीर शरीर ने नाम वाणी कानों से सुनी है तथा जिह्वा से कथन की है।

पवित्र पवित्र पवित्र पुनीत॥ नामु जपै नानक मनि प्रीति॥ ८॥ १२॥

तीन पवित्र इकट्ठे हों तो एक पुनीत शब्द होता है, वह पुरुष पुनीत से भी पुनीत है। अर्थात्- (तीन पवित्र हैं तथा चौथा पुनीत है) वह व्यक्ति चारों युगों में पवित्र है। अथवा - उस मनुष्य के चारों अंतःकरण पवित्र हैं। गुरु जी कहते हैं- जो हृदय में प्रीत धारण कर नाम का सिमरन करता है।

अथवा - पवित्र गुरु के पवित्र उपदेश द्वारा जो पवित्र होकर हृदय में प्रीत धारण कर नाम स्मरण करता है वह पुनीत हो जाता है।। ८।। १२।।

(तेरहवीं असटपदी)

सलोकु॥ संत सरनि जो जनु परै सो जनु उधरनहार॥

जो व्यक्ति सन्तों की शरण में आ पड़ता है, वही व्यक्ति पुनर्जन्म के चक्र से छूटने वाला होता है।

संत की निंदा नानका बहुरि बहुरि अवतार॥ १॥

गुरु जी कहते हैं- सन्तों की निन्दा करने से बार-बार योनियों में अवतार=आता है।। १।।

असटपदी॥

संत कै दूखनि आरजा घटै॥ संत कै दूखनि जम ते नही छुटै॥

सन्तों में दूषणारोपन करके निंदक की आरजा=आयु कम हो जाती है। सन्तों पर दोष लगाने के कारण यमों से छुटकारा नहीं होता।

****

संत कै दूखनि सुखु सभु जाइ॥ संत कै दूखनि नरक महि पाइ॥

सन्तों में दूषणारोपन करने से सभी सुख चले जाते हैं। सन्तों में दूषणारोपन करने से निंदक व्यक्ति नरकों में पड़ता है।

संत कै दूखनि मति होइ मलीन॥ संत कै दूखनि सोभा ते हीन॥

सन्तों पर दोष लगाने से प्राणी की बुद्धि मलीन=मैली (गन्दी) हो जाती है। सन्तों पर दोष लगाने से प्राणी शोभा से हीन=रहित हो जाता है।

संत के हते कउ रखै न कोइ॥ संत कै दूखनि थान भ्रसटु होइ॥

सन्तों के हते=मारे हुए अर्थात्-घृणित (तिरस्कृत) को कोई नहीं रख सकता। सन्तों पर दोष लगाने के कारण अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है, अर्थात्-अपने टिकाने से गिर पड़ता है। अथवा-जिस स्थान पर बैठता है, वह स्थान भ्रष्ट हो जाता है।*

अथवा - स्वरूप स्थान की ओर से भ्रष्ट हो जाता है, भाव-सन्तों के निंदक को स्वरूप स्थान की प्राप्ति नहीं होती।

प्रश्न-किसी प्रकार निंदक का उद्धार हो सकता है कि नहीं?

गुरु उत्तर —

संत क्रिपाल क्रिपा जे करै॥ नानक संत संगि निंदकु भी तरै॥ १ ॥

गुरु जी कहते हैं-यदि कृपालु संत कृपा दृष्टि कर दें तो सन्तों के सत्संग से निंदक भी मुक्त हो सकता है।। १।।

संत के दूखन ते मुखु भवै॥ संतन कै दूखनि काग जिउ लवै॥

सन्तों में दूषणारोपन करने से परमेश्वर की ओर से मुँह भवै=विमुख हो जाता है, अर्थात्-परमेश्वर के सिमरन से हटकर बुराई की ओर लग जाता है।

अथवा-सन्तों पर दूषणारोपन करने से इसका मुँह घूम जाता है,

यानि- पक्षाघात (लकवा) रोग हो जाता है।

सन्तों में दूषणारोपन करके काग जिउ=कौवे की भांति व्यर्थ लवै=बोलता रहता है।

संतन कै दूखनि सरप जोनि पाइ॥ संत कै दूखनि त्रिगद जोनि किरमाइ॥

सन्तों में दूषणारोपन करके साँप की योनि में पड़ता है। सन्तों में दूषणारोपन करके त्रिगद जोनि किरमाइ=कीड़े, मकौड़े, कोढकिरली, आदि टेढी योनियों में पड़ता है।

संतन कै दूखनि त्रिसना महि जलै॥ संत कै दूखनि सभु को छलै॥

सन्तों पर दोष लगाने से तृष्णा की आग में जलै=जलता है। सन्तों पर दोष लगाने

---

*जिस प्रकार नारद मुनि के बैठने से स्थान भ्रष्ट हो जाता था तथा नारद के चले जाने के पश्चात् विष्णु भगवान् जी उस स्थान की मिट्टी खुदवा कर जगह को साफ करवाते थे।

****

से प्रत्येक को छलता रहता है।

अथवा-काम, क्रोध आदि सभी विकार उस निंदक को छल लेते हैं।

संत कै दूखनि तेजु सभु जाइ ॥ संत कै दूखनि नीचु नीचाइ ॥

सन्तों में दूषणारोपन करने से सारा तेज प्रताप क्षीण हो जाता है। सन्तों में दूषणारोपन करके यह जीव नीच से नीच हो जाता है।

संत दोखी का थाउ को नाहि ॥ नानक संत भावै ता ओइ भी गति पाहि ॥ २ ॥

सन्तों में दूषणारोपन करने वाले निंदक का कोई स्थान नहीं।

अर्थात्-उसे कहीं भी सहारा नहीं मिलता। गुरु जी कहते हैं - यदि सन्त भावै=चाहे अर्थात्-यदि सन्तों की कृपा हो जाए तो वह निंदक भी गति पाहि=मुक्ति प्राप्त कर लेता है।। २।।

[पृष्ठ २८०]

संत का निंदकु महा अतताई ॥ संत का निंदकु खिनु टिकनु न पाई ॥

सन्तों का निंदक महा अतताई★ महान् पापी है। सन्तों का निंदक एक क्षण भर भी कहीं टिक नहीं पाता, अर्थात्-हर समय भटकता रहता है।

संत का निंदकु महा हतिआरा ॥ संत का निंदकु परमेसुरि मारा ॥

सन्तों का निंदक महा=बड़ा हत्यारा है, अर्थात्-महा पापी है। सन्तों का निंदक परमेश्वर का मारा हुआ, यानि-तिरस्कृत किया हुआ है।

जैसे- **जनम जनम की मलु धोवै पराई आपणा कीता पावै।।**
ईहा सुखु नही दरगह ढोई जम पुरि जाइ पचावै।। १।।
निंदकि अहिला जनमु गवाइआ।।
पहुचि न साकै काहू बातै आगै ठउर न पाइआ।। १।। रहाउ।।
किरतु पइआ निंदक बपुरे का किआ ओहु करै बिचारा।।
तहा बिगूता जह कोइ न राखै ओहु किसु पहि करे पुकारा।। २।।
निंदक की गति कतहूं नाही खसमै एवै भाणा।।
जो जो निंद करे संतन की तिउ संतन सुखु माना।। ३।।
संता टेक तुमारी सुआमी तूं संतन का सहाई।।
कहु न।नक संत हरि राखे निंदक दीए रुड़ाई।। ४।। २।। ४१।।

(आसा महला ५, पृष्ठ ३८०)

★१. किसी के मकान को अचानक आग लगा देनी। २. शस्त्रहीन प्राणी को देख कर शस्त्र द्वारा मार देना। ३. विष देकर मार देना। ४. अपनी ताकत द्वारा दूसरे का धन छीन लेना। ५. जबरदस्ती परस्त्री का अपहरण कर लेना। ६. पराई भूमि छीन लेना। यही छः पाप करने वाले को अततायी कहते हैं तथा सन्तों का निंदक इससे भी महान् पापी है। इसलिए उसे "महा अततायी" कहा है।

संत का निंदकु राज ते हीनु॥ संत का निंदकु दुखीआ अरु दीनु॥

सन्तों का निंदक राज=सुख से हीनु=रहित हो जाता है। सन्तों का निंदक दुखी तथा दीनु=निर्धन हो कर प्रत्येक के अधीन रहता है।

संत के निंदक कउ सरब रोग॥ संत के निंदक कउ सदा बिजोग॥

सन्तों के निंदक को सभी रोग आ कर लग जाते हैं। सन्तों के निंदक को प्रायः प्रभु से, अर्थात्-शुभ गुणों से बिजोग=विछोड़ा रहता है।

संत की निंदा दोख महि दोखु॥ नानक संत भावै ता उस का भी होइ मोखु॥ ३॥

सन्तों की निंदा करना सभी दोषों से भी भारी दोष (पाप) है। गुरु जी कहते हैं-यदि संत भावै=चाहे तो उस निंदक का भी उद्धार हो सकता है।। ३।।

संत का दोखी सदा अपवितु॥ संत का दोखी किसै का नही मितु॥

सन्तों का दोषी हमेशा अपवित्र (मलीन) रहता है। सन्तों का निंदक किसी का भी मित्र नहीं है।

संत के दोखी कउ डानु लागै॥ संत के दोखी कउ सभ तिआगै॥

सन्तों के निंदक को यमों का दण्ड लगता है। अथवा-सन्तों के निंदक को (ऋषि दण्ड, पित्र दण्ड, देव दण्ड, यम दण्ड आदि) समस्त दण्ड लगते हैं। सन्तों के निंदक को समस्त सम्बन्धी तिआगै=छोड़ जाते हैं। क्योंकि—

संत का दोखी महा अहंकारी॥ संत का दोखी सदा बिकारी॥

सन्तों का निंदक बड़ा अभिमयी होता है तथा सन्तों का निंदक प्रायः विकारों में रहता है।

संत का दोखी जनमै मरै॥ संत की दूखना सुख ते टरै॥

सन्तों का निंदक प्रायः जीवन-मृत्यु में ही रहता है। सन्तों की निंदा करने वाला जीव सुख से हीन हो जाता है।

संत के दोखी कउ नाही ठाउ॥ नानक संत भावै ता लए मिलाइ॥ ४॥

सन्तों के निंदक को कोई ठाउ=स्थान नहीं झेलता। गुरु जी कहते हैं-यदि सन्त चाहें तो उसे अपने साथ या परमेश्वर के साथ मिला लेते हैं।। ४।।

संत का दोखी अध बीच ते टूटै॥ संत का दोखी कितै काजि न पहूचै॥

सन्तों का दोखी=निंदक अध बीच=मध्य में से छूट जाता है, अर्थात्-पूरी आयु नहीं भोगता, यौवनावस्था में ही मर जाता है।

अथवा-साधनों में सम्पूर्ण नहीं होता।

****
अथवा-जिस कार्य को हाथ डालता है, वह बीच में से टूट जाता है, कोई भी कार्य सम्पूर्ण नहीं होता। अथवा-यदि प्रवृति लगती है तो वह भी बीच में से ही टूट जाती है।

टूटी निंदक की अध बीच।। *(पृष्ठ १२२४)*

साकत सिउ मुखि जोरिऐ अध बीचहु टूटै।। *(बिलावलु महला ५, पृष्ठ ८११)*

सन्तों का निंदक किसी कार्य के चरम तक नहीं पहुच सकता। अर्थात्-किसी कार्य में भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

संत के दोखी कउ उदिआन भ्रमाईऐ ॥ संत का दोखी उझड़ि पाईऐ ॥

सन्तों के निंदक को प्रत्यक्ष उजाड़ में, अथवा - संसार उजाड़ में, अथवा - यमों की उजाड़ में भटकाया जाता है।

सन्तों के दोखी=निंदक को उझड़ि=कुमार्ग में डाला जाता है।

संत का दोखी अंतर ते थोथा ॥ जिउ सास बिना मिरतक की लोथा ॥

सन्तों का दोखी=निंदक आन्तरिक शुभ गुणों से ऐसे थोथा=रिक्त होता है। जैसे श्वास के बिना मृतक का लोथा=शव होता है।

संत के दोखी की जड़ किछु नाहि ॥ आपन बीजि आपे ही खाहि ॥

सन्तों के दोखी=निंदक की कोई भी जड़ (वंश) नहीं होती, अर्थात्-उसके पुत्र पोत्रादि नहीं होते। अथवा-उसे स्वरूप की प्राप्ति नहीं होती। वह अपना बीजा हुआ स्वयं ही खाता है। अर्थात्-निन्दा रूप बीज बीजता है इसलिए उसका फल दुख ही भोगता है।

संत के दोखी कउ अवरु न राखनहारु ॥ नानक संत भावै ता लए उबारि ॥ ५ ॥

सन्तों के दोखी=निंदक को अन्य कोई रखने वाला नहीं है। गुरु जी कहते हैं-यदि संत चाहें तो वह उस निंदक को उबारि=बचा लेते हैं।। ५।।

प्रसंग-सन्तों की कृपा द्वारा निंदकों का उद्धार

एक बार राग भजन मूर्ति महात्मा अपनी विद्वान सन्त मण्डली सहित देश-विदेशों का भ्रमण करते हुए "देवशयनी एकादशी" (जो कि व्यास पूजा के चार दिन पूर्व आती है) वाले दिन एक नदी के किनारे जो कि चोरों के गाँव के निकट ही थी वहाँ आकर ठहर गये, क्योंकि सन्तों का यह नियम था कि "देवशयनी एकादशी" जहाँ भी आ जाती, चार मास बरसात के वहीं ठहर जाते थे। पानी लाँघ कर आगे नहीं जाते थे। जब नजदीकी गाँव के चोरों ने सुना कि हमारे निकट नदी के तट पर सन्त मण्डली ठहरी हुई है तो कुछ व्यक्तियों ने मिलकर सारा गाँव इक्ट्ठा किया तथा सभी से प्रण करवाया कि सन्तों के पास कोई नहीं जायेगा, जो भी गया तो उसे बीस रुपये जुर्माना होगा, क्योंकि यदि हम में से कोई गया तो सन्तों ने उसे चोरी-सहचारी करने से रोकना है। इसलिए बिल्कुल नहीं जाना।

उन में से तो कोई न गया लेकिन निकट के अन्य गाँव वाले लोग वहाँ आकर बड़ी श्रद्धा व प्रेम से सेवा कर जाते तथा वहाँ पर नित्य खीर-पूड़े, कडाह-पलाव आदि के भण्डारे होने लगे। जब चार मास पूर्ण हो गये तथा "हरि प्रबोधिनी एकादशी" आ गई तो सन्त वहाँ से चलने के लिए तैयार हो गए। उन चोरों को पता चला कि कल सन्तों ने चले जाना है तो उन्होंने सोचा कि आस-पास के गाँव के लोग हमारी निन्दा करते होंगे कि इस गाँव के लोग बहुत बदकिस्मत हैं जो कि इन्होंने बिल्कुल ही सेवा नहीं की। इसलिए आज एक आदमी भेज दें जो सन्तों का सामान उठा कर वहाँ छोड़ दे, जहाँ वे जाना चाहते हों। जिस समय वह चोर उन सन्तों के पास गए तो सन्त अपना सामान बाँध चुके थे। चोर ने आकर सन्तों का सामान उठा लिया। सन्त उठाने नहीं देते थे लेकिन उसने जबरदस्ती उठा ही लिया। सन्तों ने मार्ग में चलते हुए सोचा कि बेशक यह हमारे साथ बोलता नहीं, चुपचाप जा रहा है। लेकिन हम इसके गाँव के निकट चार मास रह आए हैं, बेशक इस गाँव में से किसी ने भी आकर सेवा नहीं की, फिर भी सभी में से आकर यह अन्तिम दिन सेवा कर रहा है। इसलिए इसी एक को ही सुधार दें तो अच्छा है। क्योंकि सन्तें का मिलाप व्यर्थ नहीं जाता।

सन्तों ने पूछा-तुम क्या काम करते हो? वह चुप रहा। दूसरी बार पूछा-तो भी खामोश रहा। दयालु सन्तों ने फिर तीसरी बार पूछा तो उसने कहा, मैं चोर हूँ। फिर सन्तों ने पूछा- सिर्फ चोर ही हैं या सहचारी भी? उसने कहा-सहचारी भी हूँ, किसी भी जाति की स्त्री को छोड़ा नहीं। सन्तों ने पूछा कि शराब भी पीते हो? उसने कहा-हां जी प्रतिदिन पीता हूँ। ३६५ दिनों में से एक दिन भी नहीं छोड़ी। सन्तों ने पूछा-मांस भी खाते हो? उसने जवाब दिया-प्रत्येक जीव का मांस खाता हूँ। यह सब बातें सुनकर सन्तों ने विचार किया कि यह तो बहुत बड़ा पापी है। पापी तथा निंदक को सुधारना ही हमारा कार्य है। इसे किसी न किसी तरीके से सुधारना चाहिए। सन्तों ने उस चोर से कहा कि यदि तुम हमारी बात मानोंगे तो यह हमारा सामान उठाना वरना इसे यहीं पर रख दो। चोर कहने लगा-यदि आप मुझे चोरी सहचारी से हटाना चाहते हो तो वह मैं नहीं छोड़ सकता।

सन्तों ने कहा-पूरी तरह नहीं छुड़वाएंगे, थोड़ी-थोड़ी ही छोड़नी पड़ेगी। यदि तुम हमारी चार बातें मानोगे तो सारी उम्र सुखी रहोगे। चोर कहने लगा-आप आज्ञा करें, मैं मान लूंगा।

सन्तों ने कहा- निस्संदेह चोरी कर, लेकिन निर्धन व्यक्ति की चोरी मत करना तथा जिसका नमक खाओ उसकी चोरी मत करना। चोर ने कहा-जी सत्य वचन! यह स्वभाव तो मेरा पहले से ही है लेकिन आगे से दृढ़ निश्चय कर लिया है।

सन्तों ने दूसरा वचन किया-सहचारी निस्संदेह करो, लेकिन शास्त्र मर्यादा अनुसार पाँच माताओं के निकट नहीं जाना। १. राजा की स्त्री, २. गुरु की स्त्री, ३. मित्र की

****
स्त्री, ४. अपनी सास (धर्म पत्नी की माता), ५. अपनी माता जिसने पैदा किया है। ये पाँच माताएं कही गई हैं।*

इन्हीं पांचों की ओर कुदृष्टि नहीं डालनी, हजार बार भी कोई कहे तो भी नहीं मानना। चोर ने कहा, जी सत्य वचन! मैं इस वचन की पालना अवश्य करूंगा।

तीसरी बात सन्तों ने कही- शराब निस्संदेह पीओ, लेकिन एकादशी अमावस्या, पूर्णमासी आदि अच्छे दिनों में बिल्कुल नहीं पीनी। चोर इस बात से भी सहमत हो गया।

चौथी बात सन्तों ने कही - तुम किसी एक प्राणी का मांस अपने आप नफरत करके छोड़ दो। चोर ने कहा-महाराज जी! मैंने कौए का मांस खाना त्याग दिया है।

सन्तों ने कहा-जो निश्चय तुमने हमारे सामने किए हैं, इन्हें ज़िन्दगी भर निभाना, कभी भी भुलाना मत। इतनी शिक्षा प्रदान करते हुए सन्त अपनी मंजिल पर पहुंच गये। वह चोर सन्तों का सामान वहाँ पर छोड़कर वापिस अपने गाँव आ गया तथा लोगों को इक्ट्ठा करके सन्तों के वचन सुनाए।

समयानुसार वह चोर जब चोरी करने गया तो राजमहलों में चला गया। वहां पर रानी अपने पति राजा के साथ नाराज हुई बैठी थी, क्योंकि राजा के घर सन्तान कोई न थी। राजा ने वृद्धावस्था में दूसरी शादी करवाई हुई थी। राजा बहुत वृद्ध था तथा रानी यौवनावस्था में थी। इसलिए उनका आपस में झगड़ा रहता था तथा रानी कामुक होकर अलग कमरे में गहरी सोच में लेटी हुई थी। जिस समय वह चोर चोरी करने आया तो अकस्मात् पहले रानी वाले कमरे में ही चला गया, खटखटाहट होने पर रानी उठ गई तथा दूसरे कमरे में राजा भी उठ गया।

रानी ने चोर से कहा- तुम मेरे पति हो, इसलिए तुम मेरे पास ही रहो या मुझे अपने साथ ही ले जाओ। मैं तुझे करोड़ों रुपए नकद तथा हीरे-जवाहरात दूंगी, लेकिन चोर न माना। चोर ने सन्तों का वचन याद रखा कि राजा की स्त्री माता समान होती है। रानी ने कई बार कहा कि तुम मेरे पति हो, मैं तुम्हारी दासी बन कर रहूंगी, लेकिन चोर ने उसे माँ ही कहा। राजा छिप कर यह सब बातें सुन रहा था लेकिन उसने कहा कुछ भी नहीं। फिर चोर ने एक अल्मारी में से हीरे, मोती, जवाहरात तथा सोने के आभूषण आदि उठाकर एक थैली में भर लिए। खाना न खाने के कारण उसे भूख लगी हुई थी तथा खाने की बहुत सी वस्तुएँ उसने देखीं तो उसने अपनी ओर से तो बचा कर खाईं, लेकिन जल्दी के कारण नमक वाली वस्तु भी खा गया। जिस से उसे सन्तों के वचन याद आ गए कि जिसका नमक खाओ उसकी चोरी मत करना। उसी समय चोरी का सामान छोड़कर बाहर चला गया। प्रातः उठते ही जब राजा ने देखा

***राजाः पत्नी, गुरुः पत्नी, मित्र पत्नी, त्यैव च।।**
जाया माता, स्वै माता च पंच एत् मात्रा सिमित्रा।।

****
कि कोई भी नुकसान नहीं हुआ तो राजा चोर के धर्म को देखकर बहुत खुश हुआ तथा शहर में घोषणा करवा दी कि जो चोर रात को राज महलों में चोरी करने आया था वह मेरे पास आये, मैं उसे ईनाम देना चाहता हूँ। वह चोर घोषणा सुन राजा के समक्ष आ पहुंचा। राजा ने कहा, यदि तुमने चोरी करने के लिए सामान उठाया था तो फिर लेकर क्यों नहीं गए? चोर कहने लगा, सन्तों का वचन है, जिसका नमक खाओ, उसकी चोरी मत करना। मैंने रात चोरी करने के पश्चात् भूख लगने के कारण कुछ मिठाई आदि खाई थी जिसमें नमक भी खाया गया। इसलिए सारा सामान छोड़कर चला गया।

फिर राजा ने कहा-रानी तुझे पति बना रही तो तुम उसके पति क्यों नहीं बने? चोर ने कहा-सन्तों का वचन था कि राजा की पत्नी मां समान होती है। इसलिए मैं उसे अपनी मां समझता रहा हूँ। यह बातें सुनकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ तथा कहने लगा कि ऐसा धर्मात्मा मनुष्य मिलना बहुत मुश्किल है। इसे मैं अपना धर्म-पुत्र बना कर राज सिंहासन पर बिठा दूँ तो ठीक है। उसी समय राजा ने एक विशेष सभा बुलाई तथा मन्त्रियों को उसकी नेक बातों के बारे में अवगत कराया सभी की उपस्थिती में ही उसे धर्म-पुत्र बनाकर राज तिलक लगाया गया तथा राज सिंहासन पर बिठा दिया।

राजा के वजीर भी धर्मात्मा थे, दोनों के सदाचार से समस्त प्रजा भी श्रेष्ठ कार्यों को करने लगी। वह चोर मांस, शराब आदि सब कुछ छोड़कर हमेशा के लिए सदाचारी हो गया। राजा रानी का भी आपस में समझौता करवा दिया तथा माता-पिता समझ कर उनकी सेवा में व्यस्त हो गया। उसने गाँव के सभी चोरों को अपने पास नौकर रख कर उनका जीवन भी सुधार दिया।

सन्तों की मण्डलियों से सत्संग करवाकर सारा शहर सुधार लिया। एक बार वह चोर राजा स्वयं बीमार हो गया तथा हकीमों ने उसे कौवे का मांस खाने के लिए प्रेरित किया। लेकिन वह सहमत न हुआ। जिन सन्तों ने उसे उपदेश दिया था वही संत भ्रमण करते वहां पहुंचे, जहां चौमासा व्यतीत किया था। जब वह चोरों के गाँव में पहुंचे तो वहां सभी को धर्मात्मा देखकर बहुत प्रसन्न हुए और पता चला कि यह सभी राजा के सेवक हो गये हैं। जो चोरों का मुख्य सरदार था वह राजा बन गया है और वह इस समय बीमार है। वहां से चलकर फिर सन्त उस राजा के पास आए तथा उसका हाल पूछा। राजा ने कहा-बीमारी की हालत में हकीमों ने कौवे का मांस खाने को कहा है लेकिन आपके वचनानुसार मैंने नहीं खाया। आप कृपा दृष्टि करें, जिस से मैं रोग मुक्त हो जाऊं। सन्तों ने उसी समय उसे दवाई देकर कृपा दृष्टि की तथा उसे आरोग्य कर दिया।

इसलिए गुरु जी कहते हैं-कृपालु सन्त कृपा करें तो सन्तों के संग द्वारा चोर, डाकू, पापी, निंदक भी मुक्त हो जाते हैं।

****

संत का दोखी इउ बिललाइ॥ जिउ जल बिहून मछुली तड़फड़ाइ॥

संत का दोखी=निंदक ऐसे रोदन करता है, जैसे पानी के बिना मछली तड़पती है।

संत का दोखी भूखा नही राजै॥ जिउ पावकु ईधनि नही ध्रापै॥

सन्तों का दोखी=निंदक कभी भी संतुष्ट नहीं होता। प्रायः ऐसे भूखा रहता है, जैसे पावकु=आग, ईधनि=लकड़ों से तृप्त नहीं होती।

संत का दोखी छुटै इकेला॥ जिउ बूआड़ु तिलु खेत माहि दुहेला॥

सन्तों का दोखी=निंदक अकेला ही छोड़ जाता है, इसलिए वह ऐसे दुखी होता है जैसे तिलों के खेत में बूआड़ु=भूसा तिलों का पौधा छांटा जाता है तथा वह दुहेला=दुखी होता है। गुरु नानक देव जी कथन करते हैं-

नानक गुरू न चेतनी मनि आपणै सुचेत।।
छुटै तिल बुआड़ जिउ सुंञे अंदरि खेत।।
खेतै अंदरि छुटिआ कहु नानक सउ नाह।।
फलीअहि फुलीअहि बपुड़े भी तन विचि सुआह।। ३।।

(आसा दी वार, पृष्ठ ४६३)

संत का दोखी धरम ते रहत॥ संत का दोखी सद मिथिआ कहत॥

सन्तों का दोखी=निंदक आत्म-धर्म से रहित है। सन्तों का दोखी=निंदक प्रायः झूठे शब्दों को बोलता है।

प्रसंग-चेतो के झूठ बोलने का

एक दिन साहिब श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी दीवान सजाये बैठे थे। श्रद्धालु उत्सुकतापूर्वक दर्शनों के लिए आ रहे थे। महाराज जी संगतों से प्रवचन कर रहे थे कि अचानक खामोश हो गये तथा आंखें बन्द कर लीं। संगत भी चुप हो गई। कुछ क्षण पश्चात् आप जी ने आंखें खोलीं तथा इधर-उधर देखा। फिर चोबदार को इशारा किया। वह आदर सहित आगे बढ़ा तो उसे आज्ञा हुई कि बाहर जाओ, एक सिक्ख फलाँ स्थान पर एक वृक्ष के नीचे बैठा है। उसके नेत्रों में जल भरा हुआ है, कभी चुप हो जाता है, कभी अपने आप से ही बातें करता है। जाकर उसे सप्रेम ले आओ। आज्ञा पाकर चोबदार चला गया और ठीक उसी स्थान पर पहुंचा जहां पर एक सिक्ख वृक्ष के नीचे बैठा था। उसके नेत्र बन्द थे तथा कभी-कभी कोई-कोई आँसू बहता था। चोबदार वृक्ष की ओट में खड़ा हो गया और इंतजार करने लगा कि इसकी आंखें खुलें तो मैं इसे गुरु सन्देश सुनाऊँ, इसकी लीनता भंग न करूं।

एक क्षण पश्चात् अति वैराग्य भरी आवाज आई, हे मन! सोच सतिगुरु जी का द्वार सब के लिए खुला है, सतिगुरु जी सिक्खों को पुत्र समान प्रेम करते हैं। यह कभी हो नहीं

सकता कि ऐसे दाता ने अपना द्वार मेरे लिए बन्द किया हुआ हो। मैं कितनी बार गया हूँ, चोबदार कह देता है तेरे लिए आज्ञा नहीं है। यदि चेतो को कहता हूँ तो वह आज कल कह देता है, तथा कहता है कि तेरी भेंट साहिब ने प्रवान कर ली है और वरदान दिये हैं। फिर दर्शन क्यों नहीं देते? यह द्वार सत्य का है, चोबदार क्यों झूठ कहे। इसलिए हे मन! तेरे में ही कोई अवगुण है, तभी सत्य का प्यारा गुरु तुझे निकट नहीं आने देता। कितनी देर से बैठा प्रार्थना कर रहा हूँ। गुरु जी ने जान लिया होगा कि मैं पापी हूँ, तभी नहीं क्षमाशील हुए। मैं पापी, मैं पापी करता हुआ फिर रोने लगा। अब चोबदार आगे होकर कहने लगा- गुरु प्रिय! तुझे गुरु जी ने याद किया है, मेरे साथ चल, उदास न हो भोले, ऐसा दरबार कहां है जो सिक्ख को दुखदाई अभिमान से छुड़ा कर भक्त (गुरमुख) बना देता है। चोबदार से हमदर्दी भरे वचन सुनकर सिक्ख का हृदय खिल उठा। धन्य दाता! धन्य दाता! करता हुआ उठा तथा उसके साथ चल पड़ा।

जब द्वार पर आये तो पहरे पर खड़े चोबदार ने अन्दर जाने से रोक दिया। साथ आये चोबदार ने कहा- तुम किसकी आज्ञा से रोक रहे हो? तो खड़े चोबदार ने कहा- चेतो के कहने पर मैं रोक रहा हूँ। साथ आये चोबदार ने कहा- मैं इसे चेतो के मालिक की आज्ञा अनुसार लेकर आया हूँ। पहरे वाले चोबदार ने शीश झुकाकर रास्ता दे दिया। गुरु जी के समक्ष हाज़र होकर सिक्ख ने दर्शन किये, नमस्कार किया और तृप्त हो गया। अपने हृदय में विचार करने लगा- है न दयालु गुरु जी, कैसे मेरी पीड़ा पहचानी तथा अपने आप बुला लिया।

इतने में विनोदशील सतिगुरु जी बोले-सिक्खा! मेरे लिए क्या लाए हो?

सिक्ख बोला - दाता! तेरा दिया हुआ ही खाते हैं, लेकिन फिर भी थोड़ा - बहुत सामर्थ्य-अनुसार भेंट कर दिया है।

गुरु जी - भेंट! कब?

सिक्ख बोला- जी, चेतो मसंद को दिया था, वह कहता है स्वीकृत हो गया है। सतिगुरु जी ने खजाने में से पता मंगवाया तो खजानची ने बताया कि इस सिक्ख की भेंट खजाने में जमा हो चुकी है। तब सिक्ख ने बताया-गरीब निवाज़! एक रत्न जड़ित चूड़ा था, लेकिन खजाने में उसके जमा होने का जिक्र ही नहीं है।

यह सुनकर गुरु जी मुस्कुराए तथा चेतो को बुलाया गया। जब चेतो आया तथा चूड़े वाले सिक्ख को बैठा देखकर भयभीत हो गया। कवि जी लिखते हैं-

गुर माया चेतो विरमाइओ। लोभ लहर मैं गोता खाइओ।।
जिस ने बड़े बड़े डहिकाए। कया बपुरा चेतो ठहिराए।।

(गुरु प्रताप सूरज, रुत ३, अंसू १४)

सिक्ख ने चेतो से पूछा-जो मैं थोड़ा बहुत गुरु जी के लिए लाया था वह खजाने में जमा हो गया है लेकिन चूड़ा नहीं पहुंचा।

****

चेतो ने कहा-सिक्खा! झूठ क्यों बोल रहा है, किसी और को दिया होगा मुझ पर झूठा दोष क्यों लगा रहे हो।

सतिगुरु ने कहा- चेतो! मुझे चूड़े की आवश्यकता नहीं, यदि तुझे पसंद है तो तुम ही रख लेना, लेकिन एक बार दिखा तो दो, सिक्ख की भावना पूरी हो जाएगी।

चेतो इतनी बात सुनते ही क्रोध में आ गया। पहले सिक्ख को डांटने लगा, फिर गुरु जी को कहने लगा-आप मुझे चोर समझते हो तथा इस सिक्ख को साधु समझते हो। यूं ही कोसने लग जाते हो, आप हमारी कदर ही नहीं समझते।

गुरु जी बोले-चेतो! देख होश कर, तुझे मैं बता दूँ कि मुझे सत्य तथा झूठ की भली भांति पहचान है कि नहीं। तुम अभी भी सत्य बता दो, नहीं तो मैं दूध का दूध तथा पानी का पानी करके दिखा देता हूँ।

चेतो बोला - आप विषादजनक व्यवहार कर रहे हो, तभी सतिगुरु जी ने पाँच शस्त्रधारी सिक्ख बुलाये तथा आज्ञा की कि चेतो के घर जाओ, ऊपर वाले चौबारे में एक अलमारी है, उसका ताला तोड़कर उस में से जड़ाऊ चूड़ा निकाल लाओ। जब सिक्ख चले गये तो चेतो निष्क्रिय हो गया। थोड़े समय पश्चात् सिक्खों ने आकर चूड़ा सतिगुरु के समक्ष पेश कर दिया।

गुरु जी कहने लगे-सिक्खा! क्या यह चूड़ा तुम्हारा ही है तो सिक्ख बोला - जी पातिशाह! यही है। यह बात सुनकर आप ने सिक्ख की ओर प्रेम व कृपा दृष्टि की, लेकिन चेतो की ओर क्रोध भरी दृष्टि से देखकर कहने लगे-

चेतो! एक तो चोरी ऊपर से चतुराई। अब बताओ, मेरा सिक्ख झूठा है कि तुम? बुद्धि मेरे सिक्ख की खराब है कि तेरी? मैने तुम्हारी कदर नहीं डाली कि तुमने मुझे नहीं पहचाना।

किरतु निंदक का धुरि ही पइआ॥ नानक जो तिसु भावै सोई थिआ॥ ६॥

निंदक व्यक्ति का निंदा करने वाला किरतु=कर्म पूर्व निर्धारित ही है। गुरु साहिब जी कहते हैं-जो वह प्रभु चाहता है सोई थिआ=वही कुछ होता है।

संत का दोखी बिगड़ रूपु होइ जाइ॥ संत के दोखी कउ दरगह मिलै सजाइ॥

सन्तों का दोखी=निंदक बिगड़ रूपु=कोढ़ी हो जाता है। सन्तों के दोखी=निंदक को दरगह में बहुत कठिन सजा मिलती है।

संत का दोखी सदा सहकाईऐ॥ संत का दोखी न मरै न जीवाईऐ॥

सन्तों का दोखी=निंदक प्रायः सहकाईऐ=सहकता रहता है। सन्तों का दोखी=निंदक न मरता है न ही जीता है।

संत के दोखी की पुजै न आसा॥ संत का दोखी उठि चलै निरासा॥

****

सन्तों के दोखी=निंदक की इच्छा पूर्ण नहीं होती। सन्तों का दोखी=निंदक संसार से निराश ही उठकर चला जाता है।

संत कै दोखि न त्रिसटै कोइ ॥ जैसा भावै तैसा कोई होइ ॥

सन्तों में दूषणारोपन करके कोई भी त्रिसटै=ठहरता नहीं। जैसे होना कोई चाहता है, निस्संदेह वैसा ही कुछ हो जाए, फिर भी कोई स्थिर नहीं हो सकता।

जे ओहु अठिसठि तीरथि न्हावै।। जे ओहु दुआदस सिला पूजावै।।
जे ओहु कूप तटा देवावै।। करै निंद सभ बिरथा जावै।। १।।
साध का निंदकु कैसे तरै।। सरपर जानहु नरक ही परै।। १।। रहाउ।।
जे ओहु ग्रहन करै कुलखेति।। अरपै नारि सीगार समेति।।
सगली सिंम्रिति स्रवनी सुनै।। करै निंद कवनै नहीं गुनै।। २।।
जे ओहु अनिक प्रसाद करावै।। भूमिदान सोभा मंडपि पावै।।
अपना बिगारि बिरांना सांढै।। करै निंद बहु जोनी हांढै।। ३।।
निंदा कहा करहु संसारा।। निंदक का परगटि पाहारा।।
निंदकु सोधि साधि बीचारिआ।। कहु रविदास पापी नरकि सिधारिआ।। *(पृष्ठ ८७५)*

पइआ किरतु न मेटै कोइ ॥ नानक जानै सचा सोइ ॥ ७ ॥

जो कर्म किसी का लिखा हुआ है, उसे भोगने के बिना कोई मिटा नहीं सकता। गुरु जी कहते हैं-वह सच्चा परमेश्वर सब कुछ जानता है।। ७।।

सभ घट तिस के ओहु करनैहारु ॥ सदा सदा तिस कउ नमसकारु ॥

सभी शरीर उस प्रभु के रचित हैं, वह प्रभु स्वयं ही करनैहारु=रचयिता है। हम प्रायः उसे नमस्कार करते हैं, तुम भी उसे हमेशा नमस्कार करो।

प्रभ की उसतति करहु दिनु राति ॥ तिसहि धिआवहु सासि गिरासि ॥

तुम दिन रात प्रभु की स्तुति करो तथा श्वास लेते गिरासि=भोजन खाते हुए उस प्रभु का सिमरन करो।

सभु कछु वरतै तिस का कीआ ॥ जैसे करे तैसा को थीआ ॥

उसका किया हुआ सब कुछ हो रहा है। जैसा वह करता है, वैसा ही हो जाता है।

अपना खेलु आपि करनैहारु ॥ दूसर कउनु कहै बीचारु ॥

यह संसार उसका अपना खेल है, वह स्वयं ही इस खेल का कर्ता है। दूसरा अन्य कौन हो सकता है, जो इसके विचार को कह सकता है।

[पृष्ठ २८१]

जिस नो क्रिपा करै तिसु आपन नामु देइ ॥ बडभागी नानक जन सेइ ॥ ८ ॥ १३ ॥

वह प्रभु जिस पर कृपा करता है उसे अपना नाम दान देता है। गुरु जी कहते

****

हैं- वही व्यक्ति भाग्यशाली होता है।। ८।। १३।।

(चौदवीं असटपदी)

सलोकु॥ तजहु सिआनप सुरि जनहु सिमरहु हरि हरि राइ॥

हे सुरिजनहु=श्रेष्ठ चतुर पुरुषो! अपनी बुद्धि की श्रेष्ठता त्याग दो, हर पल हरि राजा का सिमरन करो।

एक आस हरि मनि रखहु नानक दूखु भरमु भउ जाइ॥ १ ॥

गुरु जी कहते हैं - एक वाहिगुरु की आशा हृदय में रखो, जिसकी कृपा दृष्टि से जन्म-मृत्यु का दुख (पाँच प्रकार का) भ्रम तथा (यमों का) भय दूर हो जायेगा।

असटपदी॥

मानुख की टेक ब्रिथी सभ जानु॥ देवन कउ एकै भगवानु॥

मनुष्य का सहारा निष्फल जान, क्योंकि मुनष्य तो स्वयं भिखारी है। देने के लिए तो एक परमेश्वर ही स्मर्थ है।

जिस कै दीऐ रहै अघाइ॥ बहुरि न त्रिसना लागै आइ॥

जिस प्रभु के देने से मनुष्य ऐसा अघाइ=सन्तुष्ट होता है। जो फिर से तृष्णा आकर नहीं लगती।

मारै राखै एको आपि॥ मानुख कै किछु नाही हाथि॥

वह एक प्रभु स्वयं मारने वाला तथा रक्षा करने वाला है। मनुष्य के हाथ में कुछ भी नहीं है।

प्रसंग-एक गाय तथा शेर का

एक जंगल में शेर रहता था, जो पूर्व जन्म में बहुत महान् तपस्वी था। अभिमान करने से किसी भजनीक महात्मा का श्राप मिल गया, जिस के कारण वह अपनी जिन्दगी के श्वास पूर्ण कर शेर योनि में पड़ गया। लेकिन पूर्व जन्म की समृति रहने के कारण बहुत पश्चाताप करता रहा। शेर योनि में भी प्रभु का सिमरन करता रहा, तीसरे दिन उसके आश्रम में जो जानवर आ जाता उसे खाकर अपनी भूख मिटाता।

इस नियमानुसार तीसरे दिन उसके आश्रम में एक गाय आ गई। जब शेर उसे मारने लगा तो गाय ने कहा, गुझे मत मार, मेरी एक बछड़ी आठ दिन की है, उसे कौन पालेगा? तो शेर कहने लगा- पालने वाला प्रभु है, तुम बछड़ी का ख्याल छोड़ दो। गाय ने कहा - तुम कोई प्रमाण दो जिससे मेरा निश्चय दृढ़ हो जाये। शेर ने कहा-एक सौदागर अपनी स्त्री सहित जहाज़ में बैठ कर व्यापार करने के लिए वलायत गया। वहां का कार्य समाप्त कर जब वह वापिस लौटा तो जहाज़ में ही उसके पुत्र पैदा हुआ।

****

उसी दिन प्रभु की लीला से समुद्र में तूफान आ गया, जिससे जहाज़ के टुकड़े टुकड़े हो गये।

एक लकड़ी के टुकड़े पर वह बच्चा तथा उसकी माँ रह गई। थोड़ा आगे जाने पर बच्चे की माँ भी डूब गई तथा वह बालक अकेला ही रह गया। उस समय उसकी रक्षा करने वाला अन्य कोई नहीं था, केवल प्रभु ने ही उसकी रक्षा की। वह अपने पांव का अंगूठा मूँह में डालकर समुद्र में बहता हुआ किनारे पर पहुंच गया। उसी किनारे पर एक राजा का महल था, ऊपर खड़ी रानी यह चमत्कार देख रही थी। नौकर को शीघ्र ही नीचे भेजकर उस बालक को मंगवा लिया। उसके अपने घर भी कोई सन्तान ना थी, रानी ने उस बालक को पुत्र समझकर पालना शुरू कर दिया।

समयानुसार उसे पढ़ाया गया, उपरान्त उसकी सगाई भी कर दी गई। विवाह के पश्चात् उसके रहने के लिए एक महल भी अलग बनवा दिया गया। शादी के आठ दिन पूर्व वह लड़का अपना नया महल देखने के लिए चला गया। जब उसने सबसे ऊपर की मंजिल पर जाकर नीचे देखा तो शारीरक अस्थिरता के कारण चक्कर खा कर नीचे गिर गया तथा तुरन्त उसकी मृत्यु हो गई। उस समय उसे बचाने वाला कोई न था। इसलिए गुरु जी ने कथन किया है-

मारै राखै एको आपि।। मानुख कै किछु नाही हाथि।।

यह समस्त क्रियाएं प्रभु के अपने हाथ में हैं। इस प्रकार के वचन सुनकर गाय को धैर्य हो गया तथा कहने लगी कि आप मुझे एक बार जाने दें तो मैं अपनी बछड़ी को दूध पिलाकर स्वयं ही आ जाऊँगी। यह कह कर गाय चली गई तथा अपनी बछड़ी को दूध पिलाकर, प्यार देकर वापिस शेर के पास आ गई। उसके सत्य को देख कर शेर बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसने गाय से कहा- तुम अपने धर्म पर अटल रही हो, इसलिए मैं तुझे कुछ नहीं कहूंगा। इस प्रकार प्रभु की कृपा से गाय शेर से बचकर अपने घर चली गई।

इसलिए सिक्ख को अपने प्रभु पर विश्वास करना चाहिए कि प्रभु ही सब की पालना करने वाला है तथा मारने वाला भी वही है।

तिस का हुकमु बूझि सुखु होइ॥ तिस का नामु रखु कंठि परोइ॥

उस प्रभु की आज्ञा का बोध ही सुख है। रसीला उसका नाम अपने कंठि=हृदय में पिरोकर रखो।

सिमरि सिमरि सिमरि प्रभु सोइ॥ नानक बिघनु न लागै कोइ॥ १ ॥

उस प्रभु का हृदय द्वारा सिमरन कर, वाणी द्वारा सिमरन कर, तन द्वारा सिमरन कर। अर्थात् - उस प्रभु को बैठते जप, उठते जप तथा सोते जप।

गुरु जी कहते हैं - इस प्रकार सिमरन करने से तुझे कोई विघ्न नहीं आयेगा।।१।।

****

उसतति मन महि करि निरंकार॥ करि मन मेरे सति बिउहार॥

हे मनुष्य! हृदय में निरंकार प्रभु की स्तुति कर। हे मेरे मन! सत्य नाम (सतिनामु) जपने का भी व्यवहार कर।

अथवा - व्यवहार की वृद्धि के लिए भी सत्य व्यवहार कर, झूठा व्यवहार न कर।

निरमल रसना अंम्रितु पीउ॥ सदा सुहेला करि लेहि जीउ॥

जिह्वा द्वारा निर्मल प्रभु का नाम-अमृत पीना कर। ऐसे अपने जीउ=हृदय को हमेशा के लिए सुहेला=सुखी कर ले।

नैनहु पेखु ठाकुर का रंगु॥ साधसंगि बिनसै सभ संगु॥

अपने नैनहु=नेत्रों से ठाकुर का ही रंगु=कौतुक देख तथा सत्संग कर, क्योंकि सत्संग द्वारा सब संगु=कुसंग नाश हो जाएगा।

अर्थात्-जो परमेश्वर को भुलाकर स्वयं में व्यस्त रहते हैं, उन सभी का संगु=सम्बन्ध समाप्त हो जाएगा।

चरन चलउ मारगि गोबिंद॥ मिटहि पाप जपीऐ हरि बिंद॥

पाँवों द्वारा प्रभु के मारगि=रास्ते पर चलना कर। क्योंकि थोड़ा सा समय भी हरि को जपने से समस्त पाप मिट जाते हैं।

अथवा - बिंद=जानने योग्य हरि को जपें तो समस्त पाप मिट जाएँगे।

कर हरि करम स्रवनि हरि कथा॥ हरि दरगह नानक ऊजल मथा॥ २॥

कर=हाथों द्वारा हरि की प्राप्ति के कर्म कर, अर्थात्-सेवा भक्ति कर, तथा कानों द्वारा हरि की कथा सुन। गुरु जी कहते हैं - तब हरि की दरगह में तेरा माथा उज्ज्वल होगा॥२॥

बडभागी ते जन जग माहि॥ सदा सदा हरि के गुन गाहि॥

वह व्यक्ति जगत् में भाग्यशाली होता है। जो सदा=नित्य ही हरि के गुण गाता है।

राम नाम जो करहि बीचार॥ से धनवंत गनी संसार॥

जो व्यक्ति राम के नाम का विचार करते हैं। संसार में व व्यक्ति धनवंत=धनवान् गिने जाते हैं।

मनि तनि मुखि बोलहि हरि मुखी॥ सदा सदा जानहु ते सुखी॥

जो मन तन एक करके मुँह द्वारा सर्वमुखी हरि का नाम बोलते हैं।

अथवा - मन, मुखि=वाणी, तथा तनि=शरीर द्वारा जो व्यक्ति सबसे बड़े हरि का नाम बोलते हैं। उन्हें प्रायः सुखी ही समझो।

****

एको एकु एकु पछानै ॥ इत उत की ओहु सोझी जानै ॥

तीनों कालों में जो एक प्रभु को पहचानता है, अथवा - मन, वाणी, शरीर द्वारा जो एक को ही पहचानता है। यानि - एक ही हरि को जो एक ही पहचानता है, वह व्यक्ति इत उत=लोक-परलोक की समस्त सोझी=ज्ञात को जान लेता है।

नाम संगि जिस का मनु मानिआ ॥ नानक तिनहि निरंजनु जानिआ ॥ ३ ॥

गुरु जी कहते हैं- जिस व्यक्ति का हृदय एक नाम द्वारा मान गया है। उसने निरंजन परमात्मा को जान लिया है।। ३।।

गुर प्रसादि आपन आपु सुझै ॥ तिस की जानहु त्रिसना बुझै ॥

गुरु की कृपा द्वारा जिसे अपने आप की सूझ होती है, अर्थात्-स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति होती है, तो समझो उसकी तृष्णा रूपी अग्नि बुझ जाती है।

साधसंगि हरि हरि जसु कहत ॥ सरब रोग ते ओहु हरि जनु रहत ॥

जो सत्संग में बैठकर हरि हरि का यश कहता है। वह हरि का सेवकजन सभी रोगों से क्षीण हो जाता है।

अनदिनु कीरतनु केवल बख्यानु ॥ ग्रिहसत महि सोई निरबानु ॥

जो रात-दिन केवल=निरोल हरि के कीर्तन को ही बख्यानु=उच्चारण करता है। वह व्यक्ति गृहस्थ में रहते हुए भी निरबानु=बन्धनों से रहित अतीत रूप है।

एक ऊपरि जिसु जन की आसा ॥ तिस की कटीऐ जम की फासा ॥

जिस व्यक्ति की एक परमेश्वर पर उम्मीद है। उसकी यमों की फाँसी काटी जाती है।

पारब्रहमं की जिसु मनि भूख ॥ नानक तिसहि न लागहि दूख ॥ ४ ॥

गुरु जी कथन करते हैं-जिसके हृदय में पारब्रह्म के दर्शनों की भूख है। उसे कोई किसी प्रकार का दुख नहीं लगता।। ४।।

जिस कउ हरि प्रभु मनि चिति आवै ॥ सो संतु सुहेला नही डुलावै ॥

जिस सन्त को हर समय हरि प्रभु हृदय में याद आता है। वह सन्त सुहेला=सुखी है, वह अपने हृदय को डोलाता नहीं है।

जिसु प्रभु अपुना किरपा करै ॥ सो सेवकु कहु किस ते डरै ॥

प्रभु जिस सेवक पर अपनी कृपा दृष्टि करता है। बताओ! वह सेवक फिर किस से डर सकता है?

जैसा सा तैसा द्रिसटाइआ ॥ अपुने कारज महि आपि समाइआ ॥

जैसा प्रभु था, उसे वैसा ही द्रिसटाइआ=नज़र आया है। वह प्रभु अपने सृष्टि कार्यो

****
में स्वयं ही समाया हुआ है।

सोधत सोधत सोधत सीझिआ॥ गुर प्रसादि ततु सभु बूझिआ॥

अनव्य अक्षरों की ओर ध्यान रखना। गुर प्रसादि=गुरु की कृपा द्वारा शोधने वाला होकर उसकी शोध को शोधा है।

अथवा - हृदय द्वारा शोध, वाणी द्वारा शोध, शरीर द्वारा शोध की है।

अर्थात्- वेदों की शोध, शास्त्रों की शोध, पुराणों की शोध की, तब सभी वेदों शास्त्रों के ततु=सिद्धान्त रूप परमेश्वर को बूझिआ=जान लिया या जाना तो ही सीझिआ=कल्याण स्वरूप हुए।

जब देखउ तब सभु किछु मूलु॥ नानक सो सूखमु सोई असथूलु॥ ५॥

अब मैं जब देखता हूँ तो सब कुछ मूलु=कारण रूप परमेश्वर को ही देखता हूँ। गुरु जी कथन करते हैं- वह परमेश्वर स्वयं ही सूखमु=निर्गुण ब्रह्म हो रहा है, वह स्वयं ही असथूलु=सर्गुण स्वरूप हो रहा है।। ५।।

नह किछु जनमै नह किछु मरै॥ आपन चलितु आप ही करै॥

वास्तव में न कुछ जन्मता है, न ही कुछ मरता है। वह परमेश्वर अपने चलितु=कौतुकों को स्वयं ही करता है।

ना किछु आवत ना किछु जावत सभु खेलु कीओ हरि राइओ।। *(पृष्ठ २०९)*

आवनु जावनु द्रिसटि अनद्रिसटि॥ आगिआकारी धारी सभ स्रिसटि॥

जो भी आने जाने वाली, द्रिसटि=दिखाई देने वाली प्रत्यक्ष तथा अनद्रिसटि=न दिखाई देने वाली अप्रत्यक्ष सृष्टि है। वह समस्त सृष्टि उसने अपनी आज्ञा अधीन धारी=रखी हुई है।

अर्थात्-यह समस्त सृष्टि आगिआकारी=माया ने धारी=बनाई हुई है। अथवा-आना तथा जाना, द्रिसटि=दिखाई देने वाला जितना भी प्रपञ्च है, यह सब अनद्रिसटि=द्वैत में है। वास्तव में तो कुछ भी नहीं है।

[पृष्ठ २८२]

आपे आपि सगल महि आपि॥ अनिक जुगति रचि थापि उथापि॥

"आपे आपि" शब्द कहने से वह प्रभु निर्लेप है, तथा सब में व्यापक भी है। अथवा- अपने आप से जीवों को पैदा करके फिर सभी में स्वयं परिपूर्ण है। वह प्रभु अनेक साधनों से स्वयं सृष्टि की रचना करता है, थापि=पालना करता है तथा उथापि=नाश करता है।

अबिनासी नाही किछु खंड॥ धारण धारि रहिओ ब्रहमंड॥

अबिनासी=नाशहीन होने के कारण प्रभु का कभी भी कुछ खंड= नाश नहीं होता। समस्त ब्रह्मण्ड की धारण को वह स्वयं ही रख लेता है।

अर्थात्-नाशहीन होने से वह अविनाशी है। उसमें कुछ भी खंड=भेद-भाव नहीं है। समस्त ब्रह्मण्ड को धारण=मर्यादा में रख रहा है।

अलख अभेव पुरख परताप॥ आपि जपाए त नानक जाप॥ ६॥

अभेव=भेदहीन अकाल पुरुष का प्रताप अलख=जानने से रहित है। गुरु जी कथन करते हैं- वह परमेश्वर अपने नाम को स्वयं जपाए तो जपा जा सकता है।

जिन प्रभु जाता सु सोभावंत॥ सगल संसारु उधरै तिन मंत॥

जिसने प्रभु को जाना है, वह मनुष्य शोभा योग्य है। उसके मन्त्र द्वारा सारा संसार मुक्त हो जाता है।

प्रभ के सेवक सगल उधारन॥ प्रभ के सेवक दूख बिसारन॥

प्रभु के सेवक सभी का उद्धार करते हैं। प्रभु के सेवक दुखों का बिसारन=नाश करते हैं।

आपे मेलि लए किरपाल॥ गुर का सबदु जपि भए निहाल॥

कृपालु परमेश्वर ने आप कृपा करके जिसे सत्संग में मिला लिया है। वह गुरुओं का उपदेश जप कर निहाल= दुखों से मुक्त हुआ है। पूर्व प्रसंग के अनुसार इसका अर्थ इस प्रकार भी करते हैं कि कृपालु परमेश्वर ने अपने सेवकों को अपने साथ मिला लिया है। प्रभु के सेवक गुरुओं का उपदेश जप कर धन्य हुए हैं।

उन की सेवा सोई लागै॥ जिस नो क्रिपा करहि बडभागै॥

उन प्रभु के सेवकों की सेवा में वही मनुष्य लगता है। जिस भाग्यशाली पर प्रभु अपनी कृपा दृष्टि करता है।

नामु जपत पावहि बिस्रामु॥ नानक तिन पुरख कउ ऊतम करि मानु॥ ७॥

जो व्यक्ति नाम जपते हुए बिस्रामु=निश्चत अवस्था में टिक जाते हैं। गुरु जी कहते हैं—उन व्यक्तियों को सर्वोत्तम ही मानो।। ७।।

जो किछु करै सु प्रभ कै रंगि॥ सदा सदा बसै हरि संगि॥

वह उत्तम व्यक्ति जो कुछ भी करता है, वह प्रभु के रंगि=प्रेम, अर्थात्-आनन्द में करता है। वह उत्तम मनुष्य सदा=नित्य स्वरूप हरि के साथ प्रायः वास करते हैं।

यदि किसी समय कर्मानुसार उसे कोई आपत्ति आ जाए तो वह कहता है कि परमेश्वर की आज्ञा में—

सहज सुभाइ होवै सो होइ॥ करणैहारु पछाणै सोइ॥

सहज सुभाइ=कुदरती जो हो रहा है, सो होइ=वह हो जाए तांकि कर्मों का लेखा समाप्त हो जाए। वह हर समय उस कर्त्ता परमेश्वर को ही पहचानता है।

****

प्रसंग-पिंगले लड़के का

एक ब्राह्मण के घर पिंगला लड़का पैदा हुआ। जब वह कुछ बड़ा हुआ तो उसके पिता उसे गोद में उठाकर राज्यसभा में ले गए। राज्यसभा में उस समय कोई वार्तालाप चल रही थी। उस लड़के ने अपने पिता से कहा-पिता जी! यदि आज्ञा हो तो मैं इस बात का उत्तर दे दूं। पिता ने आगे से क्रोधित होकर कहा-चुप कर मूर्ख! तुम इस सभा में क्या उत्तर दोगे? तुम तो हमें ही भोजन के लिए बोझ हो, तेरी तो रोटी भी हमें दण्ड के समान है।

लड़के ने बड़ी नम्रता व निडरता से कहा - मैं तो परमात्मा का दिया खाता हूँ, आपका मुझ पर कोई एहसान नहीं है। ब्राह्मण अपने लड़के की बात सुनकर चकित भी हुआ तथा क्रोधित भी। घर वापिस आकर अपनी पत्नी से कहने लगा- तेरा पुत्र कहता है कि मैं परमात्मा का दिया खाता हूँ। ब्राह्मणी भी क्रोधित हो कहने लगी- यदि यह ऐसे कहता है तो इसे किसी जंगल में छोड़ आओ, फिर इसे पता चलेगा कि बुजुर्गों के आगे कैसे बोला जाता है।

ब्राह्मण उस लड़के को जंगल में एक वृक्ष के नीचे छोड़ आया। परमात्मा ने अपनी माया से उस वृक्ष को एक झोंपड़ी के रूप में बदल दिया तथा नज़दीक ही एक पानी का झरना बना दिया।

परमात्मा की कृपा से जंगल के पक्षी फल-फूल लाकर उसे खिलाने लगे। लड़का सारा दिन राम-नाम का जाप करता रहा।

एक दिन नारद जी भ्रमण करते हुए उधर आ गए। उन्होंने राम-नाम की आवाज़ सुनी तो वह उस लड़के के पास आ गए। लड़के ने नारद जी को देखकर प्रणाम किया। नारद जी ने पूछा-पुत्र! मुझे पहचान लिया है? मैं कौन हूँ? लड़के ने कहा-हां जी, आप ब्रह्मा पुत्र नारद मुनि जी हो। नारद जी ने कहा-मुझ से कोई वर मांग लो। लड़के ने कहा-पहले यह बताओ कि मेरे भाग्य में से दोगे कि अपनी ओर से। नारद जी मुस्करा कर कहने लगे - बेटा! दूंगा तो तेरे भाग्य में से ही। लड़का बहने लगा-फिर मैं आप से कुछ भी नहीं मांगता। नारद जी चकित होकर सोचने लगे कि कितना छोटा बालक है तथा हाथ-पाँव से भी लाचार है, खाने पीने के लिए कुछ भी नहीं है, तब भी कितनी निष्काम भावना है। सोचते-सोचते चकित अवस्था में ही अपने पिता ब्रह्मा जी के पास गये। जब ब्रह्मा जी को सारी वार्ता सुनाई तो वह भी उस लड़के के दर्शनों को उत्तेजित हो उठे। ब्रह्मा जी की पत्नी सरस्वती भी साथ ही चल पड़ी।

ब्रह्मा जी ने सोचा कि चलो विष्णु जी की ओर से होते हुए चलें। जब विष्णु जी ने यह वार्ता सुनी तो वह भी लक्ष्मी जी सहित उस बालक के दर्शनों को चल पड़े। अब इन सभी ने शिवपुरी की ओर प्रस्थान किया। जब कैलाश पति शिव शंकर ने यह

वार्ता सुनी तो वह भी पार्वती जी सहित उस लड़के के दर्शनों के लिए रवाना हुए। तीनों देव उस जंगल में आ गए, जहाँ पर वह लड़का बैठा हुआ था।

नारद जी ने दूर से ही इशारा किया कि वह लड़का उस झाड़ी में बैठा है। सबसे पहले ब्रह्मा जी उस लड़के के पास आए। उस लड़के ने उन्हें नमस्कार की। ब्रह्मा जी ने पूछा :- पुत्र! मुझे पहचान लिया है? लड़के ने कहा-हां जी, आप ब्रह्मा हो। ब्रह्मा ने कहा-जो कुछ भी चाहते हो वो मांग लो। लड़के ने कहा-मेरे भाग्य में से दोगे कि अपनी ओर से। ब्रह्मा ने कहा-दूंगा तो तेरे भाग्य का ही। लड़के ने कहा- फिर मुझे कुछ नहीं चाहिए। ब्रह्मा जी यह उत्तर सुनकर वापिस लौट आए।

फिर विष्णु जी दर्शन करने के लिए गए। लड़के ने नमस्कार की। विष्णु जी ने पूछा-पुत्र! मुझे पहचान लिया है? लड़के ने कहा-हां जी, आप विष्णु हो। विष्णु जी ने प्रसन्न होकर कहा-पुत्र ! तुम बहुत दुखी मालूम होते हो, इसलिए मुझ से कोई वर मांग लो। लड़के ने फिर अपना सवाल दोहराया। तत्पश्चात् विष्णु जी भी यूं ही लौट आये।

फिर शिव जी महाराज गए। उन्होंने भी उसे वर मांगने के लिए प्रेरित किया। लेकिन उस लड़के ने अपना वही सवाल दोहराया। इस पर तीनों देव इकट्ठे होकर विमर्श करने लगे कि यह लड़का तो प्रभु के किये पर ही प्रसन्न है, इस लिए हम से कुछ मांगता ही नहीं। इसलिए हमें चाहिए कि हम अपने आप ही कुछ न कुछ इसे दे दें।

ब्रह्मा जी ने कहा-मैं इसे यह वरदान देता हूँ कि इस के समस्त अङ्ग सम्पूर्ण हो जाएँ। विष्णु जी कहने लगे- मैं इसे वरदान में राज्य देता हूँ तथा यह एक महान् राजा बन जाए। शिव जी बोले-यह बिना पढ़े ही चौदह प्रकार की विद्या का ज्ञाता हो जाए, मैं यह वरदान देता हूँ।

सो ऐसे ही हुआ कि उसके समस्त अङ्ग भी सम्पूर्ण हो गए। उसे चौदह विद्या का ज्ञान भी हो गया। उसी समय उस देश के राजा का देहान्त हो गया तथा उसका कोई पुत्र न था, इस लड़के को देश का राजा बना दिया गया।

"सहज सुभाइ होवै सो होइ।।" की पंक्ति अनुसार प्रभु के किए पर ही प्रसन्न रहने के कारण उस लड़के को सब कुछ प्राप्त हो गया।

प्रभ का कीआ जन मीठ लगाना॥ जैसा सा तैसा द्रिसटाना॥

प्रभु का किया हुआ गुरमुख जनों को मीठ लगाना=मीठा लग गया है। जैसा प्रभु का स्वरूप है उन गुरमुखों ने तैसा द्रिसटाना=वैसा ही देख लिया है।

जिस ते उपजे तिसु माहि समाए॥ ओइ सुख निधान उनहू बनि आए॥

जिस प्रभु से वह पैदा हुए थे उस में ही समा गए हैं। उस प्रभु में जो सुखों के निधान=खज़ाने थे, वह उसी गुरमुख को ही बनि आए=प्राप्त हो गए हैं।

आपस कउ आपि दीनो मानु ॥ नानक प्रभ जनु एको जानु ॥ ८ ॥ १४ ॥

अपने सेवक को प्रभु ने स्वयं ही मानु=आदर दिया है। गुरू जी कहते हैं-प्रभु को तथा सेवक जन को एक ही स्वरूप जानो।। ८।। १४।।

हरि हरि जन दुई एक है बिब बिचार कछु नाहि।।
जल ते उपज तरंग जिउ जल ही बिखै समाहि।। ६०।। *(दसम ग्रन्थ, पृष्ठ ५९)*

(पन्द्रहवीं असटपदी)

सलोकु ॥ सरब कला भरपूर प्रभ बिरथा जाननहार ॥

जो प्रभु सरब कला=समस्त शक्तियों से पूर्ण है तथा प्रत्येक की बिरथा=पीड़ा (कष्ट) जानने वाला है।

जा कै सिमरनि उधरीऐ नानक तिसु बलिहार ॥ १ ॥

गुरु जी कथन करते हैं- जिस (प्रभु) का सिमरन करने से मुक्त होते हैं, मैं उससे बलिहार जाता हूँ।। १।।

असटपदी ॥

टूटी गाढनहार गोपाल ॥ सरब जीआ आपे प्रतिपाल ॥

गोपाल=गो+पाल=पृथ्वी, इन्द्रिय, वेदों का पालक प्रभु टूटी हुई अवस्था (वृत्ति) अर्थात्-आत्मा को अपने साथ गांठने वाला है। फिर वह स्वयं ही समस्त जीवों की पालना करने वाला है।

सगल की चिंता जिसु मन माहि ॥ तिस ते बिरथा कोई नाहि ॥

जिसके हृदय में सब जीवों की चिन्ता है। उस प्रभु से कोई भी बिरथा=खाली नहीं है।

रे मन मेरे सदा हरि जापि ॥ अबिनासी प्रभु आपे आपि ॥

हे मेरे मन! तुम उस हरि का हमेशा जाप करो। वह प्रभु अबिनासी आपे आपि=स्वतंत्र है।

आपन कीआ कछू न होइ ॥ जे सउ प्रानी लोचै कोइ ॥

उस प्रभु की सहायता के बिना यदि कोई प्राणी सउ=सैंकड़ों बार भी इच्छा करे तो भी इसका अपना किया कुछ नहीं होता।

तिसु बिनु नाही तेरै किछु काम ॥ गति नानक जपि एक हरि नाम ॥ १ ॥

उस प्रभु के सिमरन के बिना तेरे किये हुए कार्य किछु=किसी अर्थ भी नहीं हैं। गुरु जी कहते हैं- एक हरि नाम को जप तो तेरी गति=मुक्ति होगी।। १।।

रूपवंतु होइ नाही मोहै ॥ प्रभ की जोति सगल घट सोहै ॥

सुन्दर रूप होकर भी कोई उसे मोह नहीं सकता। क्योंकि समस्त घटाओं में उसी प्रभु की ज्योति सोहै=शोभ रही है।

धनवंता होइ किआ को गरबै ॥ जा सभु किछु तिस का दीआ दरबै ॥

धन वाला होकर कोई क्या अभिमान करता है? जब सब कुछ धन आदि पदार्थ उस प्रभु का ही दिया हुआ है।

अति सूरा जे कोऊ कहावै ॥ प्रभ की कला बिना कह धावै ॥

जो कोई अपने आप को महान सूरमा कहलाता है तो हृदय में विचार करे कि वह प्रभु की कला=शक्ति के बिना कह धावै=कहाँ दौड़ सकता है।

जे को होइ बहै दातारु ॥ तिसु देनहारु जानै गावारु ॥

जो कोई अपने आप को दाता बना बैठता है, तो पदार्थ देने वाला प्रभु उस व्यक्ति को गावारु=मूर्ख समझता है।

जिसु गुर प्रसादि तूटै हउ रोगु ॥ नानक सो जनु सदा अरोगु ॥ २ ॥

गुरु जी कहते हैं-जिसका गुरु की कृपा से अभिमान रूपी रोग टूट गया है, वह व्यक्ति हमेशा ही अरोगु=तन्दरुस्त (सेहतमन्द) है।। २।।

जिउ मंदर कउ थामै थंमनु ॥ तिउ गुर का सबदु मनहि असथंमनु ॥

जैसे मन्दिर को थंमनु=स्तम्भ, थामै=थामता है यानि-सम्भालकर रखता है। उसी तरह गुरु का उपदेश ही हृदय को रोक कर स्थिर रखता है।

प्रसंग-एक बूढ़ी औरत का-"विष्णु अर्पण"

एक बूढ़ी औरत ने सन्तों को कहा- महाराज! मुझे इस मन को वश में करने के लिए कोई सरल उपाय बताओ। मैं ज्यादा पढ़ी लिखी नहीं हूँ तथा मैं पाठ-पूजा करने की विधि भी नहीं जानती हूँ। आप कृपा करें कि मैं इस हृदय को काबू करके सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाऊँ। सन्तों ने कहा, "माता! सेवा किया करो, लेकिन जो भी करो निष्काम ही किया करो। यही समझो कि मैंने विष्णु को अर्पण किया है। प्रभु कृपा करेंगे।" उस बूढ़ी औरत से सामर्थ्य अनुसार जो भी हो पाता वह करती, तत्पश्चात् कह देती "विष्णु अर्पण", यहां तक कि उसकी रसना "विष्णु अर्पण" कहने की अभ्यस्त हो गई।

एक दिन उस वृद्धा ने गली में घर का कूड़ा फैंका तो अभ्यस्तता के कारण उसने कह दिया "विष्णु अर्पण।" अचानक उधर से नारद जी गुजर रहे थे तथा उन्होंने देखा कि उस औरत ने कूड़ा फैंका है और साथ ही कहा है "विष्णु अर्पण" तो नारद जी को बहुत क्रोध आया तथा उन्होंने उस औरत के मुँह पर जोर से थप्पड़ मारा और कहा कि कूड़ा फैंक कहती हो "विष्णु अर्पण", तुझे शर्म नहीं आती? वृद्धा अपनी भूल की क्षमा याचना करने लगी तथा गाल सेंकती हुई आदतन "विष्णु अर्पण" कह कर घर के अन्दर चली गई।

नारद जी जिस समय बैकुण्ठ में गये तो विष्णु जी ने उसकी ओर अपनी पीठ कर ली। नारद जी विनम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर कारण पूछने लगे तो विष्णु जी ने कहा-आपने मुझे आज थप्पड़ मारा है। यह देखो मेरे मुँह पर निशान पड़ा हुआ है। नारद जी आश्चर्यजनक स्वर में बोले-महाराज! मैं आपको थप्पड़ कैसे मार सकता हूँ? प्रभु बोले-आपने उस वृद्धा को मारा था कि नहीं। नारद जी कहने लगे-महाराज! वह तो कूड़ा फैंक कर आपको अर्पण कर रही थी, इसलिए मुझे क्रोध आ गया तथा मैंने उसे थप्पड़ मार दिया। विष्णु जी ने कहा-उसकी तो आदत बन चुकी है कि अच्छा-बुरा सब कुछ हमारे ही अर्पण करती है। नारद जी क्षमा याचना की तथा अपना अपराध निवृत करवाया।

गुरु जी कहते हैं - जैसे सन्तों के उपदेश द्वारा विष्णु अर्पण करते हुए ही उस वृद्धा का मन टिक गया है। ऐसे ही गुरु के उपदेश द्वारा सिक्ख का हृदय टिक जाता है।

जिउ पाखाणु नाव चड़ि तरै॥ प्राणी गुर चरण लगतु निसतरै॥

जैसे पाखाणु=पत्थर, नाव=बेड़ी पर चढ़कर पार हो जाता है। इसी प्रकार प्राणी=प्राणधारी व्यक्ति गुरु चरणों के सहारे से भवसागर से निसतरै=मुक्त हो जाता है।

जिउ अंधकार दीपक परगासु॥ गुर दरसनु देखि मनि होइ बिगासु॥

जैसे अंधेरे में दीपक जलने से रौशनी हो जाती है। इसी प्रकार गुरु का दर्शन करते ही हृदय में ज्ञान द्वारा बिगासु=आनंद होता है।

जिउ महा उदिआन महि मारगु पावै॥ तिउ साधू संगि मिलि जोति प्रगटावै॥

जैसे उजाड़ जंगल में भटके हुए को कोई मारगु पावै=मार्ग बता दे तो उसे सुख होता है। वैसे ही सन्तों के सत्संग में मिलते ही जोति= ज्योति स्वरूप परमात्मा प्रकट हो आता है।

तिन संतन की बाछउ धूरि॥ नानक की हरि लोचा पूरि॥ ३ ॥

गुरु जी कथन करते हैं- उन सन्तों की मैं चरण धूल बाछउ=चाहता हूँ। हे हरि! मैं दास की लोचा=इच्छा पूर्ण करो।। ३।।

[पृष्ठ २८३]

मन मूरख काहे बिललाईऐ॥ पुरब लिखे का लिखिआ पाईऐ॥

हे मुर्ख मन! तुम किस लिए विलाप करते हो, अर्थात् क्यों रोते हो? पूर्व लिखे हुए कर्मों का फल लिखे अनुसार पाया जाता है।

दूख सूख प्रभ देवनहारु॥ अवर तिआगि तू तिसहि चितारु॥

****
कर्मों के अनुसार प्रभु स्वयं दुख सुख देने वाला है। अन्य सभी को छोड़कर तुम उस प्रभु को चितारु=स्मरण कर।

जो कछु करै सोई सुखु मानु॥ भूला काहे फिरहि अजान॥

जो कुछ प्रभु करता है, उसे सुख समझकर मान। हे अजान=अज्ञात मूर्ख प्राणी! तुम किस लिए भूले फिरते हो।

कउन बसतु आई तेरै संग॥ लपटि रहिओ रसि लोभी पतंग॥

विचार कर देख! आते समय तेरे साथ कौन सी वस्तु आई थी? हे लोभी मनुष्य! तुम पतंगे की भान्ति इन रसों में लपटि=फंस रहे हो।

राम नाम जपि हिरदे माहि॥ नानक पति सेती घरि जाहि॥ ४॥

तुम अपने हृदय में राम नाम का सिमरन कर। गुरु जी कथन करते हैं-तो तुम पति सेती=सम्मान पूर्वक परलोक धाम जाओगे।। ४।।

जिसु वखर कउ लैनि तू आइआ॥ राम नामु संतन घरि पाइआ॥

जिस वखर=पदार्थ को लेने के लिए तुम संसार में आए हो। प्रभु ने वह राम नाम रूपी पदार्थ सन्तों के सत्संग, अर्थात् हृदय में डाला हुआ है। इसलिए वह राम नाम रूपी पदार्थ सन्तों के घर में से प्राप्त किया जाता है।

तजि अभिमानु लेहु मन मोलि॥ राम नामु हिरदे महि तोलि॥

अभिमान छोड़कर हृदय रूपी मूल्य देकर उस राम नाम रूपी पदार्थ को ले तथा अपने हृदय में उसी राम नाम को तोलि=विचार ले।

लादि खेप संतह संगि चालु॥ अवर तिआगि बिखिआ जंजाल॥

इस राम नाम रूपी पदार्थ को लादकर सन्तों के साथ चल।

अथार्त्-सन्तों के संग में से यह बोझ उठाकर चल।

अवर-अन्य सभी, बिखिआ जंजाल=माया के झंझटों को छोड़ दे।

धंनि धंनि कहै सभु कोइ॥ मुख ऊजल हरि दरगह सोइ॥

फिर तुझे सभी इस लोक में धन्य धन्य कहेंगे तथा उसकी दरगह में भी मुँह ऊज्वल होगा। यानि-बहुत आदर=सम्मान प्राप्त होगा।

इहु वापारु विरला वापारै॥ नानक ता कै सद बलिहारै॥ ५॥

कोई श्रेष्ठ ही इस पदार्थ को खरीदता है। गुरु जी कहते हैं-मैं उस पर सदा ही बलिहारै=कुर्बान जाता हूँ।। ५।।

चरन साध के धोइ धोइ पीउ॥ अरपि साध कउ अपना जीउ॥

****

सन्तों के चरणों को धो-धोकर पीओ।* तथा सन्तों को अपना जीउ अरपि=हृदय अर्पण (भेंट) कर दो।

साध की धूरि करहु इसनानु॥ साध ऊपरि जाईऐ कुरबानु॥

सन्तों की चरण-धूल में स्नान करो।

माघि मजनु संगि साधूआ धूड़ी करि इसनानु।। *(माझ महला ५, पृष्ठ १३५)*

तथा सन्तों के ऊपर से कुर्बान जाओ।

साध सेवा वडभागी पाईऐ॥ साधसंगि हरि कीरतनु गाईऐ॥

सन्तों की सेवा बहुत भाग्य से प्राप्त होती है। सन्तों के संग करके ही हरि का कीर्तन गाया जाता है।

अनिक बिघन ते साधू राखै॥ हरि गुन गांइ अंम्रित रसु चाखै॥

सेवा करने वाले को अनेकों प्रकार की रुकावटों से साधु रख लेता है। जो सेवक साधुओं की संगत में बैठकर हरि के गुणों को गाता है तथा नाम-अमृत रस चाखै= खाता है, यानि-पीता है।

ओट गही संतह दरि आइआ॥ सरब सूख नानक तिह पाइआ॥ ६ ॥

जिस ने सन्तों के द्वार पर आकर सन्तों की शरण ली है। गुरु जी कहते हैं-उस ने समस्त सुखों को प्राप्त किया है।। ६।।

प्रसंग-नाम महात्म्य का (महाराजा प्रताप सिंघ)

जम्मु रियासत के मालिक महाराजा प्रताप सिंघ ने सन्त बाबा कर्म सिंघ जी की बहुत महिमा सुनी थी तथा अपने समस्त परिवार सहित दर्शन करने के लिए आया।

होती मरदान के डिप्टी कमीशनर ने महाराजा के स्वागत के लिए बहुत ही शानदार प्रबन्ध किया, लेकिन जब उसे पता चला तो उसने रोक दिया और कहा कि मैं मुरीद

---

*१. श्रीमान् सन्त बाबा कर्म सिंघ जी होती मरदान वाले प्रातः काल जब स्नान करते थे तो १०१ कलश पानी से स्नान करते थे। एक कलश में ३० सेर पानी आता था। महाराज जी के स्नान पश्चात् उस स्थान पर श्रद्धालुओं का इतना इकट्ठ हो जाता था कि उस स्नान वाले जल को एक-एक अँजुली पीकर, वह सभी समाप्त कर देते थे।

२. श्रीमान् १०८ भजन मूर्ति सेवा के धनी बाबा शाम सिंघ जी सेवा पन्थी अड्डणशाही, आटा मण्डी, अमृतसर वालों ने जिस समय सम्वत् १९८७, वैशाख ११ को देह त्याग किया तथा उन्हें अन्तिम स्नान करवाया गया तो समस्त श्रद्धालुओं ने उस जल को अमृत-रस मान कर ग्रहण किया।

३. श्रीमान् १०८ ब्रह्म ज्ञानी सन्त बाबा अमीर सिंघ जी सेवा पन्थी अड्डणशाही सभा के प्रधान साहिब, बाजार सत्तोवाला, अमृतसर वालों का जिस समय सम्वत् २०११, कार्तिक संक्रान्ति को देहान्त हुआ तथा उन्हें अन्तिम स्नान करवाया गया तो उस समय भी प्रेमियों ने आगे बढ़कर उसे इस प्रकार ग्रहण किया कि उसकी एक बूंद भी व्यर्थ न जाने दी।

बन कर आया हूँ, महाराजा बन कर नहीं आया। रात को उसने सरकारी बंगले में विश्राम किया तथा जब दूसरे दिन परिवार सहित दीवान के समय डेरे पहुंचा, तो उस समय श्रद्धालुजन प्रभु-वाणी का कीर्तन सुन रहे थे।

सेवादार ने सन्तों के पास विनय की कि गरीब निवाज़! जम्मू का राजा प्रताप सिंघ दर्शनों के लिए आया है, हज़ूर की क्या आज्ञा है? सन्तों ने आज्ञा की - "बाहर खूले पण्डाल में डेरे लगवा दो तथा लंगर में से भोजनादि करवाओ, तत्पश्चात् दीवान में आकर दर्शन करें।" जल-पानी ग्रहण करने के उपरान्त बाबा जी की आज्ञा लेकर बहुमूल्य भेंट के साथ दीवान में उपस्थित हुआ। चरणों पर शीश रखते ही संतस्त हृदय को शान्ति प्राप्ति हुई।

जब सन्त बाबा जी गुफा की ओर चले तो महाराजा प्रताप सिंघ को भी साथ ले गए तथा आने का कारण पूछा। उसने हाथ जोड़कर विनय की, हे दीन दयाल कृपालु दातार जीउ! मुझे भगंदर (नासूर) का रोग है, बहुत उपचार करवाये हैं, लेकिन ठीक नहीं होता। आप कृपा करें तथा गद्दी का उतराधिकारी भी प्रदान करें। आपकी कीर्ति सुनकर हृदय में दृढ़ निश्चय कर आपके चरणों में उपस्थित हुआ हूँ क्योंकि -

"संत की धूरि मिटे अघ कोट।। संत प्रसादि जनम मरण ते छोट।।" *(पृष्ठ १८९)*

राजा की सारी वार्ता सुनकर कृपा दृष्टि द्वारा सन्तों ने आज्ञा की, "नित्य प्रातः प्रभात काल में उठकर जल में बैठकर पाँच जपु जी साहिब के पाठ किया कर, सतिगुरु की यह पवित्र आज्ञा है।"

"सरब रोग का अउखदु नामु।।" *(गउड़ी सुखमनी महला ५, पृष्ठ २७४)*

जितनी देर जल में बैठकर पाठ करो उतना समय रोग वाले स्थान पर जल की मालिश करते रहना। पाठ करने के उपरान्त बाहर आकर मिश्री, बादाम तथा मक्खन खाना, गुरु भली करेंगे। फिर गुरुद्वारे में जाकर सुखमनी साहिब जी का पाठ प्रारम्भ होने से पहले मंजी साहिब के नीचे पवित्र जल रख देना तथा बैठकर सुखमनी साहिब जी का पाठ श्रवण करना, फिर अरदास के पश्चात् वह जल आप ग्रहण करना तथा रानी को भी देना। वाहिगुरु आपकी पुत्र-भावना को भी पूर्ण करेगा। गुरु नानक के गृह कोई कमी नहीं है। इस प्रकार के अनमोल वचन सुनकर सन्तों की आज्ञानुसार राजा अपने महलों को चला गया।

महलों में जाकर राजा तथा रानी सन्तोंके वचन अनुसार मर्यादा से जपु जी साहिब तथा सुखमनी साहिब का पाठ करते व सुनते रहे। नाम के प्रताप से राजा अरोग्य हो गया तथा एक वर्ष पश्चात् पुत्र पैदा हुआ।

मिरतक कउ जीवालनहार॥ भूखे कउ देवत अधार॥

जो परमेश्वर मिरतक कउ=मृतक को जीवित करने वाला है। तथा भूखे व्यक्ति को

अन्न-पानी का अधार=सहारा देता है।

प्रसंग-मृत बालक को जीवित करने का

एक समय की बात है कि साहिब श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी महाराज अभी बाल्यावस्था में ही थे तथा पटना साहिब में बच्चों के साथ कई प्रकार के कौतुक करते थे।

एक दिन बच्चों के साथ यमुना में पानी उछालने का खेल खेल रहे थे कि उसी समय एक औरत के विलाप करने की आवाज़ उनके कानों में पड़ी। कोमल हृदय पातिशाह वह दर्द भरी आवाज़ सहन न कर सके तथा तुरन्त यमुना से बाहर आये और उस औरत के पास जाकर देखा कि उसके आगे उसका पत्र पड़ा है। आपका हृदय अत्यन्त द्रवित हो उठा तथा पूछने लगे कि माता! तुम रो क्यों रही हो? उसने कहा - सच्चे पातिशाह जी! यह मेरा पुत्र अभी कुशलपूर्वक था लेकिन देखो अब यह बोलता भी नहीं तथा श्वास भी इसके बन्द पड़े हैं, आप कृपा करें। इस पर सतिगुरु जी का हृदय दया में आया तथा कहने लगे, "देखो माता! श्वास तो चल रहें हैं तथा यह जीवित है।" यह कौतुक देख कर लोग चकित हो उठे तथा वह औरत भी चरणों में गिर गई, कहने लगी धन्य बाला प्रीतम! धन्य बाला प्रीतम! सिक्खों ने कहा, यह तो वही श्री गुरु अमरदास जी वाली पवित्र ज्योति है, दया भी उसी प्रकार है, वही उपकार करने वाली क्षमता भी इन में है, जिन्होंने मृत बालक को जीवित कर दिया है।

सरब निधान जा की द्रिसटी माहि ॥ पुरब लिखे का लहणा पाहि ॥

जिस परमेश्वर की दृष्टि में सभी निधान=खज़ाने हैं। यदि कोई पूर्व जन्म का लहणा=लेख लिखा हो तो ही यह जीव उस परमेश्वर से प्राप्त करता है।

सभु किछु तिस का ओहु करनै जोगु ॥ तिसु बिनु दूसर होआ न होगु ॥

सब कुछ उस परमेश्वर का है, वही करने के लिए समर्थ है। उसके अलावा ऐसा समर्थ दूसरा न कोई हुआ है तथा न ही होगा।

जपि जन सदा सदा दिनु रैणी ॥ सभ ते ऊच निरमल इह करणी ॥

हे जन! हमेशा ही दिन रात उसे स्मरण कर। यही करना सब साधनों से उत्तम व निर्मल है।

करि किरपा जिस कउ नामु दीआ ॥ नानक सो जनु निरमलु थीआ ॥ ७ ॥

वाहिगुरु ने कृपा करके जिसे अपना नामदान प्रदान किया है। गुरु साहिब जी कहते हैं-वह व्यक्ति निरमलु=पवित्र थीआ=होता है।। ७।।

जा कै मनि गुर की परतीति ॥ तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥

जिस के हृदय में गुरु की श्रद्धा है अर्थात्-गुरु पर निश्चय हुआ है। उस व्यक्ति को हरि प्रभु याद आता है।

भगतु भगतु सुनीऐ तिहु लोइ ॥ जा कै हिरदै एको होइ ॥

वह व्यक्ति तिहु लोइ=तीनों लोकों में भक्त-भक्त करके सुना जाता है।* जा कै=जिस व्यक्ति के हृदय में एक प्रभु का निवास होता है।

सचु करणी सचु ता की रहत ॥ सचु हिरदै सति मुखि कहत ॥

उसकी बाहरी क्रिया सत्य है, उसकी आन्तरिक रहत=धारणा भी सत्य है। उसके हृदय में भी सत्य है तथा जबान भी सत्य ही कहती है।

साची द्रिसटि साचा आकारु ॥ सचु वरतै साचा पासारु ॥

उसकी दृष्टि सत्य है तथा उसके शरीर का आकार भी सत्य है। वह सत्य ही करता है, उसका विस्तार भी सत्य है। अर्थात्- लेने देने का जो भी व्यवहार हो, कोई भी कार्य हो, वह सब सत्य ही होता है।

अथवा - सत्य प्रसार में हुए सत्य को दृढ़ करता है।

पारब्रहमु जिनि सचु करि जाता ॥ नानक सो जनु सचि समाता ॥ ८ ॥ १५ ॥

जिसने पारब्रह्म को सचु=निश्चय ही सत्य स्वरूप जान लिया है। गुरु जी कहते हैं-वह व्यक्ति सत्य में ही समाता=विलीन हो जाता है।। ८।। १५।।

प्रसंग–सुखमनी साहिब जी की महिमा का

भाई सुचेत सिंघ जी एक महापुरुष हुए हैं, उनके समक्ष एक सिक्ख ने विनय की कि सुखमनी साहिब पढ़ने का क्या महात्म्य है? तो उन्होंने कहा- मथुरा-वृन्दावन की ओर एक मुन्शी रहता था। उसने किसी महापुरुष से गुरमुखी भाषा सीख कर श्री जपु जी साहिब तथा सुखमनी साहिब जी का पाठ कण्ठ कर लिया।

एक दिन उसने सन्तों से कहा- आप इसको पाठ करने की विधि समझाएं। इस पर सन्तों ने कहा- प्रातः शीघ्र उठकर शौच-स्नानादि क्रिया करके एकासन पर स्थित हो एकाग्रचित्त पाठ करना। तत्पश्चात् श्री गुरु नानक देव जी के चरणों का ध्यान कर अरदास करनी। इस प्रकार सुनकर उसने प्रतिदिन सुखमनी साहिब जी के पाठ करने का नियम कर लिया। उसका एक रसोईया ब्राह्मण था, उसे मरोड़ (पेचिश) लग गए तो मुन्शी ने कहा- भाई! यदि कुछ लेना है तो मांग ले, क्योंकि मेरे पाठ का समय हो रहा है, फिर

---

* १. भगतु भगतु जगि वजिआ चहु चकां दे विचि चमरेटा।। पाण्हा गंढै राह विचि कुला धरम ढोइ ढोर समेटा।। जिउ करि मैले चीथड़े हीरा लालु अमोलु पलेटा। चहु वरना उपदेसदा गिआनु धिआनु करि भगति सहेटा।। न्हावणि आइआ संगु मिलि बानारस करि गंगा थेटा।। कढि कसीरा सउपिआ रविदासै गंगा दी भेटा। लगा पुरबु अभीच दा डिठा चलितु अचरजु अमेटा।। लइआ कसीरा हथु कढि सूतु इकु जिउ ताणा पेटा।। भगत जनां हरि मां पिउ बेटा।। १७।। (भाई गुरदास जी, वार १०)
२. भगती करे पताल में प्रगट होइ अकास।। रजब तीनों लोक मैं छपै ना हरि का दास।।

****
मैंने बोलना नहीं। ब्राह्मण ने कहा - मुझे किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं, आप अपने नियमानुसार पाठ कर लें। वह मुन्शी उसके पास ही बैठ कर पाठ करने लगा। जब पंद्रहवीं असटपदी समाप्त हुई तथा सोलहवीं असटपदी प्रारम्भ करने लगा तो उसके मन में विचार आया कि यह हिल जुल ही नहीं रहा है इसे देख ही लेना चाहिए। जब उसे हिलाकर देखा तो मरा हुआ था। वह बहुत ही हैरान होकर सोचने लग पड़ा कि यह तो बिस्तर पर ही मर गया है। शास्त्रानुसार यह अब भूत बन गया होगा तथा इसकी मुक्ति ही नहीं हो पाई होगी। लेकिन वह ब्राह्मण तो सुखमनी साहिब जी के पाठ श्रवण करने से ही विष्णु लोक में पहुंच गया था। वहां विष्णु जी हंसकर उसे कह रहे थे कि हे ब्राह्मण! तुम तो सुखमनी साहिब जी के प्रताप से मुक्त हो गये हो परन्तु तुम्हारे स्वामी के हृदय में शंका है कि तुम्हारी मुक्ति नहीं हुई होगी। तुम अपना हाल बताकर उसकी शंका निवृत्त करके आओ। ब्राह्मण उसी समय पालकी में सवार होकर आया तो वह मुन्शी सायं काल को शौच के लिए बाहर जा रहा था तो क्या देखता है कि एक बाग में सुन्दर पालकी पड़ी है उसमें से एक दिव्य मूर्ति ने निकल कर कहा, स्वामी! मैं आप का वही रसोईया हूँ लेकिन सुखमनी साहिब श्रवण करने से मुक्त होकर सत्य स्वरूप हो गया हूँ, आप कोई चिन्ता न करें।

आप जी के पित्र भी बैकुण्ठ में पहुंच चुके हैं तथा आपकी मुक्ति में तो कोई शंका ही नहीं है। यह बातें सुनकर मुन्शी बहुत प्रसन्न हुआ तथा पहले से भी अधिक श्रद्धा-भावना से प्रतिदिन सुखमनी साहिब की का पाठ करने लगा। जिस सुखमनी साहिब जी के प्रताप से अपनी आयु भोग कर अन्त में वह मुन्शी भी सत्य स्वरूप में विलीन हो गया।

(सोलहवीं असटपदी)

सलोकु ॥

रूपु न रेख न रंगु किछु त्रिहु गुण ते प्रभ भिंन॥
तिसहि बुझाए नानका जिसु होवै सुप्रसंन॥ १ ॥

जिस प्रभु का न कोई रूप है, न ही कच्छ-मच्छ रेखायें हैं, न ही कोई काला-पीला रंग है, पुनः वह प्रभु रजस्, ताम्र, सत्व इन तीनों गुणों से भिन्न है।

यथा - **रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकति किह।।** *(जापु साहिब)*

गुरु साहिब जी कहते हैं-वह प्रभु जिस पर स्वयं प्रसन्न होता है, उस को अपना स्वरूप समझा देता है।। १।।

असटपदी ॥

अबिनासी प्रभु मन महि राखु॥ मानुख की तू प्रीति तिआगु॥

****
हे जीव! तुम अपने हृदय में अबिनासी=नाशहीन प्रभु को याद रख। तथा मनुष्य की प्रीत को हृदय में से त्याग दे।

तिस ते परै नाही किछु कोइ॥ सरब निरंतरि एको सोइ॥

उस परमेश्वर के सिवाय कुछ करने वाला कोई भी नहीं है। वह एक प्रभु ही सभी में निरंतरि=एक रस (निरन्तर) पूर्ण है।

आपे बीना आपे दाना॥ गहिर गंभीरु गहीरु सुजाना॥

वह स्वयं ही प्राणियों की बाहरी क्रियाओं को बीना=देखने वाला है। तथा स्वयं ही जीवों की आन्तरिक बातों को दाना=जानने वाला है।

वह सुजाना=चतुर परमेश्वर, गहिर=गहरा, गंभीरु=निर्मल तथा शुभ गुणों का गहीरु=समुद्र है।

[पृष्ठ २८४]

पारब्रहम परमेसुर गोबिंद॥ क्रिपा निधान दइआल बखसंद॥

हे परारूप ब्रह्म=व्यापक, परम-ईश्वर, गो+बिंद=वेदों के ज्ञाता! हे कृपा के निधान=खज़ाने, दयालु स्वभाव वाले, अवगुण को निवृत्त करने वाले।

साध तेरे की चरनी पाउ॥ नानक कै मनि इहु अनराउ॥ १॥

गुरु जी कहते हैं- मेरे हृदय में यही अनराउ=प्रेम है कि मैं अपने आप को तेरे जैसे सन्तों के चरणों में डालूं।। १।।

मनसा पूरन सरना जोग॥ जो करि पाइआ सोई होगु॥

जो सेवकों की मनसा=कामना पूर्ण करने वाला है, तथा शरण में आने वालों की रक्षा करने योग्य है। जो उसने जीव के करि=हाथ में डाला है वही होता है।

अथवा - जो करि=जो कुछ करना उसने लिख दिया है वही होगु=होता है।

हरन भरन जा का नेत्र फोरु॥ तिस का मंत्रु न जानै होरु॥

जिसकी नेत्र=आँख फरकने से संसार का हरन=आभाव तथा भरन=पालन होता है। अर्थात्-जिस के नयन फरकने से जगत का भरन=पोषण, हरन=प्रलय होती है। तिस का मंत्रु=उसकी सलाह को उसके बिना अन्य कोई नहीं जान सकता।

अनद रूप मंगल सद जा कै॥ सरब थोक सुनीअहि घरि ता कै॥

जिस आनन्द स्वरूप परमेश्वर के घर में प्रायः ही मंगल होते हैं। उस प्रभु के घर में सभी थोक=पदार्थ सुने जाते हैं।

राज महि राजु जोग महि जोगी॥ तप महि तपीसरु ग्रिहसत महि भोगी॥

जो प्रत्यक्ष राजाओं में से राजा रूप है, योगियां में से योगी रूप है। तप करने

****

वालों में से सबसे बड़ा तपस्वी है तथा गृहस्थियों में से भोगी रूप हो रहा है।

राजन महि तूं राजा कहीअहि भूमन महि भूमा।।
ठाकुर महि ठकुराई तेरी कोमन सिरि कोमा।। १।।
सूरन महि सूरा तूं कहीअहि भोगन महि भोगी।।
ग्रसतन महि तूं बडो ग्रिहसती जोगन महि जोगी।। ३।।

(गूजरी मः ५, पृष्ठ ५०७)

जोगी अंदरि जोगीआ तूं भोगी अंदरि भोगीआ।।

(सिरी रागु मः १, पृष्ठ ७१)

अथवा - राजाओं में से राजा श्री राम चन्द्र रूप हो रहा है, योगियों में से योगी गोरख रूप हो रहा है। तप करने वालों में से बड़ा तपस्वी शिव रूप हो रहा है। गृहस्थियों में से भोगी=कृष्ण रूप हो रहा है।

धिआइ धिआइ भगतह सुखु पाइआ ॥ नानक तिसु पुरख का किनै अंतु न पाइआ ॥ २ ॥

भक्तों ने उस परमेश्वर को सिमर-सिमर कर सुख प्राप्त किया है। गुरु जी कहते हैं - उस अकाल पुरुष (परमात्मा) का अन्त किसी ने भी नहीं पाया।। २।।

जा की लीला की मिति नाहि ॥ सगल देव हारे अवगाहि ॥

जिस परमेश्वर की लीला जो जगत है, इसकी मिति=मर्यादा जानी नहीं जा सकती। मनुष्य बेचारे क्या हैं जबकि समस्त देवते अवगाहि=विमर्श करते हुए हार गये हैं।

पिता का जनमु कि जानै पूतु ॥ सगल परोई अपुनै सूति ॥

पिता के जन्म का हाल पुत्र क्या जान सकता है, अर्थात्-जैसे पुत्र अपने पिता का हाल नहीं जान सकता। वैसे ही सभी मनुष्य देव आदि अपने पिता रूप परमेश्वर का अन्त नहीं जान सकते। उस परमेश्वर ने अपनी आज्ञा रूप, अथवा-सत्ता रूप सूत्र में सारी सृष्टि पिरोई हुई है।

सुमति गिआनु धिआनु जिन देइ ॥ जन दास नामु धिआवहि सेइ ॥

जिन्हें वह परमेश्वर सु+मति=श्रेष्ठ बुद्धि तथा ज्ञान ध्यान देता है। वह व्यक्ति सेवा भाव से उस परमेश्वर के नाम को स्मरण करते हैं।

तिहु गुण महि जा कउ भरमाए ॥ जनमि मरै फिरि आवै जाए ॥

लेकिन जिन को (रजस्, सत्व, ताम्र रूप) तीनों गुणों में भ्रमण करवाता है। वह जन्म-मृत्यु में बार-बार आते-जाते हैं।

ऊच नीच तिस के असथान ॥ जैसा जनावै तैसा नानक जान ॥ ३ ॥

प्रत्यक्ष ऊँचे-नीचे स्थान, अथवा-स्वर्ग-नरक जैसे ऊँचे-नीचे स्थान, अर्थात्-मनुष्य जन्म

****
ऊँचा स्थान तथा अन्य योनि में जाना निम्न स्थान है, यह सभी स्थान उसी के हैं।

गुरु जी कथन करते हैं—जैसे रूप बनाता है, वैसा ही हे मनुष्य! तुम समझो।। ३।।

नाना रूप नाना जा के रंग॥ नाना भेख करहि इक रंग॥

जिस प्रभु के अनेक रूप हैं, अनेक ही रंग हैं, अत्यन्त भेष धारण करता हुआ भी स्वयं एक ही रंग में रहता है।

नाना बिधि कीनो बिसथारु॥ प्रभु अबिनासी एककारु॥

जिसने कई प्रकार के ढंगों से जगत का प्रसार किया है। लेकिन वह प्रभु स्वयं नाश से रहित है तथा एकंकारु=एक ओ अंकार अद्वेत स्वरूप ब्रह्म है।

नाना चलित करे खिन माहि॥ पूरि रहिओ पूरनु सभ ठाइ॥

जो प्रभु एक क्षण में अनेकों कौतुक कर देता है। क्योंकि वह परिपूर्ण प्रभु सभी स्थानों पर पूर्ण हो रहा है।

नाना बिधि करि बनत बनाई॥ अपनी कीमति आपे पाई॥

जिसने कई प्रक्रियाओं द्वारा जगत की बनावट बनाई है। उसने अपनी कीमत स्वयं ही पाई है, क्योंकि उसकी कीमत को अन्य कोई नहीं जान सकता। अथवा-उसने अपनी कीमति=सत्ता स्वयं ही प्राप्त की है।

सभ घट तिस के सभ तिस के ठाउ॥ जपि जपि ज़ीवै नानक हरि नाउ॥ ४॥

सभ घट=सभी शरीर उसके बनाए हुए हैं तथा सभी ठाउ=स्थान भी उसके हैं। गुरू जी कहते हैं-हम उस हरि के नाम का सिमरन कर-कर के जीवित रहते हैं।। ४।।

अगली पउड़ी में नाम तथा नामी की अभेदता बताते हुए शुभ उपदेश देते हैं-

नाम के धारे सगले जंत॥ नाम के धारे खंड ब्रहमंड॥

सभी जीव-जन्तु नामी, अथवा - नाम के धारे=बनाए हुए हैं। सभी खण्ड तथा ब्रह्मण्ड भी नामी, अर्थात्-नाम के धारे=बनाए हुए हैं। अथवा-सभी जीव नाम के धारे=सहारे हैं। नवखण्ड तथा समस्त ब्रह्मण्ड भी नाम के धारे=सहारे हैं।

नाम के धारे सिम्रिति बेद पुरान॥ नाम के धारे सुनन गिआन धिआन॥

सताईस समृतिएं, चार वेद, अठारह पुराण नाम के धारे=बनाए हुए हैं। ज्ञान के साधन-श्रवण, मानने, नित्यासन तथा हठयोग के साधन-ध्यान, धारणा, समाधि आदि सभी नाम के (नामी) बनाए हुए हैं।

अथवा - समृतियाँ, वेद पुराण सभी नाम के धारे=सहारे हैं। ज्ञान-ध्यान का सुनना भी नाम के सहारे हैं।

नाम के धारे आगास पाताल॥ नाम के धारे सगल आकार॥

सात आकाश, सात पाताल भी नाम, अथवा नामी के बनाए हुए हैं। अन्य सभी आकार भी नाम, अथवा-नामी के बनाए हुए हैं। अथवा-आकाश-पाताल भी नाम के धारे=सहारे हैं। अन्य सभी आकार=शरीर भी नाम के धारे=सहारे हैं।

नाम के धारे पुरीआ सभ भवन ॥ नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन ॥

ब्रह्मपुरी, विष्णुपुरी, शिवपुरी इत्यादि सभी तथा समस्त लोक नाम, अथवा-नामी के बनाए हुए हैं। अर्थात्-समस्त धाम तथा लोक नाम के धारे=सहारे हैं। नाम के साथ लगकर कई जीव (उधरे) मुक्त हो गए हैं। इसलिए तुम नाम को श्रवण कर।

अर्थात्-स्रवन संगि=कानों से नाम को सुनकर कितने ही जीव मुक्त हो गए हैं।

करि किरपा जिसु आपनै नामि लाए ॥ नानक चउथे पद महि सो जनु गति पाए ॥ ५ ॥

परमेश्वर कृपा कर जिस व्यक्ति को अपने नाम सिमरन में लगाता है। गुरु जी कहते हैं- वह व्यक्ति चउथे पद=ज्ञान अवस्था में पहुंच कर गति पाए=मुक्ति प्राप्त करता है।। ५।।

आगामी पउड़ी में परमेश्वर के स्वरूप, क्रिया तथा नाम की महिमा का वर्णन करते हैं-

रूपु सति जा का सति असथानु ॥ पुरखु सति केवल परधानु ॥

जिस परमेश्वर का स्वरूप सत्य है तथा जिसका सत्संग स्थान भी सत्य है। वह सच्चा प्राणी, केवल=शुद्ध है तथा सभी में से परधानु=मुख्य है।

करतूति सति सति जा की बाणी ॥ सति पुरख सभ माहि समाणी ॥

जिसकी करतूति=क्रिया सत्य है तथा जिसकी नाम वाणी भी सत्य है। वह सच्चा जीव सभी में समा रहा है

सति करमु जा की रचना सति ॥ मूलु सति सति उतपति ॥

जिसका कर्म सत्य है तथा सृष्टि रचना भी सत्य है। सब का मूलु=कारण रूप प्रभु स्वयं सत्य है तथा उस से उत्पन्न हुई वस्तु भी सत्य है।

सति करणी निरमल निरमली ॥ जिसहि बुझाए तिसहि सभ भली ॥

उसकी क्रिया सत्य तथा निर्मल से भी निर्मल है लेकिन जिसे समझाता है, उसे भली=अच्छी तरह सारी समझ पड़ जाती है।

सति नामु प्रभ का सुखदाई ॥ बिस्वासु सति नानक गुर ते पाई ॥ ६ ॥

प्रभु का सतिनाम मन्त्र ही सुख देने वाला है। लेकिन यह बिस्वासु सति=सत्य विश्वास गुरु नानक से प्राप्त होता है।। ६।।

क्योंकि यह सतिनाम मन्त्र अनादि काल का है।

यथा-**किरतम नाम कथे तेरे जिहबा।। सतिनामु तेरा परा पूरबला।।**

(मारू मः ५, पृष्ठ १०८३)

इसलिए श्री गुरु रामदास साहिब जी ने कहा है-

जपि मन सति नामु सदा सति नामु।।
हलति पलति मुख ऊजल होई है
नित धिआईऐ हरि पुरखु निरंजना।। रहाउ।।

(धनासरी मः ४, पृष्ठ ६७०)

सति बचन साधू उपदेस॥ सति ते जन जा कै रिदै प्रवेस॥

सन्तों के उपदेश रूप वचन सत्य हैं। । अथवा-साधु लोग वचनों द्वारा सत्य की प्राप्ति का उपदेश देते हैं। अर्थात्-सन्तों का मुख्य उपदेश यही है कि जब भी गुरु जी कुछ कहें तो आगे से "सत्य वचन" कह देना ही उचित है। जैसे भाई लहणा जी "भला जी" या "भूला जी" कह देते थे। जिन के हृदय में वह वचन प्रवेश करते हैं, वह व्यक्ति सत्य हैं।

प्रसंग-सन्तों के वचन मानने का

एक दिन एक राजा सत्संग में गया तो महात्मा ने कथा करते हुए यह वचन सुनाए—

१. रात के पिछले पहर जागना सर्वोत्तम है।
२. घर में आए साधु (मुसाफिर) की सेवा करनी परम धर्म है।
३. चिकना भोजन खाना चाहिए, सूखा (खुशक) भोजन खाने से झगड़ा होता है।
४. स्त्री आज्ञा न माने तो डाँटना योग्य है।

आगते स्वागतं सारं, रात्रऊ सारं च जाग्रणं।
भोजने च घृतं सारं, स्त्रीयः सारं च ताड़नं।।

इन चार वचनों को सुनकर राजा अपने राजमहलों में आ गया। रानी को कहने लगा, आज सन्तों से मैं चार वचन सुनकर आया हूँ। सबसे प्रथम वचन उनका यह है कि जो प्रभात में उठकर प्रभु का सिमरन करना है, वह सर्व श्रेष्ठ है। इसलिए तुम मुझे प्रातः चार बजे उठा देना। यह बात सुनकर रानी बहुत प्रसन्न हुई (क्योंकि वह स्वयं प्रायः प्रभात समय में उठकर सिमरन करती थी तथा राजा को भी कई बार उठाती थी लेकिन वह उठता ही नहीं था) तथा कहने लगी मैं अवश्य ही आपको प्रातः उठा दूंगी। यदि आप भजन करोगे तो इस में आपकी अर्धांगी होने के कारण मुझे भी लाभ प्राप्त होगा। जब प्रातः रानी ने राजा को जगाया तो पहले कभी न उठने के कारण राजा उठकर फिर सो जाया करे। रानी ने कहा, मेरे कहने से नहीं उठते तो अपने गुरु का वचन तो मानो। राजा ने कहा, मैं क्या करूँ? नींद ही नहीं छोड़ती। रानी ने विमर्श दिया कि आप सिपाहियों के वस्त्र पहन कर शहर में गश्त कर आओ, नींद खुल जाएगी। उसी समय राजा सिपाहियों के वस्त्र पहनकर शहर की ओर चल पड़ा, घूमते-घूमते

****
एक स्थान पर गया, वहां उसने क्या देखा कि एक टूटे हुए घर में स्त्री-भरता रहते हैं, दोनों का आपस में प्रेम बहुत है।

स्त्री ने अपने पतिव्रता धर्म अनुसार प्रातः उठकर पहले स्वयं स्नान किया, फिर पति को स्नान करवाकर चरणामृत ग्रहण किया, उसे कपड़े पहनाकर उसके गले में फूलों की माला डालकर उसकी पूजा की, फिर पति को हरि यश के लिए सत्संग में भेज दिया। तत्पश्चात् आप चरखा कातती हुई, राम-राम का सिमरन करती है तथा रोती भी है।

राजा देखकर हैरान हो गया तथा निकट आकर पूछने लगा - माता! यह बताओ कि -

१. चरखा क्यों कात रही हो? २. राम-राम क्यों कर रही हो? ३. रो क्यों रही हो?

उस स्त्री ने कहा - मैं अपनी उपजीविका के लिए चरखा कात रही हूँ। जब से शादी करके इस घर में आई हूँ तब से ही मैं परिश्रम कर अपने पति को खिलाया है, उसकी कमाई का नहीं खाया। क्योंकि पति की सेवा करना मेरा परम धर्म है। मुक्ति प्राप्त करने के लिए मैं राम राम का सिमरन करती हूँ। रोती इसलिए हूँ कि इस नगरी का राजा बहुत धर्मात्मा है लेकिन वह आज से आठवें दिन मर जाएगा। राजा अपनी मृत्यु सुनकर भयभीत हो उठा तथा पूछने लगा - तुझे कैसे मालूम हुआ कि राजा ने आठवें दिन मर जाना है? स्त्री बोली-मैं पतिव्रता धर्म की शक्ति के अनुसार कह रही हूँ। राजा ने पूछा - वह किस प्रकार से मरेगा? स्त्री कहने लगी-यमदूत साँप का रूप धारण कर आएंगे तथा उसे डंक मार देंगे। यह बात सुनकर राजा वापिस महलों को आ गया तथा अपनी रानी व वजीर आदि को बुला कर सारी वार्ता का वृतान्त किया।

उसी समय रानी तथा वजीर ने मिलकर बहुत यत्न किए तथा दान-पुण्य आदि किए। फिर राजा को सन्तों के वचन याद आ गए "आगते स्वागतं सारं।" इस वचनानुसार वजीर ने कहा- जो साँप मारने के लिए आए, उसका आदर करना चाहिए, क्योंकि बालक हो, युवा हो, वृद्ध हो, वैरी हो, चोर-चण्डाल भी हो, जो भी घर आए वह अतिथि सम्मान के योग्य होगा। साँप ने बेशक मारने के लिए आना है फिर भी वह अतिथि होने के कारण सम्मान योग्य है। साँप के सम्मान में एक सुन्दर बाग तथा उसमें शीश महल बनवाकर चारों दरवाजों पर दूध, शर्बत तथा पानी आदि के कुँड बनवाए गये। उसकी रिहायश के लिए चन्दन के वृक्ष लगवाए गए। साँप की प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए बीन बजाने वालों को आमन्त्रित किया गया तथा स्वागत सलामी के लिए सेनायें तैनात कर दीं।

जब साँप ने प्रवेश किया तो सभी ने अत्याधिक सुन्दर ढंग से सलामी दी, जल के कुँड में स्नान करवाया, शर्बत तथा दूध पिलाया तथा चन्दन के वृक्ष पर बिठाकर उसे बीन बजा कर सुनाई गई। वह यमदूत साँप के भेष में बहुत प्रसन्न हुआ तथा कहने लगा-इस राजा ने मेरी बहुत सेवा की है अब मैं इसे कृतघ्न होकर नहीं मार सकता। धर्मराज की आज्ञा तो यह है कि इसे मार कर लाओ लेकिन मैं इसे अपनी उम्र भी देकर जाऊँगा।

****

समयानुसार साँप ने राजा को आकर कहा - धर्मराज की आज्ञा से मैं एक बार तुझे डंक मारकर मार दूंगा फिर अपनी आयु तुझे देकर जीवित कर दूंगा, तुम चिन्ता मत करो। इतना कह साँप ने राजा को थोड़ा सा डंक मारा तथा उसकी मृत्यु हो गई, लेकिन साँप ने उसी समय अपनी पाँच वर्ष आयु देकर उसे जीवित कर दिया।* तथा कहने लगा कि देवताओं की पाँच वर्ष की आयु मानव की ७५ वर्ष की आयु के समान होती है इसलिए अब तुम ७५ वर्ष और राज्य करोगे। यह बात सुनकर साँप जाने लगा तो राजा ने उसके जाते हुए भी सम्मान से विदा किया। साँप ने फिर प्रसन्न होकर कहा कि जितने भी दुनिया के पशु-पक्षी हैं वह जो भी अपनी जुबान से बोलेंगे तुझे सब ज्ञान होगा, लेकिन किसी को बताना नहीं, अपनी रानी को भी मत बताना। यदि किसी को बताओगे तो मर जाओगे। यह वचन कर साँप विदा हो गया। राजा प्रसन्न चित्त अपने राजमहलों में आ गया।

फिर राजा को सन्तों का तीसरा वचन याद आ गया कि खुशक भोजन नहीं खाना यदि खाओगे तो झगड़ा हो जाएगा। राजा ने सोचा कि रानी से झगड़ा हुआ तो सम्भाल लूंगा। यह विचार कर रानी से कहने लगा - मेरे लिए आज बिल्कुल खुशक भोजन तैयार करना, घी बिल्कुल भी न लगाना। रानी ने राजा के वचनानुसार खुशक भोजन तैयार कर राजा को परोस दिया।

राजा अपने नियम अनुसार चींटियों को ग्रास निकाल कर दिया करता था, जब उसने खुश्क भोजन का ग्रास निकालकर चींटियों को डाला तो वे राजा की निन्दा करने लगीं तथा उसे गालियाँ देने लगीं, यह सब सुनकर राजा हंसने लगा। निकट ही बैठी रानी ने यह देखकर हंसी का कारण पूछा तो राजा ने बताने से इन्कार कर दिया। इस पर रानी नाराज़ होकर कहने लगी-यदि आपने मुझे हँसने का कारण न बताया तो मैं फाँसी लगाकर अपने प्राण त्याग दूंगी। दोनों में बहुत हठ हुआ तथा वाद-विवाद के पश्चात् जब रानी अपने प्राणों का त्याग करने लगी तो राजा ने कहा-तुम मरने का विचार छोड़ कर मुझे गंगा तट पर ले चल, वहाँ पर मैं ही तुझे हंसने का कारण बता कर जाऊँगा तथा तुम मुझे गंगा में प्रवाहित कर देना। रानी ने गंगा तट पर जाने की तैयारी कर ली। कई लोगों ने रानी को समझाया लेकिन अपने हठ के कारण राजा सहित गंगा की ओर चल दी। चलते-चलते रास्ते में रात पड़ गई, जंगल में एक कुएँ के निकट चारों ओर हरी-भरी घास थी, वहीं पर बसेरा कर लिया। उनके रात्रि व प्रातः समय उस कुएँ से जल लेने के कारण वहां पर कीचड़ हो गया तथा घास रौंदा गया। प्रातः काल एक चरवाहा बकरे-बकरियां लेकर घास चराने के लिए लेकर आ गया। सब बकरियां

---

*जैसे श्री गुरु अमरदास जी ने प्रसन्न होकर अपनी आयु में से ६ वर्ष ११ मास ११ दिन की आयु श्री गुरु रामदास साहिब जी को दी।

****
घास खाने लगीं लेकिन एक बकरी घास न खा रही थी। उसके पति बकरे ने उसे बहुत समझाया लेकिन वह न मानी और कहने लगी-मैं यह कुचला हुआ घास नहीं खाऊँगी। बकरे ने पूछा-तुम कौन सा घास खाओगी? बकरी ने कहा-जो कुएँ की ईटों में लगा हुआ है, वह लाकर दो तो खाऊँगी। वह घास लाने के लिए बकरे ने बहुत प्रयत्न किए लेकिन असफल रहा। क्योंकि कुएँ में गिर जाने का खतरा था। इसलिए बकरे ने बकरी को बहुत समझाया लेकिन वह न मानी। अन्त बकरे को बहुत क्रोध आया तथा सींग तथा टांगों से उसे पीटना शुरु कर दिया। फिर बकरी क्षमा मांगने लगी तथा कहा कि अब मत पीटो, मैं यही घास खा लूंगी।

बकरे-बकरी की यह बात सुनकर राजा को सन्तों के वचन फिर याद आ गए कि यदि स्त्री हठ करे तथा कोई बात न माने तो उसे डांटना उचित है। राजा ने रानी को बुलाया तथा कहा - तुम अपना हठ छोड़ोगी कि नहीं? रानी ने कहा - मैं मर जाऊँगी लेकिन अपना हठ नहीं छोड़ूंगी। उसी में राजा क्रोधित होकर रानी को पीटने लगा तथा अपनी तलवार निकाल कर कहने लगा-अपना हठ त्याग दे वरना अभी तेरा सिर तेरी देह से अल्ग कर दूंगा। रानी घबरा कर बोली - मैंने हठ त्याग दिया है मुझे क्षमा करें, कृप्या मुझे मत मारो।

इस प्रकार सन्तों के वचनों पर विश्वास कर राजा तथा रानी बड़े आनन्द सहित अपने महलों में रहने लगे।

सति निरति बूझै जे कोइ ॥ नामु जपत ता की गति होइ ॥

जो व्यक्ति सत्य-असत्य के निर्णय को समझता है तथा नाम सिमरन करता है, उसकी गति=मुक्ति होती है।

आपि सति कीआ सभु सति ॥ आपे जानै अपनी मिति गति ॥

वह प्रभु स्वयं सत्य है, उसकी की हुई सारी व्यवस्था भी सत्य है। वह अपनी मुक्ति की मर्यादा को स्वयं ही जानता है।

[पृष्ठ २८५]

जिस की स्रिसटि सु करणैहारु ॥ अवर न बूझि करत बीचारु ॥

जिस प्रभु की यह सृष्टि है, वह कर्त्ता प्रभु अवर बूझि=अन्य किसी से पूछ कर इसके बनाने का विचार (न करत) नहीं करता।

करते की मिति न जानै कीआ ॥ नानक जो तिसु भावै सो वरतीआ ॥ ७ ॥

कर्त्ता पुरुष की मिति=मर्यादा को किया हुआ जीव नहीं जान सकता गुरु जी कहते हैं - जो उस कर्त्ता को मन्जूर होता है, वही होता है।। ७।।

बिसमन बिसम भए बिसमाद ॥ जिनि बूझिआ तिसु आइआ स्वाद ॥

जिन का हृदय बिस=विषयों की ओर से बिसम भए=रहित है, वह बिसमाद=अलौकिक रूप हुए हैं। अर्थात्-अलौकिक रूप को पाकर अलौकिक से भी अलौकिक हुए हैं। जिसने गुरु से पूछा है, उसे यह स्वाद=आनन्द आया है।

प्रभ कै रंगि राचि जन रहे ॥ गुर कै बचनि पदारथ लहे ॥

वह गुरमुखजन (भक्तजन) प्रभु के रंगि=आनन्द में राचि रहे=तदाकार हो रहे हैं। जिन्होंने गुरुओं के उपदेश द्वारा ज्ञान=पदार्थ को प्राप्त किया है।

ओइ दाते दुख काटनहार ॥ जा कै संगि तरै संसार ॥

वह गुरु नाम के दाता हैं तथा दुखों को काटने वाले हैं। जिन की संगति करने से कई प्राणी भव-सागर से तरै=पार हो जाते हैं।

जन का सेवकु सो वडभागी ॥ जन कै संगि एक लिव लागी ॥

जो संत जनों का सेवक है, वह भाग्यशाली है, क्योंकि संत जनों की संगति करके उस की एक प्रभु में लिव=वृत्ति लग गई है।

गुन गोबिद कीरतनु जनु गावै ॥ गुरप्रसादि नानक फलु पावै ॥ ८ ॥ १६ ॥

जो व्यक्ति सन्तों के साथ मिलकर गोबिन्द के गुणों का कीर्तन गाता है। अर्थात्-गोबिन्द के गुण तथा गोबिन्द का कीरतनु=यश गाता है। गुरु जी कथन करते हैं-वह व्यक्ति गुरु की कृपा से परमेश्वर की प्राप्ति का फल पाता है।। ८।। १६।।

मंगलाचरण

जिस समय श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज रामसर सरोवर के तट पर मंजी साहिब में सोलह असटपदियों का उच्चारण कर चुके थे। तब श्री गुरु नानक देव जी के ज्येष्ठ पुत्र बाबा श्री चन्द्र जी आ पहुंचे। उन्हें देखकर श्री गुरु अर्जुन साहिब जी ने उठकर उनको चरण वन्दना की तथा आदर सहित अपने आसन पर बिठाया, जल-पान की सेवा की। उस समय बाबा श्री चन्द्र जी ने पूछा - आप यहां बैठे क्या कर रहे थे? श्री गुरु अर्जुन देव जी ने कहा - चौबीस हजार श्वासों की सफलता के लिए सुखमनी नामक वाणी का उच्चारण कर रहा था। सोलह असटपदियां सम्पूर्ण हो चुकी हैं, शेष आठ असटपदियों का उच्चारण आप करके चौबीस पूर्ण कर दें। यह वचन सुन बाबा जी बड़े प्रसन्न हुए तथा कहने लगे - गुरु साहिब की गद्दी आप को मिली हुई है, इसलिए वाणी उच्चारण करने का अधिकार भी आप का ही है। आप ही चौबीस असटपदियों का उच्चारण सम्पूर्ण करें। गुरु जी ने फिर से नम्रता पूर्वक हाथ जोड़ कर विनय की कि हमारे हृदय में प्रसन्नता तब ही होगी यदि आप कुछ वाणी का उच्चारण करें।

****

उस समय गुरु जी को प्रसन्न करने के लिए बाबा श्री चन्द्र जी ने अपने मुखारविंद से दो "ि" की मात्रा का भेद रखकर श्री गुरु नानक देव जी वाला ही श्लोक सुना दिया। बाबा श्री चन्द्र जी से सुन कर फिर श्री गुरु अर्जुन देव जी ने उच्चारण करके वही श्लोक भाई गुरदास जी से लिखवा लिया।

शेष आठ असटपदियां भी श्री गुरु अर्जुन साहिब जी ने रामसर मंजी साहिब वाले स्थान पर ही बैठकर उच्चारण कीं। सम्प्रदाय के अनुसार यह कथन परम्परा से इस प्रकार चला आ रहा है कि श्री गुरु अर्जुन देव जी ने श्री अमृतसर साहिब में रामसर स्थित मंजी साहिब पर बैठे ही सुखमनी साहिब जी की २४ असटपदियों का पूर्ण उच्चारण किया।*

(सताहरवीं असटपदी)

सलोकु॥ आदि सचु जुगादि सचु॥ है भि सचु नानक होसी भि सचु॥ १ ॥

सृष्टि की रचना के आदि=पूर्व वह परमेश्वर सत्य था, जब सृष्टि पैदा हुई तो जुगादि=युगों का आदि सत्युग में भी सत्य था।

गुरु साहिब जी शुभ उपदेश देते हुए कथन करते हैं-भि=उसकी भांति अब भी सत्य है, भविष्य में भी सत्य होगा।।१।।

इस पउड़ी की अन्तिम दो पंक्तियों का अर्थ पहले करना-

बुझनहार कउ सति सभ होइ।। नानक सति सति प्रभु सोइ।।

गुरु जी कहते हैं- वह प्रभु सत्य है, उसकी सति=सत्ता सभी ओर शोभनीय है। उसको बूझने वाले ज्ञानवान को यूं सब कुछ सत्य प्रतीत होता है कि-

---

* ज्ञानी ज्ञान सिंघ जी, तैथिक इतिहास गुरु खालसा भाग पहला पृष्ठ ३९१ पर लिखते हैं-
(गुरु जी)- - - - - -अनेक लोगों को धर्म का उपदेश तथा सतिनाम के जाप का चिन्तन करवाते हुए गाँव बारठ (जहां पर श्री चन्द्र जी रहते थे) जा पहुंचे तथा श्री चन्द्र जी के दर्शन किये। उस समय सुखमनी साहिब जी की सोलह असटपदियों की गुरु साहिब रचना पर चुके थे, उन्हें सुनकर श्री चन्द्र जी बहुत प्रसन्न हुए तथा कहने लगे कि ८ असटपदियों का उच्चारण और करो, क्योंकि प्राणी को आठ पहरों में चौबीस हजार छः सौ श्वास आते हैं। सो जो भी यह २४ असटपदी रचित सुखमनी साहिब पढ़ेगा, उसका श्वास-श्वास सफल हो जाएगा तथा यमों का कष्ट सहन नहीं करना पड़ेगा।
यह वचन सुनकर गुरु जी ने कहा कि अब यह सब आप ही पूर्ण करें तो श्री चन्द्र जी ने "आदि सचु जुगादि सचु।। है भि सचु नानक होसी भि सचु।।" एक मात्र यही श्लोक गुरु नानक देव जी वाला उच्चारण किया। गुरु साहिब की समानता न करते हुए बाबा जी ने पहचान के लिए "भि" शब्द में "ि" की मात्रा का अन्तर रखा। फिर गुरु जी महाराज ने ८ असटपदियों का उच्चारण वहीं पर कर के बाबा जी को सुनाईं। जिस से श्री चन्द्र अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा वचन किया - "आपका बुरा सोचने वाला कोई न होगा तथा आपकी वाणी दुनिया में दिन-प्रतिदिन दुगना-चौगुना सम्मान प्राप्त करती हुई कल्याणदायक सिद्ध होगी।"
इस प्रकार बाबा श्री चन्द्र जी से प्रसन्नता व सम्मान प्राप्त कर श्री गुरु अर्जुन देव जी महाराज फिर अमृतसर आ बिराजमान हुए।

असटपदी ॥

चरन सति सति परसनहार॥ पूजा सति सति सेवदार॥

उस प्रभु के चरण सत्य हैं, उन चरणों को परसनहार=छूने वाला भी सत्य है। उस प्रभु की पूजा भी सत्य है, पूजा करने वाले सेवादार भी सत्य हैं।

दरसनु सति सति पेखनहार॥ नामु सति सति धिआवनहार॥

उस प्रभु के दर्शन सत्य हैं तथा दर्शन करने वाले व्यक्ति भी सत्य हैं। सत्य स्वरूप का नाम सत्य है तथा नाम का सिमरन करने वाले व्यक्ति भी सत्य हैं।

आपि सति सति सभ धारी॥ आपे गुण आपे गुणकारी॥

वह प्रभु स्वयं सत्य है, उसकी धारण की हुई मर्यादा भी पूर्ण सत्य है। स्वयं ही गुण रूप है तथा स्वयं ही गुणकारी=गुणों को करने वाला है।

सबदु सति सति प्रभु बकता॥ सुरति सति सति जसु सुनता॥

उसका सबदु=हुक्म सत्य है तथा हुक्म के बकता=उच्चारण वाला प्रभु स्वयं ही सत्य है। सुरति=ज्ञात, अथवा-सु+रति=श्रेष्ठ प्रीति सत्य है, जो यश को श्रवण करता है वह भी सत्य है। अर्थात्-प्रभु का यश सत्य है तथा जो व्यक्ति ध्यान लगा कर यश को सुनता है वह भी सत्य है।

बुझनहार कउ सति सभ होइ॥ नानक सति सति प्रभु सोइ॥ १ ॥

उसको बूझने वाले ज्ञानवान को सब कुछ सत्य प्रतीत होता है। गुरु जी कथन करते हैं - वह प्रभु पहले सत्य था, अब भी सत्य है तथा भविष्य में भी सत्य होगा।

अथवा - वह प्रभु सति=निश्चय ही सत्य स्वरूप है। अर्थात्-वह प्रभु सत्य से भी सत्य है।। १।।

सति सरूपु रिदै जिनि मानिआ॥ करन करावन तिनि मूलु पछानिआ॥

जिस ने अपने हृदय में मानिआ=अनुभव कर लिया है कि वह प्रभु सत्य चित्त आनन्द स्वरूप है। उसने सब कुछ करने तथा करवाने वाले मूल रूप परमेश्वर को पहचान लिया है।

जा कै रिदै बिस्वासु प्रभ आइआ॥ ततु गिआनु तिसु मनि प्रगटाइआ॥

जिसके हृदय में प्रभु का बिस्वासु=भरोसा आ गया है। उसके हृदय में ततु गिआनु=यथार्थ ज्ञान, अथवा - समस्त बेदों, शास्त्रों का ततु=सिद्धान्त स्वरूप जो परमेश्वर है, उसका ज्ञान प्रकट हो आया है।

भै ते निरभउ होइ बसाना॥ जिस ते उपजिआ तिसु माहि समाना॥

****

वह यमों के भै=डर से निरभउ=निडर होकर बसता है।

अथवा - यमों के भय से निर्भय होकर स्वरूप गृह में बसता है। वह जिस सत्य स्वरूप से उपजिआ=पैदा हुआ था, उसी सत्य स्वरूप में समा गया है।

बसतु माहि ले बसतु गडाई॥ ता कउ भिंन न कहना जाई॥

जैसे किसी वस्तु में वस्तु, गडाई=मिला दी जाए तो फिर उसे अलग नहीं किया जा सकता। इसी प्रकार अद्वैतानन्द वस्तु में कुटस्थ रूप वस्तु को लेकर गडाई=मिला दिया। अर्थात्-वाच्य-वाच्य भाग त्याग कर लक्ष्य लक्ष्य भाग की एकता कर दी तो फिर उसे भिंन=अलग नहीं कहा जाता।

बूझै बूझनहारु बिबेक॥ नाराइन मिले नानक एक॥ २॥

जो काई बूझने वाला होकर इस बिबेक=विचार को बूझता है। गुरु जी कहते हैं-वह नारायण से मिलकर एक रूप हो जाता है।। २।।

ठाकुर का सेवकु आगिआकारी॥ ठाकुर का सेवकु सदा पूजारी॥

ठाकुर का सेवक अपने ठाकुर की आज्ञा मानने वाला होता है। ठाकुर का सेवक प्रायः अपने स्वामी की पूजारी=पूजा करता रहता है।

ठाकुर के सेवक कै मनि परतीति॥ ठाकुर के सेवक की निरमल रीति॥

ठाकुर के सेवक के हृदय में हमेशा परतीति=विश्वास बना रहता है। ठाकुर के सेवक की जो भी रीति है वह निर्मल है।

ठाकुर कउ सेवकु जानै संगि॥ प्रभ का सेवकु नाम कै रंगि॥

अपने ठाकुर=स्वामी परमेश्वर को सेवक अपने अंग-संग जानता है। क्योंकि प्रभु का सेवक नाम के रंगि=प्रेम में, अथवा - आनन्द में रंगा रहता है।

सेवक कउ प्रभ पालनहारा॥ सेवक की राखै निरंकारा॥

ऐसे सेवक को प्रभु स्वयं ही माता-पिता की भांति पालने वाला है। निरंकार वाहिगुरु सेवक का प्रत्येक स्थान पर मान-सम्मान रखता है।

प्रसंग-राजा विक्रम का

राजा विक्रम बहुत ही दानी पुरुष हुआ है, जो प्रत्येक आने वाले अतिथि को खाली नहीं भेजता था। एक इच्छाधारी साँप जंगल में रहता था, अचानक ही एक बार उस जंगल में आग लग गई। आग का सेंक उस साँप को लग गया, जिस से साँप बहुत तड़पा तथा कोई ठण्डी जगह ढूंढने लगा, लेकिन न मिली। किसी दूसरे इच्छाधारी साँप ने कहा कि राजा विक्रम जी के हृदय में शान्ति का कुण्ड है, यदि तुम वहाँ पर दो घड़ी ही निवास करो तो तुझे शान्ति मिल जाएगी। राजा विक्रम बहुत ही दानी स्वभाव

****
का है, वह तुझे निवास के लिए स्थान अवश्य देंगे। उसी समय वह साँप राजा विक्रम के द्वार पर आकर बैठ गया।

राजा ने साँप से पूछा - देवता जी! यहां पर बैठने का आपका क्या कारण है? साँप ने अपनी दशा का वृतान्त सुनाया और कहने लगा-अपने हृदय में बैठने के लिए जगह दीजिए तांकि मुझे शान्ति मिल सके। राजा को वजीर तथा सम्बन्धियों ने बहुत समझाया कि वह इन्कार कर दे। लेकिन उपकारी राजा विक्रम ने चार पहर अपने हृदय में रहने के लिए जगह दे दी। अन्दर जाते ही साँप को ऐसी शान्ति प्राप्त हुई कि बाहर आने के लिए दिल ही न माने। राजा विक्रम ने भी दवाई आदि से उसे बाहर न निकाला। साँप के अन्दर रहने से राजा कोढ़ी हो गया, जिस से सारे सम्बन्धी ग्लानि करने लगे। उसी समय राजा अपने राज्य आदि को छोड़ कर गंगा तट पर जा बैठा। वहां के लोग भी राजा से ग्लानि करने लगे। विषैला शरीर होने के कारण राजा को कभी-कभी बेहोशी भी आ जाया करे। अन्त दुखी होकर राजा ने गंगा में डूब जाने का विचार किया। इतने में किसी दूसरे राजा के सिपाहियों ने आकर उसे पकड़ लिया तथा अपने राज्य में लेजाकर राजा के समक्ष पेश कर दिया।

क्योंकि उस राजा की छोटी लड़की हमेशा प्रभात काल में उठकर प्रभु का भजन करती थी तथा उसका प्रभु पर दृढ़ विशवास था कि सब की पालना करने वाला एक परमेश्वर ही है। उस लड़की का पिता बहुत अहंकारी था, उस की बातें सुनकर वह प्रसन्न नहीं था। एक दिन उसने अपनी लड़की से पूछा - तुम किस के सहारे जीवित रहती हो?

लड़की ने उत्तर दिया - मैं परमेश्वर के सहारे रहती हूँ।

पिता ने कहा - नहीं, तुम मेरे सहारे रहती हो तथा मैं ही तेरी पालना करता हूँ।

लड़की ने कहा - आप नहीं पालते, सब का पालक परमेश्वर है। श्री गुरु अर्जुन साहिब जी ने सुखमनी साहिब में लिखा है-

"मानुख की टेक ब्रिथी सभ जानु।। देवन कउ एकै भगवानु।।"

यह सब बातें सुनकर राजा ने क्रोधित हो कर कहा - तेरी शादी किसी कोढ़ी के साथ कर दूंगा तो फिर देख लूंगा कि वह प्रभु-तेरी पालना कैसे करता है। राजा ने तुरंत ही अपने सिपाहियों को आज्ञा दी कि कोई कोढ़ी व्यक्ति ढूंढो, मैं उससे अपनी छोटी लड़की की शादी करूँगा।

सिपाही ढूंढते-ढूंढते गंगा तट पर पहुंचे, राजा विक्रम को कोढ़ी देखकर उसे पकड़ राजा के सामने पेश किया।

राजा ने अपनी छोटी कन्या की शादी उस कोढ़ी के साथ कर दी तथा उन्हें देश निकाला दे दिया। राजा विक्रम सारा - सारा दिन बेहोश ही रहता, उसे यह भी पता नहीं था कि मेरी शादी हुई है। वह कन्या महाराजा विक्रम को एक टोकरे में बिठाकर

****
उठाए घुमती रही तथा सेवा करती रही। इस प्रकार छः माह व्यतीत हो गए।

एक दिन राजा को एक वृक्ष के नीचे सुलाकर वह कन्या पूजा पाठ में लीन हो गई। उस पाठ के प्रताप से वहां एक साँप निकल आया तथा राजा विक्रम की दशा देखकर अत्यन्त दुखी होकर राजा के पेट वाले साँप को कहने लगा - अरे दुष्ट! तुम बाहर निकल आओ, वरना इस रानी द्वारा राजा को जड़ी-बूटियां खिलाकर तुझे मरवाकर बाहर निकलवा दूंगा। उसने कहा - मैं बाहर नहीं निकलूंगा। साँप ने रानी से कहा - हे रानी! तुम चिन्ता त्याग दो, क्योंकि राजा विक्रम ने अपने पेट में एक साँप को चार पहर रहने के लिए जगह दी थी लेकिन वह वापिस बाहर नहीं निकला। इसलिए उसकी विष के कारण राजा कोढ़ी हो गया है। अब जैसे मैं कहता हूँ वैसा ही करो, वह जड़ी-बूटियों के खिलाने से राजा के पेट का साँप टुकड़े-टुकड़े होकर बाहर आ जाएगा तथा राजा विक्रम बिल्कुल ठीक हो जाएगा। यह सुनकर रानी ने उन बूटियों को ढूंढा तथा उन्हें घोट कर राजा को उनका रस पिलाया तो अन्दर का साँप टुकड़े-टुकड़े होकर वमन द्वारा बाहर निकल आया। इतने में राजा की बेहोशी दूर हो गई। राजा ने आंखें खोलीं तथा सामने लड़की को बैठा देखकर पूछने लगा - तुम कौन हो? उस कन्या ने बताया - मैं आपकी धर्म-पत्नी हूँ। जब उसने अपनी वार्ता सुनाई तो राजा विक्रम बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसे अपने साथ लाकर राजमहलों में रहने लगे। राजा ने उस रानी का दर्जा सबसे ऊँचा रखा। इस प्रकार वह प्रभु अपने सेवक की पालना करने वाला है तथा अपने सेवक की रक्षा करता है।

सो सेवकु जिसु दइआ प्रभु धारै॥ नानक सो सेवकु सासि सासि समारै॥ ३ ॥

जिस पर प्रभु कृपा दृष्टि करता है, सेवक वही है। गुरु जी कहते हैं - वह सेवक प्रभु को श्वास-श्वास समारै=स्मरण करता है।। ३।।

अपुने जन का परदा ढाकै॥ अपने सेवक की सरपर राखै॥

प्रभु अपने सेवक का परदा=भेद ढाकै=छुपाकर रखता है तथा अपने सेवक की सरपर=अवश्य इज़्ज़त रखता है।

अपने दास कउ देइ वडाई॥ अपने सेवक कउ नामु जपाई॥

वह प्रभु अपने सेवक को सम्मान देता है। वह प्रभु अपने सेवक से नाम सिमरन करवाता है।

अपने सेवक की आपि पति राखै॥ ता की गति मिति कोइ न लाखै॥

अपने सेवक की आबरू स्वयं की रखता है। उसकी मुक्ति की मिति=मर्यादा को कोई भी नहीं जानता।

प्रभ के सेवक कउ को न पहूचै॥ प्रभ के सेवक ऊच ते ऊचे॥

प्रभु के सेवक तक कोई भी नहीं पहुंच सकता, अर्थात्-उसके समान कोई नहीं हो सकता। क्योंकि प्रभु के सेवक ऊँचे से भी ऊँचे हैं, अर्थात्-सर्वोच्य हैं।

जो प्रभि अपनी सेवा लाइआ॥ नानक सो सेवकु दह दिसि प्रगटाइआ॥ ४॥

जिस व्यक्ति को प्रभु ने अपनी सेवा में लगाया है। गुरु जी कहते हैं - वह सेवक दस दिशाओं में प्रकट हो आता है।। ४।।

नीकी कीरी महि कल राखै॥ भसम करै लसकर कोटि लाखै॥

यदि वाहिगुरु छोटी सी चींटी में अपनी कल=शक्ति रख दे तो वह लाखों-करोड़ों लसकर=सेनाओं को भसम=नाश कर सकती है। इस प्रकार नीकी कीरी=निर्धन को अपनी शक्ति प्रदान कर दे तो वह निर्धन ही लाखों - करोड़ों सेनाओं को भस्म कर सकता है। अब अन्त्रिम भाव सुनो-यदि वाहिगुरु नीकी कीरी=नम्रता वाली वृत्ति में अपनी शक्ति रख दे, अर्थात्-ब्रह्माकार वृत्ति कर दे तो लाखों-करोड़ों सेनाओं रूपी संसार को भस्म करै=मिथ्या रूप निश्चय करता है।

जिस का सासु न काढत आपि॥ ता कउ राखत दे करि हाथ॥

प्रभु स्वयं जिस मनुष्य के श्वास (प्राण) नहीं निकालता। उसे हाथ देकर सब मुश्किलों से बचा लेता है।

[पृष्ठ २८६]

मानस जतन करत बहु भाति॥ तिस के करतब बिरथे जाति॥

मनुष्य अनेक यत्न स्वयं करता है, लेकिन उसके सभी कर्तव्य बिरथे जाति=निष्फल चले जाते हैं। जैसे मनुष्य किसी की जान बचाने के लिए चाहे कितने भी प्रयत्न कर ले यदि परमेश्वर की मर्जी न हो तो उसके किए हुए सभी प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। जैसे राजा प्रीक्षत ने अपनी जान बचाने के लिए गंगा के बहते पानी में शीश महल बनवाकर तथा उसमें भागवत् का पाठ रखवाकर श्रवण किया। इर्द-गिर्द सेना भी तैनात की गई। इतने यत्न करने पर भी मृत्यु से बच न सका।

बहु जतन करता बलवंत कारी सेवंत सूरा चतुर दिसह।।
बिखम थान बसंत ऊचह नह सिमरंत मरणं कदाचह।।
होवंति आगिआ भगवान पुरखह नानक कीटी सास अकरखते।। ७।।

(सहसक्रिती, पृष्ठ १३५४)

मारै न राखै अवरु न कोइ॥ सरब जीआ का राखा सोइ॥

अवरु कोइ=अन्य कोई न मार सकता है, न ही रख सकता है। सभी जीवों की रक्षा करने वाला वह प्रभु स्वयं ही है।

****

यथा- बिनु भगवंत नाही अन कोइ।। मारै राखै एको सोइ।। ७।। (पृष्ठ १९२)

काहे सोच करहि रे प्राणी॥ जपि नानक प्रभ अलख विडाणी॥ ५॥

हे प्राणी! तुम किस लिए सोच (चिन्ता) करता है। गुरु जी कहते हैं-जो प्रभु अदृश्य तथा विडाणी=अद्भुत रूप है, उसका तुम सिमरन करो।। ५।।

बारं बार बार प्रभु जपीऐ॥ पी अंम्रितु इहु मनु तनु ध्रपीऐ॥

हृदय तथा शरीर द्वारा बार बार प्रभु का सिमरन कर, अर्थात्-सत्संग रूपी बार=द्वार पर जाकर बारं बार=बार-बार प्रभु का सिमरन कर ले। इस नाम अमृत को पीकर मन तथा तन दोनों को ध्रपीऐ=तृप्त कर ले।

नाम रतनु जिनि गुरमुखि पाइआ॥ तिसु किछु अवरु नाही द्रिसटाइआ॥

जिस गुरमुख (भक्त) ने नाम रूप रत्न को पा लिया है। उसे नाम जैसा अन्य कुछ भी नजर नहीं आया।

नामु धनु नामो रूपु रंगु॥ नामो सुखु हरि नाम का संगु॥

फिर तो नाम ही उसका धन है, तथा नाम ही उसका रूप रंग है। उसको नाम में ही सुख है, इसलिए वह हरि नाम का ही संगु=साथ है। अर्थात्-सत्संग करता रहता है।

नाम रसि जो जन त्रिपताने॥ मन तन नामहि नामि समाने॥

जो व्यक्ति नाम रस में त्रिपताने=तृप्त हुए हैं। वह मन तन द्वारा नामहि=नाम को जपते हुए नामि=नामी परमात्मा में समाने=समा गए हैं।

ऊठत बैठत सोवत नाम॥ कहु नानक जन कै सद काम॥ ६॥

गुरु साहिब कहते हैं - सेवक जनों का प्रायः यही काम है, जो उठते, बैठते तथा सोते हुए नाम ही जपते रहते हैं।। ६।।

ऊठत बैठत सोवत धिआईऐ।। मारगि चलत हरे हरि गाईऐ।। १।। (पृष्ठ ३८६)
ऊठत बैठत सोवत जागत सदा सदा हरि धिआईऐ।। १।। रहाउ।।

(पृष्ठ ३७९)

प्रसंग-पूर्ण फकीर का

असल महात्मा हर समय प्रभु का सिमरन करते रहते हैं, उनके लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है। लेकिन हिन्दुओं के लिए तीनों पहर संध्या तथा मुसलमानों के लिए पाँच पहर की नमाज़ पढ़नी आवश्यक है।

एक मुसलमान फकीर ने शाही मसीत में नमाज़ पढ़ते हुओं को देखकर कहा - यह नमाज़ पढ़ने वाले काफ़िर हैं तथा नमाज़ न पढ़ने वाले मुसलमान हैं। यह सुनकर काज़ी गुस्सा करने लगे तथा जाकर राजा से शिकायत की। राजा कहने लगा - मैं उससे

****
पूछ कर निर्णय लूंगा तथा योग्य दण्ड दूंगा। दूसरे दिन वह फकीर बाज़ार में बैठा था। कुछ मुसलमान एक मृतक को ले जा रहे थे। मृतक को देखकर वह फकीर सो गया। इस बात पर भी मुसलमानों को क्रोध आया तथा फिर राजा से शिकायत की। बादशाह ने कहा - सब्र करो, मैं पूछ लूंगा। तीसरे दिन एक अन्य कौतुक देखा कि हिन्दु ने रोटी दी तो उसने लेकर खा ली, जब मुसलमान ने दी तो उसने इन्कार कर दिया। फिर चौथे दिन देखा कि उस फकीर ने सबसे छोटी अंगुली में अंगुठी डालकर सुनार के पास जा कहने लगा - खुदा की इस अंगुली में से अंगूठी उतार दे। यह बात सुनकर मुसलमान फिर नाराज हो राजा के पास शिकायत करने को पहुंचे।

राजा ने उस फकीर को बुलाकर चारों प्रश्नों का उत्तर पूछा। बादशाह ने कहा - हे फकीर साईं! तुमने कहा है, नमाज़ पढ़ने वाले काफिर हैं तथा न पढ़ने वाले मुसलमान हैं, क्यों?

फकीर ने कहा - राजन् आपके कितने पुत्र हैं?

राजा ने कहा - मेरे दो पुत्र हैं।

फकीर ने पूछा - वह दोनों पुत्र कहां हैं?

राजा ने कहा - एक वलायत गया हुआ है तथा दूसरा मेरी गोद में है।

फकीर ने कहा - वलायन वाले को कितना याद करते हो तथा गोद वाले को कितना?

बादशाह ने कहा - वलायन वाले को दिन में तीन या पाँच बार याद करता हूँ, क्योंकि वह दूर है तथा गोद वाले को हर समय, आठों पहर याद करता हूँ तथा नजदीक होने के कारण उसे देखे बिना सन्तुष्टि नहीं होती।

यह बात सुनकर फकीर ने कहा - हे राजन्! जो खुदा को दूर समझते हैं, वह काफ़िर हैं क्योंकि खुदा प्रत्येक स्थान पर उपस्थित है तथा प्रत्येक वस्तु वह स्वयं है इसलिए स्वयं रूप होने के कारण निकट से भी निकट है। दूर समझने वाले अज्ञानी लोग काफ़िर हैं, जो दूर समझकर पाँच बार नमाज़ पढ़कर खुदा को याद करते हैं। जैसे तुम अपने बाहर गये हुए ज्येष्ठ पुत्र को चार-पाँच बार याद करते हो। इसलिए नमाज़ पढ़ने वालों को मैंने काफ़िर कहा है तथा जो स्वयं रूप समझकर अपने हृदय में स्थित मानते हैं, वही ज्ञानी तथा मुसलमान हैं। तुम्हारे छोटे पुत्र की भांति वह आठों पहर उठते-बैठते खुदा को याद करते हैं।

इस प्रकार पहले प्रश्न का उत्तर सुनकर राजा प्रसन्न हो गया। फिर दूसरे प्रश्न का जवाब पूछा कि तुम मृतक को देखकर बैठे हुए भी सो क्यों गए थे?

फकीर ने कहा - उस समय मैं क्या करता?

राजा ने कहा - उस समय तुम्हें उठकर खड़े हो जाना चाहिए था।

फकीर ने कहा - मुर्दा, मुर्दे को देखकर खड़ा कैसे हो सकता है तथा न ही साथ जा सकता है। मैं भी मुर्दा हूँ क्योंकि मुर्दा का तथा फकीर का एक ही भेष है। मुर्दे

****
के गले में कफ़न तथा सिर पर टोपी पहनाई जाती है। मैंने भी गले में कफ़न तथा सिर पर टोपी पहनी हुई है। मुर्दे को देखकर मुझे शर्म आ गई कि मुर्दा बोलता नहीं तथा मैं बोल रहा हूँ। इसलिए शर्म के मारे मैं भी लेट गया।

राजा ने कहा-ठीक है। फिर तीसरे प्रश्न का उत्तर पूछा गया कि तुमने हिन्दु से रोटी लेकर खाई लेकिन मुसलमान को इन्कार कर दिया, इसका क्या कारण है?

फकीर ने कहा - मुसलमान अभिमानी हैं, हिन्दु गरीब तथा श्रद्धालु हैं। वह प्रभु श्रद्धा से दिया हुआ, गरीबों का भोजन खाता है, अभिमानी का नहीं खाता। जैसे भगवान् श्री कृष्ण जी ने दर्योधन के मेवे-गिरियों आदि का दूध त्यागकर बिदर का साग खाया था। इस समय मुस्लिम राज्य है तभी मुसलमानों को अहंकार हो रहा है।

फिर राजा ने चौथे प्रश्न का जवाब पूछा- तुमने सुनार से कहा कि खुदा की इस अंगुली में से अंगुठी उतार दे, यह छोटी अंगुली खुदा की कैसे हुई?

फकीर ने कहा- हां! यह खुदा की अंगुली है। तुम यह बताओ कि यह मुलक किस का है? राजा ने कहा - खुदा का है। फकीर ने पूछा - यह राज्य किस का है? राजा ने कहा - खुदा का है। फकीर ने कहा - हे राजन्। तुम किसके हो? राजा ने कहा - खुदा का। फकीर ने पूछा - समस्त सृष्टि किस की है? राजा ने कहा - खुदा की। फकीर ने कहा - मैं किस का हूँ? राजा ने कहा - खुदा का। फकीर ने कहा - यदि सब कुछ खुदा का है तो यह अंगुली खुदा की नहीं? बादशाह ने कहा - हां! यह भी खुदा की है। फकीर ने कहा - मैंने भी तो यही कहा था कि खुदा की इस अंगुली में से अंगूठी उतार दे। राजा सभी जवाब सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

फकीर ने कहा - नाई बुलाओ। राजा के कहने पर नाई आ गया। नाई से फकीर ने कहा - मेरी चीची अंगुली का नाखुन उतारो तो सभी अंगुलियों के नाखुन उतर जाएंगे। नाई ले जब चीची अंगुली का नाखुन काटा तो सभी अंगुलियों के नाखुन उतर गए। यह कौतुक देखकर राजा उस फकीर के चरणों में गिर गया तथा उसका शिष्य बनकर कहने लगा - निस्संदेह आप नमाज़ न पढ़ें, क्योंकि ज्ञानवान फकीरों पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वह उठते-बैठते जिस समय भी चाहें नाम जप सकते हैं।

बोलहु जसु जिहबा दिनु राति॥ प्रभि अपनै जन कीनी दाति॥

हे भाई! रात दिन जिह्वा से प्रभु का यश गान कर। प्रभु ने अपने सेवकों को यही भेंट प्रदान की है।

करहि भगति आतम कै चाइ॥ प्रभ अपने सिउ रहहि समाइ॥

प्रभु के सेवक आतम कै चाइ=मन के उत्साह से भक्ति करते रहते हैं। इसलिए वह अपने प्रभु के साथ समाए रहते हैं।

जो होआ होवत सो जानै॥ प्रभ अपने का हुकमु पछानै॥

जो हुआ है उसे होनी समझ कर जानते हैं, अर्थात् - सत्य ही जानते हैं। हर समय अपने प्रभु की आज्ञा पहचानते हैं।

तिस की महिमा कउन बखानउ॥ तिस का गुनु कहि एक न जानउ॥

उस गुरमुख (भक्त) की महिमा कउन=कौन सी कहूँ, अर्थात्-मैं कौन हूँ जो उसकी महिमा व्याख्यान कर सकूं। क्योंकि मैं तो उसका एक भी गुण कथन करना नहीं जानता।

आठ पहर प्रभ बसहि हजूरे॥ कहु नानक सेई जन पूरे॥ ७॥

वह आठों पहर प्रभु के निकट रहते हैं। गुरु जी कहते हैं-वह व्यक्ति पूर्ण सन्त हैं।।७।।

मन मेरे तिन की ओट लेहि॥ मनु तनु अपना तिन जन देहि॥

हे मेरे मन! तुम उन सन्तों की शरण ले तथा उन सन्तों को अपना मन तन अर्पण कर।

जिनि जनि अपना प्रभू पछाता॥ सो जनु सरब थोक का दाता॥

जिस सन्त जन ने अपने प्रभु को पहचाना है। वह सन्तजन ही सभी थोक=पदार्थों का दाता है।

तिस की सरनि सरब सुख पावहि॥ तिस कै दरसि सभ पाप मिटावहि॥

उसकी शरण में जा कर तुम सर्व सुख प्राप्त करोगे। उसके दर्शन से तुम सभी पापों को मिटा लोगे।

अवर सिआनप सगली छाडु॥ तिसु जन की तू सेवा लागु॥

अन्य सर्व विवेक को तुम त्याग कर, उस सन्त जन की सेवा में तुम लग जाओ।

आवनु जानु न होवी तेरा॥ नानक तिसु जन के पूजहु सद पैरा॥ ८॥ १७॥

गुरु जी कहते हैं - उस संत जन के पाँव का हमेशा पूजन कर, तो तेरा दोबारा संसार में आना जाना, यानि जन्म-मृत्यु, नहीं होगा।। ८।। १७।।

(अठाहरवीं असटपदी)

सिक्ख ने विनय की - सतिगुरु के लक्ष्ण क्या हैं? सतिगुरु किस को कहते हैं? इस असटपदी में गुरु साहिब जी सतिगुरु के गुण कथन करते हैं -

सलोकु॥ सति पुरखु जिनि जानिआ सतिगुरु तिस का नाउ॥

जिसने सति पुरखु=परमेश्वर को जान लिया है तथा उसके प्रतिपादक वेदों को भी जान लिया है, अर्थात्-जो ब्रह्मनेष्टि, ब्रह्मश्रोतरी है, उसका नाम सतिगुरु है।

यथा - **ब्रहमु बिंदे सो सतिगुरु कहीऐ हरि हरि कथा सुणावै।।**

तिसु गुर कउ छादन भोजन पाट पटंबर बहु बिधि

****

सति करि मुखि संचहु तिसु पुंन की फिरि तोटि न आवै।। ४।।
सतिगुरु देउ परतखि हरि मूरति जो अंम्रित बचन सुणावै।।

(मलार महला ४, पृष्ठ १२६४)

तथा - **रता सचि नामि तल हीअलु सो गुरु परमलु कहीऐ।।**
जा की वासु बनासपति सउरै तासु चरण लिव रहीऐ।।

(प्रभाती महला १, पृष्ठ १३२९)

अथवा - **सो सतिगुरु जि सचु धिआइदा सचु सचा सतिगुरु इके।।**
सोई सतिगुरु पुरख है जिनि पंजे दूत कीते वसि छिके।।

(गउड़ी वार, पृष्ठ ३०४)

तिस कै संगि सिखु उधरै नानक हरि गुन गाउ ॥ १ ॥

गुरु साहिब जी कहते हैं - उस गुरु की संगति में मिलकर जो सिक्ख हरि के गुण गाता है, वह भवसागर से पार हो जाता है।। १।।

असटपदी ॥

सतिगुरु सिख की करै प्रतिपाल॥ सेवक कउ गुरु सदा दइआल॥

सतिगुर देव जी अपने सिक्ख की हर प्रकार से पालना करते हैं। गुरु अपने सेवक पर सदा दयाल होते हैं।

सिख की गुरु दुरमति मलु हिरै॥ गुर बचनी हरि नामु उचरै॥

जिस समय सिक्ख गुरु के बचनी=उपदेश द्वारा हरि का नाम उचरै=सिमरन करता है, उस समय गुरु सिक्ख की दुरमति=मन्द बुद्धि रूपी मैल को हिरै=दूर कर देता है।

सतिगुरु सिख के बंधन काटै॥ गुर का सिखु बिकार ते हाटै॥

जब गुरु का सिक्ख विकारों की ओर से हट जाता है, उस समय गुरु सिक्ख के बन्धन काट देता है। अथवा - सतिगुरु सिक्ख के बन्धन काट देता है।

प्रश्न - कैसे पता चले कि बन्धन कट गए हैं?

उत्तर - गुरु का सिक्ख विकारों की ओर से जो हट गया है, इससे ज्ञात होता है कि गुरु ने सिक्ख के बन्धन काट दिये हैं।

सतिगुरु सिख कउ नाम धनु देइ॥ गुर का सिखु वडभागी हे॥

जिस सिक्ख को सतिगुरु देव जी नाम धन देते हैं, वह गुरु का सिक्ख बहुत भाग्यशाली होता है।

सतिगुरु सिख का हलतु पलतु सवारै॥
नानक सतिगुरु सिख कउ जीअ नालि समारै॥ १ ॥

****

सतिगुरु अपने सिक्ख का हलतु पलतु=लोक-परलोक संवार देता है। गुरु जी कहते हैं-सतिगुरु अपने सिक्ख को अपने जीअ=हृदय से याद करता है।। १।।

जैसी गगनि फिरंती ऊडती कपरे बागे वाली।।

ओह राखै चीतु पीछै बिचि बचरे नित हिरदै सारि समाली।।

तिउ सतिगुर सिख प्रीति हरि हरि की गुरु सिख रखै जीअ नाली।। २।।

(पृष्ठ १६८)

गुर कै ग्रिहि सेवकु जो रहै ॥ गुर की आगिआ मन महि सहै ॥

जो सेवक गुरु के घर में आकर रहता है तथा गुरु की आज्ञा को अपने हृदय में सहन करता है।

आपस कउ करि कछु न जनावै ॥ हरि हरि नामु रिदै सद धिआवै ॥

अपने आप को कुछ करके भी नहीं जताता तथा हृदय में प्रायः हरि हरि नाम को स्मरण करता है।

मनु बेचै सतिगुर कै पासि ॥ तिसु सेवक के कारज रासि ॥

जो अपने हृदय को सतिगुरु के पास बेच देता है। उस सेवक के सभी कारज रासि=कार्य पूर्ण हो जाते हैं।

सेवा करत होइ निहकामी ॥ तिस कउ होत परापति सुआमी ॥

जो सेवा करता हुआ निहकामी=निष्कामी हो जाता है। उसे स्वामी अकाल पुरुष प्राप्त होता है।

[पृष्ठ २८७]

अपनी क्रिपा जिसु आपि करेइ ॥ नानक सो सेवकु गुर की मति लेइ ॥ २ ॥

गुरु जी व्याख्यान करते हैं - जिस पर परमेश्वर अपनी कृपा दृष्टि स्वयं करता है। वही सेवक होकर गुरु की मति=शिक्षा लेता है।। २।।

बीस बिसवे गुर का मनु मानै ॥ सो सेवकु परमेसुर की गति जानै ॥

बीस बिसवे=निश्चय से जो गुरुओं का मनु=मन्त्र मानता है।

अथवा - जिस सेवक पर गुरु का हृदय बीस बिसवे=पूरा-पूरा माना जाता है, वह सेवक परमेश्वर की गति=प्राप्ति को जानता है।

नोट :- बीस बिसवे का पूरा बीघा होता है, इसलिए बीस बिसवे का अर्थ "पूरा" वर्णन किया है।

सो सतिगुरु जिसु रिदै हरि नाउ ॥ अनिक बार गुर कउ बलि जाउ ॥

पूर्ण सतिगुरु वही है जिस गुरु के हृदय में हरि नाम समाया है। ऐसे गुरु से मैं

****

अनेकों बार बलिहार जाता हूँ।

सरब निधान जीअ का दाता॥ आठ पहर पारब्रहम रंगि राता॥

वह गुरु जीवों के सरब निधान=खजानों का दाता है। जो आठों पहर पारब्रह्म के रंग में लीन रहता है।

ब्रहम महि जनु जन महि पारब्रहमु॥ एकहि आपि नही कछु भरमु॥

ब्रह्म में गुरमुखजन तथा गुरमुखजन में पारब्रह्म अभेद रूप है। दोनों आपस में एक रूप हैं, इस में कोई भ्रम-भेद नहीं है।

सहस सिआनप लइआ न जाईऐ॥ नानक ऐसा गुरु बडभागी पाईऐ॥ ३॥

सहस=हजारों, लाखों विवेक द्वारा नहीं लिया जाता। गुरु जी कहते हैं - ऐसा गुरु उत्तम भाग्यों से पाया जाता है।। ३।।

सफल दरसनु पेखत पुनीत॥ परसत चरन गति निरमल रीति॥

गुरु का सफल दर्शन देखने के कारण हृदय पुनीत=पवित्र होता है तथा गुरु के चरणों को छूते ही निर्मल रीति की गति=प्राप्ति होती है।

भेटत संगि राम गुन रवे॥ पारब्रहम की दरगह गवे॥

गुरु के साथ भेटत=मिलकर राम के गुणों को रवे=उच्चारण करे। तो पारब्रह्म की दरगह में (बहुत आदर मान के साथ) गवे=जाता है।

अथवा - पारब्रह्म की दरगह में इसका यश गवे=गाया जाता है।

सुनि करि बचन करन आघाने॥ मनि संतोखु आतम पतीआने॥

गुरु के शुभ वचन सुनकर, करन आघाने=कान तृप्त हो गए हैं। आत्म स्वरूप में पतीआने=विश्वास होने से हृदय को शान्ति मिल गई है।

पूरा गुरु अख्यओ जा का मंत्र॥ अंम्रित द्रिसटि पेखै होइ संत॥

वह पूर्ण गुरु है जिसका, मंत्र अख्यओ=उपदेश नाशहीन है।

अथवा - जिज्ञासु को अख्यओ=नाशहीन करने वाला है। जिस समय पूर्ण गुरु अमृत भरी दृष्टि से देखते हैं तो विकारी मनुष्य भी सन्त हो जाता है।

गुण बिअंत कीमति नही पाइ॥ नानक जिसु भावै तिसु लए मिलाइ॥ ४॥

गुरु साहिबान के गुण अत्यन्त हैं, कीमत नहीं पाई जाती। गुरु जी कथन करते हैं - जिसको भावै-चाहते हैं, उसको अपने साथ मिला लेते हैं।। ४।।

जिहबा एक उसतति अनेक॥ सति पुरख पूरन बिबेक॥

हमारी जिह्वा एक है, प्रभु की स्तुति अनेक प्रकार की है। वह अकाल पुरुष सत्य

****
स्वरूप है तथा पूर्ण बिबेक=ज्ञानवान है।

काहू बोल न पहुचत प्रानी॥ अगम अगोचर प्रभ निरबानी॥

काहू बोल=किसी वचन द्वारा यह प्राणी परमेश्वर के पास नहीं पहुंच सकता। वह प्रभु हृदय करके अगम, इन्द्रिय करके विषयहीन तथा निरबानी=बन्धन रहित है।

निराहार निरवैर सुखदाई॥ ता की कीमति किनै न पाई॥

निराहार=भोजन से रहित है अथवा-आहार से रहित है, बैर-भाव से रहित है, सुख देने वाला है। उस प्रभु की कीमत किसी ने भी नहीं पाई।

अनिक भगत बंदन नित करहि॥ चरन कमल हिरदै सिमरहि॥

अनेक ही भक्त उसे नित्य बंधन=नमस्कार करते हैं। तथा हृदय में उसके चरण-कमलों का सिमरन करते हैं।

सद बलिहारी सतिगुर अपने॥ नानक जिसु प्रसादि ऐसा प्रभु जपने॥ ५॥

गुरु जी कहते हैं - मैं अपने सतिगुरु से बलिहार जाता हूँ। जिस गुरु की कृपा से ऐसे गुणवान प्रभु का जाप करते हैं।। ५।।

इहु हरि रसु पावै जनु कोइ॥ अंम्रितु पीवै अमरु सो होइ॥

इस हरिनाम रस को कोई श्रेष्ठ व्यक्ति ही प्राप्त करता है। जो नाम अमृत को पीता है, वह अमर हो जाता है।

उसु पुरख का नाही कदे बिनास॥ जा कै मनि प्रगटे गुनतास॥

उस प्राणी का कभी भी नाश नहीं होता, जिसके हृदय में शुभ गुण कोष परमेश्वर प्रकट होता है।

आठ पहर हरि का नामु लेइ॥ सचु उपदेसु सेवकु कउ देइ॥

वह आठों पहर हरि का नाम लेता है, अर्थात्-सिमरन करता है। अपने सेवक को भी सत्य नाम सिमरन का उपदेश देता है।

मोह माइआ कै संगि न लेपु॥ मन महि राखै हरि हरि एकु॥

माया की संगति में रहकर भी मोह का लेप नहीं होता। क्योंकि वह अपने हृदय में एक हरि को ही स्मरण करता है।

अंधकार दीपक परगासे॥ नानक भरम मोह दुख तह ते नासे॥ ६॥

जैसे दीपक के रौशन होने से अन्धकार दूर हो जाता है। गुरु जी कहते हैं - वैसे ही नाम के प्रताप से उसके हृदय में से भ्रम, मोह तथा दुख नाश हो जाते हैं। अथवा - जिस अंतःकरण में अज्ञान रूपी अन्धकार का विरोधी ज्ञान रूपी दीपक रौशन हुआ है।

****

गुरु जी कहते हैं - उस अंतःकरण में से भ्रम, मोह तथा दुख भाग गए हैं।। ६।।

तपति माहि ठाढि वरताई॥ अनदु भइआ दुख नाठे भाई॥

राग द्वेष, अथवा - तृष्णा रूपी आग से तपते हृदय में ठाढि=ठण्ड, यानि=शान्ति आ गई है। हे भाई! अब मैं आनन्दित हो गया हूँ, सभी दुख भाग गए हैं।

प्रसंग-दुख निवृत्ति का

गाँव रुसतम का निवासी भाई गण्डा सिंघ अपनी पत्नी को लेकर सन्त बाबा कर्म सिंघ जी के पास आया तथा दोनों हाथ जोड़कर विनय करने लगे- हे गरीब नवाज़! परोपकारी, नाम - रसिये महापुरुष! आप सर्वज्ञाता हो, घर में अन्य किसी पदार्थ की कमी नहीं है, लेकिन सिर्फ एक पुत्र की ही कमी है। आप कृपा दृष्टि कर हमें यही भेंट प्रदान करें।

बाबा जी उसका प्रेम देखकर प्रसन्न हो कहने लगे - "गुरु नानक पातिशाह आपकी मनोकामना पूर्ण करेगा।" शब्द का पाठ करने की आज्ञा देकर कहा - "प्रातः उठकर स्नानादि कर आप दोनों सुच्चे मुँह इस शब्द का पाठ किया करो।"

सतिगुर साचै दीआ भेजि।। चिरु जीवनु उपजिआ संजोगि।।

(आसा महला ५, पृष्ठ ३९६)

तत्पश्चात् बाबा जी के चरणों को स्पर्श कर प्रसन्न चित्त घर को लौट आए। शब्द का पाठ करते हुए ग्यारह मास व्यतीत हुए तो एक सुन्दर बालक पैदा हुआ। माता-पिता तथा समस्त परिवार बहुत प्रसन्न हुआ। लेकिन उसी समय बच्चे की माता को प्रसूति-पवन हो गई। खुशी के स्थान पर चिन्ता की प्रवृत्ति हो गई, डॉक्टर बुलाए गए, वैद्यों को दिखाया गया, लेकिन लड़की की हालत देखकर सब जवाब दे गए तथा सभी उदास हो गए। लेकिन गण्डा सिंघ को महापुरुषों पर दृढ़ विश्वास था। वह उसी समय होती मरदान सन्तों के पास पहुंच गया। नमस्कार कर रुदन सहित विनय करने लगा - "महाराज! आप जी की कृपा से बालक तो पैदा हो गया है लेकिन उसकी माता बहुत बीमार है, चिकित्सा उपचार निष्फल हो गए हैं, अब आप ही कृपा करो।

सन्तों ने विनय सुनकर सहज-स्वभाव ही वचन किया कि बाज़ार से एक मूली ले जाओ, उसे छील कर चार फाड़ करके नमक तथा काली मिर्च लगाकर धूप में लटका दो, जब पानी निचुड़ जाए तो सारी मूली रोगी को खिला देना, गुरु भली करेंगे।

भाई गण्डा सिंघ सत्य वचन कहकर चल पड़ा तथा रास्ते में से मूली खरीद कर घर ले आया तथा सन्तों के कथनानुसार उसे विधिवत् लटका दिया। सब ने पूछा - सन्तों ने क्या वचन किया है? गण्डा सिंघ कहने लगा - सन्तों ने वचन किया है कि रोगी को मूली खिला दो, ठीक हो जाएगी। सभी मान गए लेकिन रोगी की माता न

****
मानी तथा रोने-पीटने लगी कि तुम जान-बूझ कर मेरी पुत्री को मारने लगे हो। मैं इसे मूली नहीं खिलाने दूंगी लेकिन उसकी किसी ने भी एक न सुनी, क्योंकि सभी को सन्तों पर अटूट विश्वास था। फिर वह कहने लगी कि मेरी पुत्री तो मूली खाकर मर जाएगी लेकिन मेरे सामने मत मारो, मुझे घर चली जाने दो। इस प्रकार वह घर को लौट गई।

इधर रोगी के घर वालों ने अरदास (प्रार्थना) करके बच्चे की माता को मूली खिला दी। जब वह सारी मूली खा चुकी तो उसे बहुत पसीना आया तथा वह बिल्कुल ठीक हो गई। उधर उसकी माता को भी सन्देश भेज दिया कि तेरी पुत्री मूली खा कर ठीक हो गई है। जब उसने आकर देखा तो वह बड़ी हैरान हुई तथा सन्तों की उपमा करने लगी तथा गुरु जी की पंक्ति भी याद आ गई कि -

तपति माहि ठाढि वरताई।। अनदु भइआ दुख नाठे भाई।।

जनम मरन के मिटे अंदेसे॥ साधू के पूरन उपदेसे॥

पूर्ण सन्तों के उपदेश द्वारा जन्म- मरण के सभी अंदेसे=शंके (भ्रम) मिटे=दूर हो गए।

भउ चूका निरभउ होइ बसे॥ सगल बिआधि मन ते खै नसे॥

यमों का भउ=भय (डर) उठ गया है, भय से रहित होकर स्वरूप के घर में बसे हैं। सभी बिआधि=रोग हृदय में से निकलकर खै=नाश हो गए हैं।

जिस का सा तिनि किरपा धारी॥ साधसंगि जपि नामु मुरारी॥

जिसका मैं सेवक था, उसने कृपा दृष्टि धारी=की है तथा उनकी सत्संगति में बैठकर मुरारी का नाम स्मरण किया है।

थिति पाई चूके भ्रम गवन॥ सुनि नानक हरि हरि जसु स्रवन॥ ७॥

गुरु ज़ी कहते हैं - स्रवन=कानों से (हरि हरि) वाहिगुरु का यश सुनकर थिति=स्थिति पाई है। पांच प्रकार का भ्रम तथा चौरासी लाख योनियों का गवन=गमन समाप्त हो गया है।। ७।।

निरगुनु आपि सरगुनु भी ओही॥ कला धारि जिनि सगली मोही॥

वह प्रभु स्वयं ही निर्गुण ब्रह्म तथा स्वयं ही सर्गुण स्वरूप हो रहा है। जिस ने अपनी कला=शक्ति धारण कर समस्त सृष्टि मोहित की हुई है।

अपने चरित प्रभि आपि बनाए॥ अपुनी कीमति आपे पाए॥

जिस प्रभु ने अपने चरित=कौतुक स्वयं ही बनाए हैं तथा अपनी कीमत को स्वयं ही पाता है।

हरि बिनु दूजा नाही कोइ॥ सरब निरंतरि एको सोइ॥

****

उस हरि के बिना अन्य कोई दूसरा नहीं है। वह एक मात्र ही सभी में निरंतरि=एक रस पूर्ण है।

ओति पोति रविआ रूप रंग॥ भए प्रगास साध कै संग॥

ओति पोति=ताना-पेटे की भांतिं सभी रूप-रंगों में रविआ=मिला हुआ है। साधुओं का संग प्राप्त होने से उस प्रभु का प्रगास=ज्ञान होता है।

[पृष्ठ २८८]

रचि रचना अपनी कल धारी॥ अनिक बार नानक बलिहारी॥ ८॥ १८॥

जिस ने सांसारिक रचना रच कर इस में अपनी कला, धारी=टिकाई हुई है। गुरु जी कहते हैं - मैं उस से अनेक बार बलिहार जाता हूँ।। ८।। १८।।

(उन्नीसवीं असटपदी)

सलोकु॥ साथि न चालै बिनु भजन बिखिआ सगली छारु॥

परलोक में प्राणी के साथ भजन सिमरन के बिना अन्य कुछ भी नहीं चलता, जिस बिखिआ=माया को यहीं पर छोड़ जाना है, वह माया सारी छारु=भस्म की भांति व्यर्थ है अर्थात्-नाशवान है।

हरि हरि नामु कमावना नानक इहु धनु सारु॥ १॥

गुरु जी कहते हैं- जो हरि हरि नाम की कमाई है, वहीं सारु=श्रेष्ठ धन परलोक में जीव के साथ जाने वाला है।। १।।

यथा- अगनि न दहै पवनु नही मगनै तसकरु नेरि न आवै।।
राम नाम धनु करि संचउनी सो धनु कतही न जावै।। १।।
हमरा धनु माधउ गोबिंदु धरणीधरु इहै सार धनु कहीऐ।।
जो सुखु प्रभ गोबिंद की सेवा सो सुखु राजि न लहीऐ।। १।। रहाउ।।

(गउड़ी कबीर जी, पृष्ठ ३३६)

असटपदी॥

संत जना मिलि करहु बीचारु॥ एकु सिमरि नाम आधारु॥

सन्त जनों से मिलकर एक नाम का विचार करो। एक नाम का सिमरन करो, एक नाम का ही आधारु=सहारा लो। अथवा=एक नाम के सिमरन का सहारा लो।

अवरि उपाव सभि मीत बिसारहु॥ चरन कमल रिद महि उरि धारहु॥

हे मित्रो! अन्य सभी उपाव=यत्न भुला दो। गुरु के चरन- कमलों को अपने हृदय में उरि धारहु = विशेष करके धारणा करो। अथवा - रिद उरि = हृदय बुद्धि में गुरु के

****

चरण-कमल धारण करो।*

यथा- **वडै भागि भेटे गुरदेवा।। कोटि पराध मिटे हरि सेवा।। २।।**
चरण कमल जा का मनु रापै।। सोग अगनि तिसु जन न बिआपै।।
(धनासरी महला ५, पृष्ठ ६८३)

तथा- **दीना नाथ अनाथ करुणा मै साजन मीत पिता महतरीआ।।**
चरन कवल हिरदै गहि नानक भै सागर संत पारि उतरीआ।। २।।
(पृष्ठ २०३)

अथवा-**मनु तनु निरमलु होइआ लागी साचु परीति।।**
चरण भजे पारब्रहम के सभि जप तप तिन ही कीति।। ३।।
(पृष्ठ ४८)

करन कारन सो प्रभु समरथु॥ द्रिड़ु करि गहहु नामु हरि वथु॥

वह प्रभु सब कारणों को करने के लिए समर्थ है। उस की हरि नाम रूपी वस्तु को स्थिर हृदय से गहहु=ग्रहण करो।

इहु धनु संचहु होवहु भगवंत॥ संत जना का निरमल मंत॥

इस हरि नाम धन को संचहु=इक्ट्ठा करो तो तुम भगवंत=भाग्यशाली हो जाओगे। अर्थात्-भगवंत=परमेश्वर का स्वरूप हो जाओगे। संत जनों का यही निर्मल मन्त्र है कि नाम-धन को एकत्र करो।

एक आस राखहु मन माहि॥ सरब रोग नानक मिटि जाहि॥ १ ॥

गुरु जी कहते हैं - अपने हृदय में एक प्रभु की आशा रखो, फिर तुम्हारे सभी रोग मिट जाएंगे।। १।। जैसे - मोहिना-सोहिना के हृदय में अन्त तक एक श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी महाराज के दर्शनों की आशा रही है।

---

*प्रसंग - राधिका का

राधिका हर समय भगवान् श्री कृष्ण जी के चरणों का ध्यान अपने हृदय में रखती थी। जिस समय भगवान् कृष्ण द्वारका से चलकर कुरुक्षेत्र आए तो राधिका भी अन्य गोपियों के साथ ब्रज से कुरुक्षेत्र आई। उस समय भगवान् कृष्ण ने रुकमणी के सामने राधिका की बहुत उपमा की लेकिन रुकमणी सहन न कर सकी। राधिका का मुँह साड़ने के लिए रुकमणी ने गर्म-गर्म दूध उसे जबरदस्ती पिलाया। उस दूध से राधिका का मुँह तो न सड़ा, बल्कि उसके हृदय में जो भगवान् श्री कृष्ण जी के चरण थे, उन पर गर्म दूध पड़ गया। जिस के कारण कृष्ण जी के चरणों पर छाले पड़ गए। जब कृष्ण जी रुकमणी के पास आए तो चरणों पर छाले पड़े हुए देखकर रुकमणी ने पूछा कि यह छाले कैसे पड़ गए? भगवान् कृष्ण ने कहा- तुम्हारे गर्म दूध के कारण पड़े हैं। रुकमणी ने पूछा - वह कैसे? भगवान् कृष्ण ने कहा- तुमने ईर्ष्या के कारण राधा को गर्म दूध पिलाया है तथा राधा के हृदय में मेरे चरणों का निवास था। गर्म दूध पड़ने से मेरे पाँव पर छाले पड़ गए।

****

प्रसंग – मोहिना-सोहिना का

एक धनवान परिवार से संबंधित सोहिना - मोहिना नामक दम्पति राए पुर के रहने वाले थे। एक वैरागी फकीर ने उन्हें ठाकुर पूजा तथा भक्ति करने की विधि बताई। निस्संदेह धन की कमी न थी लेकिन जब भक्ति का रंग चढ़ा तो उन्होंने प्रातः काल उठकर कुएँ पर जाना तथा स्नानादि की क्रिया प्रारम्भ कर दी। जल लाकर ठाकुरों को स्नान करवाते तथा धूप-दीप करने लगे। घर पर लाए फूलों की माला पिरोकर ठाकुरों के गले में डालते, तत्पश्चात् कीर्तन करते।

एक दिन दोनों ठाकुरों के स्नान के लिए जल ला रहे थे कि एक गुरमुख भागा आया, जिसे एक गहरी चोट लगी हुई थी तथा प्यास से व्याकुल था। वह इनके पाँव में आ गिरा तथा "पानी-पानी" कहने लगा। वह दोनों काँप उठे, लेकिन यह सोचकर कि ठाकुरों के लिए शुद्ध जल ले जाना है, आगे चलने लगे। वह फिर मछली की भांति तड़पने लगा तथा "पानी-पानी" चिल्लाने लगा। परन्तु वह लापरवाह होकर चल पड़े। उसकी अन्तिम बात जो उनके कानों में पड़ी वह यह थी-

"एक तो प्यार, फिर भी दो घूंट पानी से तरसाना!..........दर्शन नहीं देने लगा।" यह सुनकर भी दोनों चलते गए। घर जाकर नित्य प्रति विधिवत् सारी क्रिया की लेकिन आज हृदय निस्त्साहित ही रहा। अन्त घबरा कर उठे तथा पानी लेकर चल पड़े, लेकिन वहां जाकर देखा कि वह मृत पड़ा है। इतने में एक ओर से पाँच सात व्यक्ति आ गए तथा बोले-"यही है।" पूछने पर पता चला कि यह शूरवीर महान् भजनीक साधु, आनन्दपुर वाले गुरु जी का सेवक था। आज एक निर्धन समूह पर पड़े डाके की आवाज़ सुनकर उनकी सहायता के लिए पहुंचा तथा डाकुओं को भगा दिया, उन्हें बचा लिया लेकिन स्वयं घायल होकर भाग उठा तथा यहां आकर इस अवस्था में मिला। अब उसके कथन किए शब्द कानों में गूंजने लगे "दर्शन नहीं देने लगा" तथा अपने आप को फटकारने लगे लेकिन वह समय गुजर गया।

यथा - **नानक समिओ रमि गइओ अब किउ रोवत अंध।।** (पृष्ठ १४२९)

राएपुर की रानी सतिगुरु की श्रद्धालु थी। उसे जब मालूम हुआ तो उसने बहुत विलाप किया। हाय मेरे दुर्भाग्य! मेरी अभिलाषा तथा प्रत्याशा के स्वामी! हे सृष्टि पालक सतिगुरु! मैं उस सिक्ख की कुछ सेवा भी न कर सकी। तुम्हारे प्रेमी को शीश देने के लिए मेरा राज्य ही भाग्य में आया, फिर भी हम से उसकी कोई सेवा न हो सकी। वह अभी विलाप कर रही थी कि उसकी एक सत्संगी वृद्धा आ गई तथा रानी को धीरज देने लगी कि रोने से कुछ भी नहीं होने वाला, तुम चिन्ता मत करो, इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। सो तुम अपने भाग्य को धन्य मानकर इसके पार्थिव शरीर का संसकार कर दो तांकि जिस शरीर में नामी परमात्मा का वास था वह नष्ट न हो। यह सुनकर

रानी ने बड़े सत्कार से उसका संसकार किया तथा उसकी याद में उसी स्थान पर एक मठ बनवाया।

शीघ्र ही वह भाग्यशाली दिन आ गया कि दयालु सतिगुरु ने राएपुर में अपने चरण डाले। रानी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई तथा उसने श्रद्धा भाव से बहुत सेवा की, अन्त मुक्ति को प्राप्त किया। असंख्यों को जीव दान मिला। मोहिना तथा सोहिना ने सुना तो वे भी दर्शनों के लिए व्याकुल हुए। वह भी दर्शनों के लिए पहुंच गए लेकिन जितनी बार भी दर्शन पाने के लिए आगे हुए उतनी बार ही असफल रहे, कानों में वही शब्द गूंजने लगे - "दर्शन नहीं देने लगा।"

जब विनोदशील सतिगुरु जी चलने लगे तो मोहिना-सोहिना उनके मार्ग में लगभग मील दूर जाकर खड़े हो गए। श्रद्धालु तो सभी उधर से ही गुजरे लेकिन कौतुकी पातिशाह ने अपने घोड़े का मार्ग खेतों की ओर कर लिया तथा उधर से निकल गए। अब दर्शनों की अभिलाषा तीव्र हो गई तथा दृढ़ निश्चय हो गया कि उस सिक्ख के वचन अटल हैं। दर्शन हमारे भाग्य में ही नहीं हैं। हर पल उनका सोच में ही व्यतीत होने लगा। अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया कि सब सम्पत्ति बेचकर दान पुण्य किया जाए तथा आवश्यक स्थानों पर कुओं का निर्माण करवाया जाए तथा धर्मशालाएं बनवाई जाएं। स्वयं निर्धनता का भेष धारण कर उस विनोदशील प्रियतम के द्वार पर चले जाएं। सो इसी प्रकार अमीरी त्याग कर गरीबी धारण कर आनन्दपुर की ओर रवाना हुए।

आनन्दपुर पहुंचने पर भी सतिगुरु के दर्शन न हुए। हृदय में प्रेम की चिंगारी बेचैन करती जा रही थी। अब उन्होंने सोचा कि यदि सतिगुरु के बाग में मजदूरी के लिए जगह मिल जाए तो सेवा ही की जाए तथा फुरस्त में पिटारी-टोकरी आदि बनाकर अपना गुजारा कर लेंगे। इसी उम्मीद पर वह बाग के बड़े माली केसरा सिंघ के पास गए तथा निवेदन किया। उसने पाँच-सात दिन कार्य करवा कर देखा तो उसे पसन्द आ गया तथा उन्हें नौकर रख लिया। बाग के पिछली ओर रहने के लिए एक झोंपड़ी दे दी। प्रेमियों की सेवा ने बाग का नक्शा ही बदल दिया। एक दिन दशमेश जी सैर करते हुए एक सुन्दर क्यारी को देखकर बहुत प्रसन्न हुए तथा केसरा सिंघ को शाबाश दी। उसने हाथ जोड़कर कहा - स्वामी! आपकी कृपा की तो अभिलाषा हमेशा है लेकिन यह कार्य छोटे माली का है, जो कुछ दिनों से बड़े प्रेम-भाव से सेवा कर रहा है। रोटी कमाकर खाता है, आपके चरणों का अनन्य प्रेमी है। सतिगुरु सुनकर खामोश हो गए तथा कहते हुए चले गए "दर्शन नहीं देने लगा।" माली ने यह बात सोहिना से की तथा सोहिना ने घर जाकर बताई तो समझे "अंतर्यामी ठाकुर यही है" अच्छा! इतने ही आभारी हैं, दर्शन नहीं तो सेवा ही सही।

माता जीतो जी ने जब इनकी व्यथा सुनी तो मोहिना को मिलने के लिए उनकी कुटिया में आ गए। मोहिना देखकर चकित हो उठी तथा शीघ्रता से आसन बिछा कर

****

बैठने की विनय की, माता जी बैठ गईं। मोहिना उनके चरणों पर शीश रखकर बड़े प्रेम-भाव से बोली - माता जी! इतनी सर्दी तथा वर्षा में आपने कष्ट क्यों किया, दासी को आज्ञा की होती तो आपकी सेवा में उपस्थित हो जाती।

माता जीतो जी बोलीं - मेरी तो सभी वाटिकाएं हैं, कोई भी सेविका नहीं है, लेकिन तुम तो मेरी पुत्री हो। जो उपमा मैं सुनकर तेरे पास आई हूँ तुम वह पूरी करो। मोहिना ने सारंगी उठाई तथा मीठे स्वरों में शब्द पढ़ना प्रारम्भ किया -

हरि बिनु किउ रहीऐ दुखु बिआपै।।
जिहवा सादु न फीकी रस बिनु बिनु प्रभ कालु संतापै।। १।। रहाउ।।
जब लगु दरसु न परसै प्रीतम तब लगु भूख पिआसी।।

(सारंग महला १, पृष्ठ ११९७)

माता जी आत्मविभोर होकर सुन रहे थे तथा मोहिना गायन कर रही थी कि संध्या हो गई। माता जी अब चलने लगे लेकिन मोहिना ने जाने न दिया तथा बड़े प्रेम-भाव से अखरोट, बादाम, मेवे आदि जल-पान उनके आगे रखा। माता जी श्रद्धा के रंग को इन्कार न कर सके तथा "वाहिगुरु तुम धन्य हो" कहा तथा उसे ग्रहण किया। अब माता जी जाने लगे तो मोहिना के नेत्र भर आए तथा नीरस होकर गिर पड़ी। माता जी ने उसे प्यार किया तथा अपनी गोद में सिर रखकर कहने लगी - मोहिना! तुम्हें अब चिन्ता क्यों? मैंने जो तेरी सभी चिन्ताएं ले ली हैं। सभी कार्य ठीक हो जाएंगे, तुम प्रतिदिन नित्यनेम भी किया करो। सत्य वचन कहकर मोहिना उठी तथा माता जी लौट गए।

माता जी का नियम था कि वह प्रातः काल उठकर स्नानादि करके नित्यनेम करते थे। जब महाराज जी दीवान में जाते तो माता जी उनके चरण स्पर्श करके तथा गले में फूलमाला पहना कर भेजते थे। फिर सूर्य उदय तक इसी रूप को अपने नयनों में बसा कर मग्न बैठे रहते थे। केसरा सिंघ प्रतिदिन माला के लिए फूल माता जी तक पहुंचाता था। एक दिन केसरा सिंघ भूल गया। माता जी ने प्रातः ही मोहिना की ओर आदमी भेजा तथा कहा - "एक माला के लिए फूल भेज दो, आज फूल किसी ओर से भी नहीं आए कहीं हमारा नियम टूट न जाए।" वे दोनों बहुत प्रसन्न हुए तथा प्रेम सहित फूल तोड़ते हुए गाते हैं -

नेक नसीब तुम्हारे मित्रो! जिन्हें जा पिया गले पड़ना।
वाह उगना तथा सुफल लगना, खिल-खिल हंस हंस रहना।
वाह टूटना, वाह सूई चढ़ना, वाह गूंदे रल बहना।
वाह हंसी वाह रोन तुम्हारा, जिन्हें जा पिया गले पड़ना।

इस प्रकार प्रेमयुक्त श्रद्धालुओं ने सुन्दर-सुन्दर गेंदे के फूल माता जी के लिए एक पिटारी में डालकर भेज दिये। माता जी ने नियमानुसार माला पिरो कर पातिशाह के

****
गले में डाल दी। महाराज ने कहा - जीत जी! इस में से प्रेम की खुशबु आ रही है, लेकिन क्या करूँ। एक साईं का जीवित प्राणी इनके लिए यह वाक्य कह रहा है, "दर्शन नहीं देने लगा।" गुरु मारे तो सिक्ख बख्श लेता है, सिक्ख मारे तो गुरु नहीं बख्श सकते।

माता जी ने आग्रह किया - आप कर्ता हो, आपकी कीर्त्ति पतित पावन है लेकिन मुझे प्रसन्नता व बल प्रदान करो जो मैं इस वीर तथा बहन को आपके द्वार योग्य बना सकूं।

कलगीधर पातिशाह बोले - जीत जी! वाहिगुरु तुझे शक्ति दे जो इस दम्पति का संकट निवृत्त कर सको तथा यह कहते हुए दीवान की ओर रवाना हुए। अब माता जीतो जी इन्हें प्रभु कार में जोड़ने में लग गए। सत्संग की वार्तालाप करनी, अब दोनों की वृत्ति छितराव में कम जाती है। दर्शनों की अभिलाषा पहले से अधिक है, निराशा तथा त्रुटि नहीं है, आभार तथा उम्मीद है कि सत्संग वाले कभी बिछुड़ते ही नहीं। अब माता जी ने कहा - प्रीतम जी की वर्षगांठ वाले दिन हम मोतिये की माला पहनाएं, इसलिए तुम मोतिये के फूल तैयार करो।

रात-दिन एक करके सेवा तथा प्रेम से उन्होंने असामयिक फूल तैयार किए। जब वह भाग्यशाली दिन आया तथा फूल भी खिलखिलाते हुए तैयार हो गए - मोतिया, गेंदा, पीला गेंदा, गुलदाउदी इत्यादि। एक फकीर उधर बगीचे में आ गया तथा असामयिक फूलों को देखकर मोहिना के द्वार पर आ खड़ा हुआ, कहने लगा- "भीक्षा! भीक्षा! मालिन! फकीर आए हैं भीक्षा दे दो। मोहिना अन्दर से मुट्ठी आटे की ले आई, दरवाज़ा खोला तथा फकीर को देने लगी तो फकीर ने अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए कहा - मैं यह नहीं लूंगा, मुझे तो वह फूल चाहिएं।" इतने में सोहिना भी आ गया और सुनकर भयभीत हो गया तथा कहने लगा - फकीर साईं! यह स्वामी की अमानत है, इस पर मेरा कोई अधिकार नहीं है, जो मैं आपको दे सकूं, कृप्या आप बड़े माली से पूछ लें।

फकीर अब श्राप देता हुआ चल पड़ा - "तेरी जड़ न मेख।" मोहिना तथा सोहिना ने शुकर किया कि इस बार ठाकुर के पुत्र ने अशीश दी है। हम कब जड़ में मेख चाहते हैं उखड़ ही जाए तो अच्छा है। अन्दर जाकर कीर्तन में लग गए तथा परमात्मा का धन्यवाद करने लगे। रात को निश्चिन्त होकर सो गए। प्रातः उठकर नियमानुसार नित्यनेम करके जब बाहर आए तो क्या देखा कि शीशे टूटे हुए हैं, सभी फूल टाहनियों से टूटे हुए हैं, बाग विरान हुआ पड़ा था।

मोहिना तथा सोहिना सब देखकर हैरान हुए तथा सोचने लगे कि माता जी को अब क्या कहेंगे? जिन्होंने जीवन-मार्ग दिखाया उनके लिए फूलों की सम्भाल भी न कर सके। हाय! नींद हत्यारन तूने यह क्या किया? शरीर पसीना - पसीना हो गया तथा कलेजा धड़कने लगा, इतने में वह बेहोश होकर बाग में ही गिर पड़े।

कलगीधर पातिशाह का दीवान लगा हुआ है, चारों ओर श्रद्धालु जुड़े बैठे कीर्तन का आनन्द ले रहे हैं। जब भोग पड़ा तो उपहार भेंट होने लगे। उस फकीर ने सुन्दर

पिटारी असामयिक फूलों से भरी हुई भेंट की तो गुरु जी बोले - फकीर साईं! फूलों में से खुशबु नहीं, गम की आवाज़ आ रही है, बेज़ुबान फरियाद करते हैं..... क्या फरियाद करते हो भाई? यह कहकर सतिगुरु ने नेत्र बन्द किए, जब खोले तो उन में से दो मोती निकले तथा आवाज़ दी -

फकीर साईं! तूने फूल नहीं तोड़े, दो दिल तोड़े हैं। "मेरे लाल, मेरे लाल" कहते हुए बड़ाई तथा मर्यादा को छोड़ दौड़ गए। वह देखो! दुखी दिलों के दुख दूर करने, बिछुड़ों को मिलाने वाले सतिगुरु, प्रेम के अवतार, कृपा के सागर प्रीतम जी भागे जा रहे हैं। माता जीतो जी भी सुनते ही वहां पहुंचे तथा मां से बढ़कर मोह देने वाले सतिगुरु जी भी वहां पहुंच गए। "मेरे लाल, मेरे लाल!" कहते हुए दोनों शीश अपनी गोद में लिए, सिर पर हाथ फेर रहे हैं, प्यार से आंखें पोंछते हुए कहते हैं-होश करो प्यारो, गुरु के पुत्रो! देखो तो सही सृष्टि का कर्ता स्वामी आया है। माता जी ने हाथ पकड़े हुए हैं तथा कहते हैं - बच्चो आंखें खोलो, "दर्शन देने लगा है" सतिगुरु के पवित्र हाथों ने उनके मुँह में अमृत डाला, छींटे दिए, आंखें खोलो बच्चो - निहाल! निहाल!! निहाल!!!

अब धीरे-धीरे आंखें खोलीं, लेकिन दर्शनों का तेज झेल न सके तथा बेवस ही पड़े रहे। शनैः शनैः वे सचेत अवस्था में आए तब कलगीधर पातिशाह ने अपने आत्मिक बल का सहारा देकर उठाया, ज्यों ज्यों पिता ने बच्चों की पीठ पर हाथ फेरा, वे चेतन हुए तो उठकर बैठ गए। माता जी ने कहा - बच्चो! सफल, सफल, यात्रा सफल; प्रीत के अभिलाषी नेत्र तृप्त न हुए, पुनः पुनः चरण चूमते हैं तथा अन्दर हृदय में एक कँपकँपी उत्पन्न हुई। अब मोहिना व सोहिना को ज्ञान आया कि सतिगुरु जी ज़मीन पर बैठे हैं, असभ्यता हो रही है। वे हाथ जोड़कर बोले-"ठाकुर जी! बहुत अपमान हुआ है, कृपा करो।" अब माता जीतो जी तथा महाराज उन दोनों को साथ लेकर अन्दर उनकी झोंपड़ी में चले गए। सारंगी व वीणा उठाकर दोनों बैठ गए तथा गायन किया -

जो तेरी सरणाई हरि जीउ तिन तू राखन जोगु।।
तुधु जेवडु मै अवरु न सूझै ना को होआ न होगु।। १।।

(प्रभाती महला ३, पृष्ठ १३३३)

वह फूलों की पिटारी माता जी ने उन्हें सौंप दी। सो दोनों ने निश्चित समय पर माला पिरो कर माता जी को अर्पण की। माता जी ने स्वयं तथा उनके हाथों से भी महाराज को मालाएं भरे दीवान में पहनाईं। कृपा निधान पातिशाह कहते हैं - हे लाल! मैं इतना प्रसन्न हूँ कि जो चाहो मांगो, मैं दूंगा। सोहिना ने निवेदन किया - सच्चे पातिशाह! यदि दयाल हुए हो तो उस फकीर को छोड़ दो, हम दोषपूर्ण जीव हैं, हमारे अवगुणों के लिए एक आपकी दया तथा एक आपका प्रदान किया हुआ सिमरन ही औषधि हैं। यह प्रेम युक्त वचन सुनकर सतिगुरु ने उस फकीर को भी मुक्त कर दिया। भरे दीवान में मोहिना तथा सोहिना को सम्मानित किया। इनकी शुद्ध आत्मा ने शेष जीवन सेवा

****
तथा सिमरन में वहीं रहकर व्यतीत किया।

जिसु धन कउ चारि कुंट उठि धावहि ॥ सो धनु हरि सेवा ते पावहि ॥

हे प्राणी! जिस धन को लेने के लिए तुम चारों कुंट=दिशाओं की ओर भाग रहा है। वह धन हरि की सेवा से प्राप्त कर लेंगा।

जिसु सुख कउ नित बाछहि मीत ॥ सो सुखु साधू संगि परीति ॥

हे मित्र! जिस सुख को तुम नित्य बाछहि=चाहता है। वह सुख साधुओं से प्रीत करने से प्राप्त होता है।

जिसु सोभा कउ करहि भली करनी ॥ सा सोभा भजु हरि की सरनी ॥

जिस शोभा के लिए तुम भली करनी=अच्छी कर्तव्यता करता हैं वह शोभा हरि की शरण पड़ने से मिलती है।

अथवा - उस शोभा के लिए तुम भाग कर हरि की शरण पड़।

अनिक उपावी रोगु न जाइ ॥ रोगु मिटै हरि अवखधु लाइ ॥

अनेक उपाय करने से जो रोग नहीं जाता। वह रोग हरि नाम रूपी अवखधु=औषधि के लगाने से, अर्थात्-खाने से मिट जाता है।

सरब निधान महि हरि नामु निधानु ॥ जपि नानक दरगहि परवानु ॥ २ ॥

सभी निधान=खज़ानों में से हरि नाम ही बड़ा निधानु=खज़ाना है। गुरु जी कथन करते हैं - जिस ने नाम सिमरन किया है, वह परलोक (दरगह) में प्रमाणिक होता है।। २।।

मनु परबोधहु हरि कै नाइ ॥ दह दिसि धावत आवै ठाइ ॥

हरि के नाम द्वारा अपने हृदय को परबोधहु=समझाओ, फिर दस दिशाओं की धावत=दौड़ को त्याग अपने ठाइ=टिकाने आ जाएगा।।

ता कउ बिघनु न लागै कोइ ॥ जा कै रिदै बसै हरि सोइ ॥

उस व्यक्ति को कोई विघ्न नहीं लगता। जिसके हृदय में वह हरि वास करता है।

कलि ताती ठांढा हरि नाउ ॥ सिमरि सिमरि सदा सुख पाउ ॥

"कलजुगि रथु अगनि का" होने के कारण कलियुग की क्रिया अग्नि की भांति गर्म है तथा हरि का नाम शीतल है।

यथा - **आतस दुनीआ खुनक नामु खुदाइआ।। २।।**

(मलार वार, सलोक २७, पृष्ठ १२१९)

हरि के नाम को स्मरण कर नित्य सुख प्राप्त करो।

भउ बिनसै पूरन होइ आस ॥ भगति भाइ आतम परगास ॥

****

नाम जपने से यमों का भय नाश हो जाता है, आशा पूर्ण होती है। भाइ+भगति=प्रेम-भक्ति करने से आतम=अपने स्वरूप का परगास=ज्ञान होता है।

तितु घरि जाइ बसै अबिनासी॥ कहु नानक काटी जम फासी॥ ३॥

गुरु जी कथन करते हैं-फिर यह जीव उस अविनाशी घर में जाकर बसता है, जहां जाने पर इसके गले में से यमों की फांसी काटी जाती है।। ३।।

ततु बीचारु कहै जनु साचा॥ जनमि मरै सो काचो काचा॥

जो व्यक्ति ततु बीचारु=यथार्थ विचार को कहता है वह सत्य है तथा जो कांच का विचार रखता है, वह अदक्ष व्यक्ति जन्म-मृत्यु में ही रहता है।

अथवा - जो जन्मता - मरता है वह कच्चे से भी कच्चा है।

यथा - **जो मरि जंमे सु कचु निकचु**।। १।। *(आसा दी वार, पृष्ठ ४६३)*

आवा गवनु मिटै प्रभ सेव॥ आपु तिआगि सरनि गुरदेव॥

प्रभु की सेवा करने से आवा गवनु=आना-जाना (जन्म-मरण) मिट जाता है। आत्म-परित्याग, अर्थात्-अभिमान को त्याग कर गुरुदेव की शरण ग्रहण कर।

इउ रतन जनम का होइ उधारु॥ हरि हरि सिमरि प्रान आधारु॥

इस प्रकार करने से रत्नों की भांति अमूल्य मानव जन्म का उद्धार होता है। तो फिर हे भाई! प्राणों के आश्रय हरि हरि के नाम का सिमरन कर।

अनिक उपाव न छूटनहारे॥ सिंम्रिति सासत बेद बीचारे॥

नाम के बिना अन्य अनेकों उपाव=प्रयत्नों द्वारा यह जीव छूटने वाला नहीं हो सकता। चाहे २७ समृतियें, ६ शास्त्र, ४ वेदों को भी विचार ले।

हरि की भगति करहु मनु लाइ॥ मनि बंछत नानक फल पाइ॥ ४॥

गुरु जी कहते हैं - हृदय को विलीन कर हरि की भक्ति करो। तभी मनि बंछत=मनवांछित फल प्राप्त कर सकोगे।। ४।।

संगि न चालसि तेरै धना॥ तूं किआ लपटावहि मूरख मना॥

प्रत्यक्ष धन ने तेरे साथ नहीं चलना। हे मूर्ख मन! तुम इस धन के साथ क्या लंपट हो रहा है।

सुत मीत कुटंब अरु बनिता॥ इन ते कहहु तुम कवन सनाथा॥

सुत=पुत्र, मित्र, कुटंब=परिवार तथा बनिता=स्त्री (पत्नी) इन में लगकर तुम स्वयं ही बताओ कौन सनाथा=कल्याण हुआ है? अथवा - कहहु तुम=तुम स्वयं ही कहो तो, इनमें से तेरी सनाथा=रक्षा करने वाला कौन है?

यथा - **पुत्र कलत्र लछमी माइआ।। इनते कहु कवनै सुखु पाइआ।। ३।।**

(धनासरी कबीर जी, पृष्ठ ६९२)

राज रंग माइआ बिसथार॥ इन ते कहहु कवन छुटकार॥

राज्य का जो रंग=आनन्द है तथा जो माया का बिसथार=विस्तार है। बताओ तो, इन में से कौन छुड़ाने योग्य है? अथवा-बताओ तो! इन में से किस का छुटकारा हुआ है? किन्तु किसी का भी छुटकारा नहीं हुआ।

असु हसती रथ असवारी॥ झूठा डंफु झूठु पासारी॥

असु=घोड़े, हसती=हाथी, रथ तथा असवारी=पालकी यह झूठा डंफु=दिखावा है तथा झूठा ही पसार है।

अथवा - इस झूठे डंफु=दिखावे करके यह जीव झूठे पाखण्डों वाला हो रहा है।

जिनि दीए तिसु बुझै न बिगाना॥ नामु बिसारि नानक पछुताना॥ ५॥

जिस परमात्मा ने यह सभी पदार्थ दिये हैं, यह अनजान उसे जानता नहीं है। गुरु जी कथन करते हैं - नाम को भुला कर यह जीव अन्त में पछताता है।। ५।।

गुर की मति तूं लेहि इआने॥ भगति बिना बहु डूबे सिआने॥

हे अज्ञानी पुरुष! तुम गुरु की मति=शिक्षा ग्रहण कर। क्योंकि भक्ति के बिना महान् विद्वान व्यक्ति भी भवसागर में डूब गए हैं।

हरि की भगति करहु मन मीत॥ निरमल होइ तुम्हारो चीत॥

हे मन के प्यारे मित्रो! हरि की भक्ति करो, तो तुम्हारा हृदय निरमल=शुद्ध (पवित्र) हो जाएगा।

चरन कमल राखहु मन माहि॥ जनम जनम के किलबिख जाहि॥

गुरु जी के चरण-चमलों के ध्यान को हृदय में बसाओ।

तो तुम्हारे जन्म-जन्म के किलबिख=पाप मिट जाएंगे।

यथा - **हरि के चरण रिदे महि बसे।। जनम जनम के किलविख नसे।।**

(गउड़ी मः ५, पृष्ठ १९७)

तथा - **हरि के चरण हिरदै उरि धारि।। भव सागरु चड़ि उतरहि पारि।। २।।**

(गउड़ी मः ५, पृष्ठ १९६)

तथा - **अंम्रिता प्रिअ बचन तुहारे।। अति सुंदर मनमोहन पिआरे सभ हू मधि निरारे।। १।। रहाउ।। राजु न चाहउ मुकति न चाहउ मनि प्रीति चरन कमलारे।। ब्रहम महेस सिध मुनि इंद्रा मोहि ठाकुर ही दरसारे।। १।। दीनु दुआरै आइओ ठाकुर सरनि परिओ संत हारे।। कहु नानक प्रभ मिले मनोहर मनु सीतल बिगसारे।। २।।**

(देवगंधारी मः ५, पृष्ठ ५३४)

[पृष्ठ २८९]

आपि जपहु अवरा नामु जपावहु॥ सुनत कहत रहत गति पावहु॥

स्वयं नाम सिमरन करो, अन्य से भी नाम सिमरन करवाओ। नाम को सुनते हुए, मुँह से कहते हुए तथा इस क्रिया में रहते हुए गति=मुक्ति प्राप्त कर लोगे।

सार भूत सति हरि को नाउ॥ सहजि सुभाइ नानक गुन गाउ॥ ६॥

गुरु जी कथन करते हैं - सभी वेदों - शास्त्रों का सारांश भूत=सिद्धान्त रूप जिस हरि का सत्य नाम है। उस हरि के गुण सहजि सुभाइ=सहज स्वभाव, अर्थात्-शान्ति स्वभाव से गायन करो।। ६।।

गुन गावत तेरी उतरसि मैलु॥ बिनसि जाइ हउमै बिखु फैलु॥

हरि के गुण गाने से तेरी पाप रूपी मैल उतर जाएगी तथा अहंकार रूपी विष का फैलाव भी नाश हो जाएगा।

होहि अचिंतु बसै सुख नालि॥ सासि ग्रासि हरि नामु समालि॥

तुम अचिंत=निश्चिन्त होकर सुख से बसोगे। इसलिए श्वास लेते, ग्रासि=भोजन खाते हरि नाम को सम्भालो।

छाडि सिआनप सगली मना॥ साधसंगि पावहि सचु धना॥

हे मन! तुम अपने हृदय के सभी विवेक त्याग सत्संगति कर क्योंकि सत्संगति में से ही सत्य नाम धन को प्राप्त करेंगा।

हरि पूंजी संचि करहु बिउहारु॥ ईहा सुखु दरगह जैकारु॥

श्रद्धा रूपी पूंजी संचि=एकत्र करके हरि के नाम का व्यवहार कर, तभी ईहा=इस जगत् में सुख प्राप्त होगा तथा परलोक (दरगह) में तेरी जय - जयकार होगी।

सरब निरंतरि एको देखु॥ कहु नानक जा कै मसतकि लेखु॥ ७॥

सभी में एक परमात्मा को निरंतरि=एक रस परिपूर्ण देख। गुरु जी कथन करते हैं - जिसके माथे के लेख अच्छे लिखे हुए हैं वही प्राणी परमात्मा को पूर्ण रूप देखता है।। ७।।

एको जपि एको सालाहि॥ एकु सिमरि एको मन आहि॥

एक भगवंत का जाप कर, एक की ही सराहना कर। एक को स्मरण कर, एक की ही हृदय में आहि=चाहत कर।

एकस के गुन गाउ अनंत॥ मनि तनि जापि एक भगवंत॥

एक अनन्त रूप प्रभु का ही गुणगान कर तथा तन मन में एक प्रभु का ही जाप कर।

एको एकु एकु हरि आपि॥ पूरन पूरि रहिओ प्रभु बिआपि॥

पहले भी एक हरि स्वयं था, अब भी एक हरि स्वयं है तथा भविष्य में भी एक हरि स्वयं ही होगा। वह पूर्ण प्रभु समस्त बिआपि=सृष्टि में पूर्ण हो रहा है।

अनिक बिसथार एक ते भए॥ एकु अराधि पराछत गए॥

उस एक से ही अनेकों प्रसार हुए हैं। एक के सिमरन से गुरमुखों के सभी पराछत=पाप निवृत्त हो गए हैं।

मन तन अंतरि एकु प्रभु राता॥ गुरप्रसादि नानक इकु जाता॥ ८॥ १९॥

एक प्रभु ही हृदय के अन्दर राता=मिला हुआ है। गुरु जी कथन करते हैं-गुरु की कृपा से गुरमुखों ने उस एक को जाता=जान लिया है।

अथवा - गुरु जी कथन करते हैं-गुरु की कृपा द्वारा एक प्रभु के अन्दर मन, तन तदाकार हुआ तो एक प्रभु को जाता=जाना।। ८।। १९।।

(बीसवीं असटपदी)

सलोकु॥ फिरत फिरत प्रभ आइआ परिआ तउ सरनाइ॥

हे प्रभु! मैं बहुत ही भटकता हुआ आया हूँ, आप जी की महिमा सुनकर शरण में पड़ा हूँ।

यथा - **फिरत फिरत तुम्हरै दुआरि आइआ भै भंजन हरि राइआ।।**

(गूजरी मः ५, पृष्ठ ४९७)

तथा - **फिरत फिरत नानक दासु आइओ संतन ही सरनाइ।।**

(कानड़ा मः ५, पृष्ठ १३०२)

नानक की प्रभ बेनती अपनी भगती लाइ॥ १॥

गुरु जी कथन करते हैं - जिज्ञासु कहता है, हे प्रभु! सेवक की यही विनय है कि मुझे अपनी भक्ति में लगा लो।। १।।

असटपदी॥

जाचक जनु जाचै प्रभ दानु॥ करि किरपा देवहु हरि नामु॥

हे प्रभु! मैं सेवक, जाचक=भिखारी होकर यही दान जाचै=मांगता हूँ। आप कृपा दृष्टि करके हरि नाम दान दें।

साध जना की मागउ धूरि॥ पारब्रहम मेरी सरधा पूरि॥

मैं सन्त जनों की चरण धूल मांगता हूँ। हे पारब्रह्म! मेरी यह श्रद्धा (इच्छा) पूर्ण कर दो।

****

यथा- अंतरजामी पुरख बिधाते सरधा मन की पूरे।।
नानक दासु इहै सुखु मागै मोकउ करि संतन की धूरे।। ४।। ५।।

(पृष्ठ १३)

सदा सदा प्रभ के गुन गावउ॥ सासि सासि प्रभ तुमहि धिआवउ॥

हे प्रभु! मैं प्रायः ही आप जी के गुण गाता रहूँ। हे प्रभु! श्वास अन्दर जाते हुए तथा श्वास बाहर आते हुए आप जी को स्मरण करूँ।

प्रसंग - श्वास-श्वास सिमरन की क्रिया

अर्जुन भगवान् श्री कृष्ण जी का अनन्य भक्त था, लेकिन उसे अभिमान भी था कि जितना प्रिय भगवान् श्री कृष्ण जी को मैं हूँ, मुझसे अधिक प्रिय अन्य कौन हो सकता है? एक दिन वह इसी विचार से कृष्ण के पास आया, वहां आकर उसने देखा कि भगवान् श्री कृष्ण जी समाधि में लीन बैठे हैं। उसने कहा- हे मुरली मनोहर! हम तो आपका ध्यान करते हैं, तथा आप किसका ध्यान करते हो? आप स्वयं ईश्वर अवतार हो। यह सुन भगवान् कृष्ण बोले-हे अर्जुन। हम उन भक्तों को स्मरण करते हैं जो श्वास-श्वास हमारा नाम सिमरन करते हैं। यह बात सुनकर अर्जुन ने कहा - मुझ से ज्यादा भी कोई भक्त है? भगवान् कृष्ण जी ने कहा- हां! यह सुन अर्जुन ने कहा-दिखाओ तो ऐसा कौन भक्त है?

इस बात की पुष्टि कराने के लिए भगवान् कृष्ण अर्जुन को साथ लेकर एक जंगल में गए। वहां जाकर देखा कि एक शेर सिमरन ही कर रहा है, न कुछ खाता है, न ही पीता है। तालाब के किनारे खड़ा है लेकिन पानी पी नहीं रहा, सिर्फ इसलिए कि यदि पानी पीऊंगा तो सिमरन छूट जाएगा। कृष्ण जी ने कहा- यह मेरा प्रिय भक्त है। इस पर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुआ तथा उसे परम भक्त समझा। फिर कृष्ण जी ने कहा- अब तो इसके अन्तिम श्वास हैं। तुम ऐसे करो, इसके कानों में "हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे" आदि नाम का उच्चारण कर तांकि यह पानी पी ले तथा इसकी तृष्णा पानी में न रहे। जब अर्जुन ने शेर के कानों में नाम का उच्चारण किया तो उसके नेत्र खुले तथा कृष्ण जी को सामने खड़ा देखकर उनके निकट आने लगा। कृष्ण जी बोले-पहले पानी पी ले फिर मेरे पास आना।

कृष्ण जी की आज्ञा मानकर शेर ने पानी पी लिया तथा फिर नाम सिमरन करता हुआ उनके निकट आकर चरण स्पर्श किए, इतने में ही उसके श्वास पूर्ण हो गए तथा देवते विमान लेकर आ गए, वह उस विमान में बैठ कर बैकुण्ठ धाम को चला गया।

हे वत्स! इसलिए तुम भी श्वास-श्वास प्रभु का नाम सिमरन किया करो।

चरन कमल सिउ लागै प्रीति॥ भगति करउ प्रभ की नित नीति॥

आप जी के चरणों से मेरी प्रीति लगी रहे, तथा हे प्रभु! प्रतिदिन आप जी की भक्ति करता रहूँ।

एक ओट एको आधारु॥ नानकु मागै नामु प्रभ सारु॥ १॥

हृदय में सिर्फ आप जी का सहारा हो, तन को भी एक आप जी का आधारु=आसरा हो। गुरु जी कथन करते हैं-हे प्रभु! मैं आप जी के सारु=सिद्धान्त स्वरूप श्रेष्ठ नाम को मांगता हूँ।। १।।

प्रभ की द्रिसटि महा सुखु होइ॥ हरि रसु पावै बिरला कोइ॥

प्रभु की कृपा दुष्टि से ही महा सुखु=महान् सुख की प्राप्ति होती है। लेकिन हरि नाम को कोई श्रेष्ठ व्यक्ति ही प्राप्त करता है।

जिन चाखिआ से जन त्रिपताने॥ पूरन पुरख नही डोलाने॥

जिन्होंने हरि नाम रस को पीया है वह व्यक्ति तृप्त हुए हैं। वह पूर्ण पुरुष होने के कारण फिर कभी डोलते नहीं हैं।

सुभर भरे प्रेम रस रंगि॥ उपजै चाउ साध कै संगि॥

वह प्रेम रस के रंगि=आनन्द में सुभर भरे=भरपूर रहते हैं। उन सन्तों के संग में से अन्य जिज्ञासुओं को हरि नाम रस की प्रांप्ति की चाह उत्पन्न होती है।

परे सरनि आन सभ तिआगि॥ अंतरि प्रगास अनदिनु लिव लागि॥

आन=अन्य सभी को त्याग कर जो जिज्ञासु पूर्ण पुरुषों की शरण में आ गए हैं। अन+दिनु=रात दिन वाहिगुरु में वृत्ति लगाने से उनके हृदय में प्रगास=ज्ञान हुआ है।

बडभागी जपिआ प्रभु सोइ॥ नानक नामि रते सुखु होइ॥ २॥

भाग्यवान् प्राणियों ने उस प्रभु का सिमरन किया है, गुरु जी कथन करते हैं-जो प्रतिष्ठित प्रभु के नाम में मग्न रहते हैं उन्हें आत्म-सुख प्राप्त होता है।। २।।

सेवक की मनसा पूरी भई॥ सतिगुर ते निरमल मति लई॥

उस सेवक की मनसा=मनोकामना (इच्छा) पूर्ण हुई है। तिस सेवक ने सतिगुरु से निर्मल, मति=शिक्षा ली है।

जन कउ प्रभु होइओ दइआलु॥ सेवकु कीनो सदा निहालु॥

जिस समय सेवकजन पर प्रभु दयाल हुआ तो सेवक को हमेशा के लिए निहालु=दुखों से क्षीण कर दिया।

बंधन काटि मुकति जनु भइआ॥ जनम मरन दूखु भ्रमु गइआ॥

वह सेवकजन मोह के, अर्थात्-संसार के, बन्धनों को काटकर मुक्त हो गया है। क्योंकि जन्म-मरण के दुख देने वाला भ्रम मिट गया है।

अथवा - जिस पर वह मुक्त रूप हुआ है इसलिए उसके जन्म-मरण का दुख तथा भ्रम निवृत हो गया है।

****

इछ पुनी सरधा सभ पूरी॥ रवि रहिआ सद संगि हजूरी॥

इछ पुनी=परमेश्वर ने सारी कामना पूर्ण की है। अथवा-इच्छा थी मुक्ति प्राप्ति की, वह पूर्ण हो गई है तथा कामता थी प्रभु मिलाप की, वह भी पूर्ण हो गई है। सदा अंग-संग व्यापक प्रभु को रवि रहिआ=प्राप्त हो रहा निश्चय किया।

जिस का सा तिनि लीआ मिलाइ॥ नानक भगती नामि समाइ॥ ३॥

गुरु जी कहते हैं-जिसका सेवक हूँ उस प्रभु ने अपने साथ मिला लिया है। भक्ति करके ही यह जीव नाम रूप परमात्मा में समाइ=अभेद होता है।। ३।।

सो किउ बिसरै जि घाल न भानै॥ सो किउ बिसरै जि कीआ जानै॥

जो प्रभु किसी की घालि=कमाई (मेहनत) को यूं ही नहीं गंवाता, वह कैसे बिसरै=भूल सकता है। जो प्रभु किसी के किये हुए कर्म को जानता है, वह कैसे भूल सकता है।

[पृष्ठ २९०]

सो किउ बिसरै जिनि सभु किछु दीआ॥ सो किउ बिसरै जि जीवन जीआ॥

जिस प्रभु ने जीव को सब कुछ दिया है, वह कैसे भूल सकता है। जो जीवों का जीवन रूप है, वह कैसे भूल सकता है।

सो किउ बिसरै जि अगनि महि राखै॥ गुरप्रसादि को बिरला लाखै॥

जो प्रभु माँ के गर्भ की अग्नि में रक्षा करता है वह कैसे भूल सकता है। लेकिन गुरु की प्रसादि=कृपा से कोई उत्तम व्यक्ति ही उस प्रभु को लाखै=जानता है।

सो किउ बिसरै जि बिखु ते काढै॥ जनम जनम का टूटा गाढै॥

जो विषय-विकारों के विष में से निकालता है तथा जन्म-जन्म का टूटा=बिछुड़ा हुआ जो प्राणी है उसे अपने साथ-गाढै=बाँध लेता है, अर्थात्-मिला लेता है। वह प्रभु कैसे बिसरै=भूल सकता है।

गुरि पूरै ततु इहै बुझाइआ॥ प्रभु अपना नानक जन धिआइआ॥ ४॥

पूर्ण गुरु ने यह ततु=सिद्धान्त समझा दिया है। गुरु जी कथन करते हैं-उस सेवकजन ने अपने प्रभु का ध्यान किया है।। ४।।

साजन संत करहु इहु कामु॥ आन तिआगि जपहु हरि नामु॥

श्रेष्ठ सन्तों से मिलकर यह काम करो। अथवा - हे श्रेष्ठ सन्तो! आप यह काम करो। अन्य सभी को त्याग कर एक हरि का सिमरन करो।

सिमरि सिमरि सिमरि सुख पावहु॥ आपि जपहु अवरह नामु जपावहु॥

हृदय से सिमरन करो, वाणी द्वारा सिमरन करो, तन द्वारा सिमरन करो, अर्थात्-उसका

सिमरन जो सिमरन योग्य है, उसका सिमरन कर सुख प्राप्त करो। स्वयं नाम जपो तथा अन्य से भी जपाओ।

भगति भाइ तरीऐ संसारु॥ बिनु भगती तनु होसी छारु॥

प्रभु की प्रेम-भक्ति द्वारा ही भव-सागर से पार होता है। भक्ति करने के अलावा यह शरीर भस्म समान निष्फल हो जाता है।

सरब कलिआण सूख निधि नामु॥ बूडत जात पाए बिस्रामु॥

सर्व मुक्ति, समस्त सुख तथा नवनिधि का दाता एक नाम ही है। जिस नाम के आसरे होकर डूबता हुआ प्राणी बिस्रामु=स्थिति पा लेता है।

सगल दूख का होवत नासु॥ नानक नामु जपहु गुनतासु॥ ५॥

गुरु जी कथन करते हैं-शुभगुणों के खज़ाने प्रभु का नाम जपो तो तुम्हारे सभी दुखों का नाश हो जाएगा।। ५।।।

उपजी प्रीति प्रेम रसु चाउ॥ मन तन अंतरि इही सुआउ॥

चाउ=उत्साहपूर्वक प्रभु के प्रेम की जो प्रीति उत्पन्न हुई है। अथवा - गुरु के चरणों की प्रीति तथा प्रभु के प्रेम रस का जो उत्साह उत्पन्न हुआ है यही मन- तन के अन्दर बड़ा भारी सुआउ=लाभ प्राप्त हुआ है।

नेत्रहु पेखि दरसु सुखु होइ॥ मनु बिगसै साध चरन धोइ॥

दर्शन करके नेत्रहु=नयनों को सुख प्राप्त हुआ है। तथा सन्तों के चरण धोकर हृदय बिगसै=खिल गया है।

भगत जना कै मनि तनि रंगु॥ बिरला कोऊ पावै संगु॥

भक्तजनों के मन तन में प्रभु का रंगु=आनन्द है। लेकिन सन्तों का सत्संग कोई विशेष प्राणी ही पाता है।

एक बसतु दीजै करि मइआ॥ गुरप्रसादि नामु जपि लइआ॥

हे गुरुदेव! मइआ=कृपा दृष्टि करके मुझे भी एक नाम रूप वस्तु प्रदान करो। क्योंकि जिन पर हे गुरुदेव! आप जी की कृपा हुई है उन्होंने नाम का चिन्तन किया है।

ता की उपमा कही न जाइ॥ नानक रहिआ सरब समाइ॥ ६॥

गुरु जी कहते हैं - उस प्रभु की उपमा कही नहीं जाती। जो प्रभु सम्पूर्ण सृष्टि में समा रहा है।। ६।।

प्रभ बखसंद दीन दइआल॥ भगति वछल सदा किरपाल॥

वह प्रभु अवगुणों को प्रदान करने वाला है, गरीबों पर दयालु है। भक्तों का प्रिय है तथा सदा कृपालु है।

अनाथ नाथ गोबिंद गुपाल॥ सरब घटा करत प्रतिपाल॥

वह गोबिन्द गोपाल अनाथों का नाथ है। अथवा-अनाथों का नाथ=स्वामी है। गो+बिंद वेदों द्वारा जानने योग्य है। गु+पाल=पृथ्वी, अथवा - इन्द्रियों का पालक है तथा सर्व देहों की पालना करता है।

आदि पुरख कारण करतार॥ भगत जना के प्रान अधार॥

वह करतार सब पुरुषों का आदि है तथा सभी का कारण स्वरूप है। भक्तों के प्राणों का अधार=सहारा है।

जो जो जपै सु होइ पुनीत॥ भगति भाइ लावै मन हीत॥

जो जो जीव उसके नामों का मनन करता है तथा उसके भाइ+भगति=प्रेम-भक्ति में हृदय की हीत=प्रीत को लगाता है। सु होइ पुनीत=वह प्राणी पवित्र होता है।

हम निरगुनीआर नीच अजान॥ नानक तुमरी सरनि पुरख भगवान॥ ७॥

गुरु जी कथन करते हैं-इस प्रकार विनय करो:- हम शुभ गुणहीन हैं, नीच हैं तथा अजान=अज्ञात हैं। हे भगवान् पुरुष! हम आप जी की शरण आए हैं, हमारी रक्षा करो।।७।।

सरब बैकुंठ मुकति मोख पाए॥ एक निमख हरि के गुन गाए॥

जिसने एक क्षण भर भी हरी के गुण गाए हैं, उसने बैकुण्ठ धाम की श्लोक, समीप, स्वरूप, सायुज आदि सर्व मुक्ति को पा लिया है।

अथवा - जिसने दृढ़ता में आकर पल भर अर्थात्-अल्पकाल भी हरि के गुण गाए हैं, उसने सभी बन्धनों से मोख पाए=मोक्ष पाकर बैकुंठ=अकुण्ठत मुक्ति स्वरूप परमात्मा को पा लिया है।

अनिक राज भोग बडिआई॥ हरि के नाम की कथा मनि भाई॥

उसे अनेक प्रदेशों का राज्य-भोग तथा सम्मानता की प्राप्ति हुई है। जिस के हृदय को हरि नाम की कथा भाई=अच्छी लगी है।

अथवा - गुरमुखों के हृदय में जो हरि नाम की कथा अच्छी लगी है, उनकी नज़र में अनेकों राज्य भी यही हैं तथा सम्मानता भी यही है।

बहु भोजन कापर संगीत॥ रसना जपती हरि हरि नीत॥

बहु पदार्थ - खाना, सुन्दर वस्त्र पहनना, संगीत शास्त्रानुसार गीतों का गाना, उन गुरमुखों का यही है। जो उनकी रसना=जिह्वा प्रतिदिन हरि हरि नाम का जाप करती है।

भली सु करनी सोभा धनवंत॥ हिरदै बसे पूरन गुर मंत॥

उस की उत्तम व श्रेष्ठ क्रिया है, उस की ही सभी ओर शोभा है तथा वही धनवंत=धन वाला धनवान् है। जिसके हृदय में पूर्ण गुरु का मन्त्र वास करता है।

****

साधसंगि प्रभ देहु निवास ॥ सरब सूख नानक परगास ॥ ८ ॥ २० ॥

गुरु जी कथन करते हैं-इस प्रकार विनय करोः- हे प्रभु! मुझे अपनी सत्संगति में निवास दो। जिस सत्संगति में सर्व सुखों का प्रकाश है।। ८।। २०।।

प्राक्कथन

एक दिन एक सिक्ख ने श्री गुरु अर्जुन देव जी के पास आकर पूछा कि महा-प्रलय कब होती है तथा उस समय कौन कौन रहता है? फिर सृष्टि की उत्पत्ति कब होती है?

गुरु उत्तर - प्रलय चार प्रकार की कथन की है।

१. नित्य प्रलय, २. निमित्त प्रलय, ३. अवान्त्र प्रलय, ४. महा-प्रलय।

१. जो सो जाता है, वह नित्य प्रलय है। २. जितनी आयु इस मनुष्य को मिली हुई है, जब वह पूरी हो जाती है तथा इस शरीर का त्याग करता है, अर्थात् मृत्यु प्राप्त करता है, इसे निमित्त प्रलय कहते हैं। ३. ब्रह्म पुरी, विष्णु पुरी, शिव पुरी तथा इन्द्र पुरी इत्यादि श्रेष्ठ पुरियों का आभाव न होना तथा नीचे नीचे भू-लोक निवासी सभी जीवों का आभाव हो जाना, सभी ओर जल ही जल हो जाना, इसे अवान्त्र प्रलप कहते हैं।

एक समय अवान्त्र प्रलय हुई तो सभी ओर जल ही जल हो गया। एक मारकंडा ऋषि जल पर तैरता हुआ जा रहा था। जब वह तैरता हुआ प्रयागराज पहुंचा तो वहां पर एक अक्षय वट है, उस पर **"बाला प्रीतम"** बैठा इस कौतुक को देख रहा था। उस अक्षय वट के साथ वह मारकंडा भी जा लगा तथा उस छोटे बालक को वृक्ष पर बैठा देखकर ऋषि ने पूछा- तुम कौन हो? तथा यहां बैठे क्या देख रहे हो? तो उस बालक ने कहा - मैं ईश्वर हूँ, अब **बाला प्रीतम** रूप धारण कर इस अवान्त्र प्रलय को देख रहा हूँ। जब यह जल सूख जाएगा मैं फिर सृष्टि की रचना करूंगा। सो इस प्रकार यह अवान्त्र प्रलय कथन की है।

४. जब जीवों के किए हुए कर्म फल देने के लिए शान्त हो जाते हैं तो सभी जीव पृथ्वी पर लय हो जाते हैं। पृथ्वी जल में लय हो जाती है, जल अग्नि में, अग्नि हवा में, हवा आकाश में, आकाश माया में तथा माया सूक्ष्म रूप होकर अन्त में ब्रह्म लीन हो जाती है। इस प्रकार महा-प्रलय होती है। महा-प्रलय में तीनों लोकों तथा ब्रह्म पुरी, शिव पुरी आदि सभी पुरियों का आभाव हो जाता है।

यथा- **दिन की बैठ खसम की बरकस इह बेला कत आई।।**
छूटे कूंडे भीगै पुरीआ चलिओ जुलाहो रीसाई।। ३।।
छोछी नली तंतु नही निकसै नतर रही उरझाई।।

(पृष्ठ ३३५)

महा - प्रलय में सभी का आभाव हो जाता है। सो अब गुरु जी प्रथम छः पउड़ियों में महा-प्रलय के प्रकार कथन करते हैं तथा सातवीं आठवीं पउड़ी में सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार कथन करते हैं।

****

(इक्कीसवीं असटपदी)

सलोकु ॥ सरगुन निरगुन निरंकार सुंन समाधी आपि ॥

निर+गुन=रजस्, ताम्र, सत्व रूप तीनों गुणों से रहित जो निराकार ब्रह्म है। वह स्वयं ही महा-प्रलय में अकामुक समाधि स्थित था।

फिर उसने स्वयं सर्गुण रूप होकर-

आपन कीआ नानका आपे ही फिरि जापि ॥ १ ॥

स्वयं से सृष्टि की रचना की। गुरु जी कथन करते हैं - फिर स्वयं ही जीवों को खाने-पीने के लिए देना जापि=जानता है तथा स्वयं ही इस को जापि=जब्त करना, अर्थात्-लय करना जानता है।। १।।

असटपदी ॥

जब अकारु इहु कछु न द्रिसटेता ॥ पाप पुंन तब कह ते होता ॥

जब महा-प्रलय के समय इस सृष्टि का आकार कुछ भी नज़र नहीं आता था। तब पाप व पुण्य किस से होते थे?

जब धारी आपन सुंन समाधि ॥ तब बैर बिरोध किसु संगि कमाति ॥

जब परमात्मा ने अपने में स्फुरणहीन समाधि धारण की हुई थी। उस समय अनादि काल का वैर तथा ऊपरी विरोध कोई किसके साथ करता था?

जब इस का बरनु चिहनु न जापत ॥
तब हरख सोग कहु किसहि बिआपत ॥

जब महा-प्रलय के समय इस जीव का चारों वरणों में से कोई वरण तथा चिन्ह नहीं जाना जाता था तो उस समय बताओ तो! हर्ष तथा शोक किस को होता था?

जब आपन आप आपि पारब्रहम ॥ तब मोह कहा किसु होवत भरम ॥

जिस समय स्वयं पारब्रह्म अपने आप में स्थित था। तब मोह कहाँ था तथा भ्रम किस को होता था?

[पृष्ठ २९१]

आपन खेलु आपि वरतीजा ॥ नानक करनैहारु न दूजा ॥ १ ॥

यह महा - प्रलय का खेल उस प्रभु का अपना है। उसने स्वयं ही किया है। गुरु जी कथन करते हैं- महा-प्रलय के करने वाला प्रभु के बिना अन्य कोई दूसरा नहीं है।।१।।

जब होवत प्रभ केवल धनी ॥ तब बंध मुकति कहु किस कउ गनी ॥

जब महा - प्रलय के समय सभी का धनी=स्वामी प्रभु एक स्वयं होता था। तब कहो तो! बन्धन किस को तथा मुक्ति प्राप्त होनी किस को गनी=गणन किया जाता था?

जब एकहि हरि अगम अपार॥ तब नरक सुरग कहु कउन अउतार॥

जब एक ही अगम आपार हरि था। उस समय कहु=बताओ तो! नरकों व स्वर्गों में कौन अउतार=उतरता था?

जब निरगुन प्रभ सहज सुभाइ॥ तब सिव सकति कहहु कितु ठाइ॥

जब निर्गुण ब्रह्म शान्ति स्वभाव अवस्था में स्थित था। उस समय कहो तो! शिव तथा सकति=पार्वती किस स्थान पर थे?

अथवा - उस समय शिव सकति=ईश्वर तथा माया किस स्थान पर थे?

जब आपहि आपि अपनी जोति धरै॥ तब कवन निडरु कवन कत डरै॥

जब स्वयं में अपनी ज्योति को धारण किये बैठा था। उस समय कौन निडर था? तथा कौन किस से डरता था?

आपन चलित आपि करनैहार॥ नानक ठाकुर अगम अपार॥ २ ॥

महा-प्रलय स्वरूप अपने चरित्र को वह प्रभु स्वयं ही करने वाला है। गुरु जी कथन करते हैं-वह ठाकुर हृदय वाणी करके अगम है तथा अपार=अनन्त गुणों वाला है।। २।।

अबिनासी सुख आपन आसन॥ तह जनम मरन कहु कहा बिनासन॥

जिस समय सुख स्वरूप अविनाशी परमात्मा अपनी महिमा में स्वयं आसन=स्थित था। उस समय बताओ तो! जन्म-मरण में कोई कहां बिनासन=नाश होता था?

अथवा - उस समय बिन+आसन=आशा के बिना कौन था तथा आशा के सहित कौन था?

अर्थात् - आसन=भोजन के बिना कौन था तथा भोजन खाने वाला कौन था?

जब पूरन करता प्रभु सोइ॥ तब जम की त्रास कहहु किसु होइ॥

जिस समय वह प्रभु कर्त्ता अपनी महिमा में स्वयं पूर्ण था। उस समय बताओ तो! यमों का त्रास=भय किस को होता था?

जब अबिगत अगोचर प्रभ एका॥ तब चित्र गुपत किसु पूछत लेखा॥

जिस समय प्रभु गतिहीन, अगोचर एक स्वयं ही था। तब चित्रगुप्त किस से लेखा=हिसाब पूछते थे?

जब नाथ निरंजन अगोचर अगाधे॥ तब कउन छुटे कउन बंधन बाधे।

जिस समय निरंजन=माया से रहित, अगोचर=इन्द्रियों से रहित, अज्ञेय स्वामी स्वयं था। उस समय छूटे हुए कौन थे तथा बन्धनों में बन्धे हुए कौन थे?

****

आपन आप आप ही अचरजा ॥ नानक आपन रूप आप ही उपरजा ॥ ३ ॥

जिस समय अपने अद्‌भुत स्वरूप में अपने आप स्थित था। गुरु जी कथन करते हैं-उस समय अपने स्वरूप को स्वयं ही उपरजा=प्रकट कर रहा था।

अर्थात्-अपने स्वरूप से आप ही महा-प्रलय को उत्पन्न कर रहा था।। ३।।

जह निरमल पुरखु पुरख पति होता ॥ तह बिनु मैलु कहहु किआ धोता ॥

जिस समय सभी पुरुषों का पति निर्मल पुरुष परमात्मा स्वयं स्थित था। उस समय कहो तो! मैल के बिना कौन था तथा मैल के धोने वाला कौन था?

जह निरंजन निरंकार निरबान ॥ तह कउन कउ मान कउन अभिमान ॥

जिस समय निरंजन, निरंकार स्वयं निरबान=बन्धन रहित था। तब मान किस को था तथा अभिमान=अपमान किस को था?

जह सरूप केवल जगदीस ॥ तह छल छिद्र लगत कहु कीस ॥

जिस समय केवल=शुद्ध स्वरूप सृष्टि का स्वामी प्रभु एक स्वयं ही था। उस समय बताओ तो! छल व छिद्र=दोष कीस=किस को लगते थे?

जह जोति सरूपी जोति संगि समावै ॥ तह किसहि भूख कवनु त्रिपतावै ॥

जिस समय ज्योति स्वरूप परमात्मा अपनी ज्योति के साथ समा रहा था। उस समय किस को भूख लगती थी तथा कौन तृप्त होता था?

करन करावन करनैहारु ॥ नानक करते का नाहि सुमारु ॥ ४ ॥

वह करनैहारु=कर्त्ता परमात्मा स्वयं ही सब कुछ करने व करवाने वाला है। गुरु जी कथन करते हैं- उस रचियता का सुमारु=अन्त नहीं पाया जा सकता।। ४।।

जब अपनी सोभा आपन संगि बनाई ॥ तब कवन माइ बाप मित्र सुत भाई ॥

जब उस प्रभु ने अपनी शोभा अपने साथ बनाई हुई थी। तब शोभा को बढ़ाने वाला मां, बाप, मित्र, पुत्र तथा भाई कौन था? यथार्थ - कोई भी नहीं था।

जह सरब कला आपहि परबीन ॥ तह बेद कतेब कहा कोऊ चीन ॥

जिस समय कला समर्थ परमेश्वर अपनी प्रवीनता में स्वयं स्थित था। उस समय वेद-शास्त्रों को कब कोई चीन=जानता (पहचानता) था।

जब आपन आपु आपि उरि धारै ॥ तउ सगन अपसगन कहा बीचारै ॥

जिस समय वह परमेश्वर अपने आप को अपने हृदय में धारण कर स्थित था। तब शगुन व अपशगुन, अर्थात्-भले-बुरे का कोई कहां विचार करता था।

जह आपन ऊच आपन आपि नेरा ॥ तह कउन ठाकुरु कउनु कहीऐ चेरा ॥

****

जिस समय ऊँचा परमेश्वर अपने आप को नेरा=निकट स्वयं स्थित था। उस समय स्वामी कौन तथा चेरा=शिष्य कौन था, अर्थात् - सेवक कौन था?

बिसमन बिसम रहे बिसमाद ॥ नानक अपनी गति जानहु आपि ॥ ५ ॥

इस अद्‌भुत कौतुक को देखकर बिसमाद=विचित्र वस्तु भी विचित्रता को प्राप्त हो गई। अथवा - हे आश्चर्य स्वरूप प्रभु! इस महा-प्रलय रूप विचित्र कौतुक को देखकर स्वयं ही चकित हो रहे थे। गुरु जी कथन करते हैं—अपनी गति को आप स्वयं ही जानते हो।। ५।।

जह अछल अछेद अभेद समाइआ ॥ ऊहा किसहि बिआपत माइआ ॥

जिस समय छलहीन, नाशहीन प्रभु अभेदता में स्वयं समाया हुआ था। उस समय ऊहा=वहां माया किस को व्याप रही थी?

आपस कउ आपहि आदेसु ॥ तिहु गुण का नाही परवेसु ॥

जिस समय अपने स्वरूप को आप ही नमस्कार करता था। तब सत्य, रजस्, ताम्र रूप तीनों गुणों का उस में कोई प्रवेश नहीं था।

जह एकहि एक एक भगवंता ॥ तह कउनु अचिंतु किसु लागै चिंता ॥

जिस समय एक मात्र भगवान् एक ही स्वरूप था। उस समय अचिंतु=निश्चिन्त कौन था तथा किस को चिंता लग रही थी?

जह आपन आपु आपि पतीआरा ॥ तह कउनु कथै कउनु सुननैहारा ॥

जिस समय अपने आप पर स्वयं ही पतीआरा=विश्वास करने वाला था। उस समय कथन करने वाला कौन था तथा श्रवण करने वाला कौन था?

बहु बेअंत ऊच ते ऊचा ॥ नानक आपस कउ आपहि पहूचा ॥ ६ ॥

वह परमेश्वर बहु बेअंत=अति अनन्त है तथा सर्वोच्य है। गुरु जी कथन करते हैं - अपने आप को स्वयं ही पहूचा=पहुंचता है। उस समान अन्य कोई नहीं।। ६।।

(अगली दो पउड़ियों में सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन करते हैं।)

जह आपि रचिओ परपंचु अकारु ॥ तिहु गुण महि कीनो बिसथारु ॥

जब जीवों के कर्म फल देने को उदय हुए, उस समय परमेश्वर ने स्वयं ही सृष्टि के आकार की रचना की। इस का समस्त विस्तार सत्व, रजस्, ताम्र रूप तीनों गुणों में किया है।

[पृष्ठ २९२]

पापु पुंनु तह भई कहावत ॥ कोऊ नरक कोऊ सुरग बंछावत ॥

****

उस समय पाप-पुण्य की कहानी शुरु हो गई कि अशुभ कर्मों के करने से पापों की उत्पत्ति होती है तथा शुभ कर्मों के करने से पुण्यों की उत्पत्ति होती है। उन पाप-पुण्यों के आधार पर ही कोई नरकों को तथा कोई स्वर्गों को बंछावत=चाहने लग पड़े।

आल जाल माइआ जंजाल॥ हउमै मोह भरम भै भार॥

आल=घर के झमेले तथा माया के झंझट पड़ने शुरु हो गए हैं। अभिमान, ममता, मोह, भ्रम, भय तथा पापों के भार बढ़ने प्रारम्भ हो गए।।

दूख सूख मान अपमान॥ अनिक प्रकार कीओ बख्यान॥

किसी को दुख, किसी को सुख, किसी को सम्मान, किसी को अपमान=निरादर प्राप्त होना शुरु हो गया है। जिसका बख्यान=व्याख्यान (कथन) विभिन्न प्रकार से किया जाता है।

आपन खेलु आपि करि देखै॥ खेलु संकोचै तउ नानक एकै॥ ७॥

यह सृष्टि समस्त उसका अपना खेल है, इस खेल को स्वयं ही करता है, स्वयं ही देखता है। गुरु जी कथन करते हैं - जिस समय अपने खेल को समाप्त करता है अर्थात् - अपनी खेल को संचित कर लेता है तो फिर एक का एक हो जाता है।। ७।।

यथा - **अनेक हैं।। फिरि एक हैं।।** *(जापु साहिब)*

तथा - **आपहि एक आपहि अनेक।।** *(गउड़ी सुखमनी, पृष्ठ २७९)*

जह अबिगतु भगतु तह आपि॥ जह पसरै पासारु संत परतापि॥

इस स्थान अबिगतु=कठिन प्राप्ति वाला परमेश्वर स्वयं उपस्थित है। वहीं पर उसके भक्त हैं। जहां पर उसके भक्त बैठे हैं, वहीं पर वह स्वयं परमेश्वर आ जाता है।

जह=जहां भी जितना बिस्तार विस्तृत किया है, वहां सन्तों के प्रताप को बढ़ाने के लिए प्रसार किया है।

दुहू पाख का आपहि धनी॥ उन की सोभा उनहू बनी॥

लोक - परलोक, अथवा-भक्त-अभक्त रूप दोनों पक्षों का वह स्वयं ही धनी=स्वामी है। उस परमेश्वर की शोभा उसी को ही शोभनीय है।

आपहि कउतक करै अनद चोज॥ आपहि रस भोगन निरजोग॥

आनन्ददायक जिसके कौतुक हैं वह परमेश्वर स्वयं ही सृष्टि चमत्कार को करता है। अथवा - वह परमेश्वर स्वयं ही श्रेष्ठ चोज=विचित्र कौतुकों को करता है। स्वयं ही रसों का भोग करता है, स्वयं ही इन रसों से निरजोग=निरबन्ध, अथवा-असंग है।

जिसु भावै तिसु आपन नाइ लावै॥ जिसु भावै तिसु खेल खिलावै॥

जिसको भावै=चाहता है, उसको वह परमेश्वर अपने नाम सिमरन में लगा लेता है। जिसको भावै=चाहता है, उसे संसार के खेल दिखाता है।

बेसुमार अथाह अगनत अतोलै ॥ जिउ बुलावहु तिउ नानक दास बोलै ॥ ८ ॥ २१ ॥

गुरु जी कथन करते हैं- हे प्रभु! आप बेसुमार=अनन्त हो, अथाह हो, अनगिनत हो, तोलहीन हो। जैसे आप बुलाते हो वैसे सेवक बोलता है।। ८।। २१।।

(बाईसवीं असटपदी)

सलोकु ॥ जीअ जंत के ठाकुरा आपे वरतणहार ॥

हे सूक्ष्म अस्थूल जीव-जन्तुओं के स्वामी परमात्मा! तुम स्वयं ही सभी में समाने वाला हैं।

नानक एको पसरिआ दूजा कह द्रिसटार ॥ १ ॥

गुरु जी कथन करते हैं- जब तुम एक ही सभी ओर व्याप्त हो तो दूसरा कोई कहां नज़र आता है।। १।।

असटपदी ॥

आपि कथै आपि सुननैहारु ॥ आपहि एकु आपि बिसथारु ॥

हे प्रभु! तुम स्वयं ही कथन करने वाले हो, स्वयं ही श्रवण करने वाले हो। एक रूप भी तुम स्वयं हो, बिसथारु=अनेक रूप भी तुम स्वयं ही हो।

जा तिसु भावै ता स्रिसटि उपाए ॥ आपनै भाणै लए समाए ॥

जिस समय तिसु=आप जी को भाता है, तभी तुम सृष्टि को उत्पन्न करते हो। फिर अपनी इच्छा में ही सृष्टि को समाए=संचित कर लेते हो।

तुम ते भिंन नही किछु होइ ॥ आपन सूति सभु जगतु परोइ ॥

हे प्रभु! आप जी की आज्ञा के भिंन=बिना कुछ भी नहीं होता। आपने अपने आज्ञा रूपी सूत्र, अथवा - सत्ता रूपी सूत्र में सर्व सृष्टि को पिरो रखा है।

जा कउ प्रभ जीउ आपि बुझाए ॥ सचु नामु सोई जनु पाए ॥

हे प्रभु जी! जिसे आप समझा देते हो। वही व्यक्ति सत्य-नाम को पा लेता है।

सो समदरसी तत का बेता ॥ नानक सगल स्रिसटि का जेता ॥ १ ॥

वही समदृष्टि है, वही वास्तविकता को, बेता=जानने वाला है। गुरु जी कथन करते हैं-वही समस्त सृष्टि के जेता=जीतने वाला है।। १।।

जीअ जंत्र सभ ता कै हाथ ॥ दीन दइआल अनाथ को नाथु ॥

सभी सूक्ष्म अस्थूल जीव-जन्तु उस प्रभु के हाथ में हैं। वह अनाथों का नाथ दीन दइआल=गरीबों पर दयालु होता है।

****

जिसु राखै तिसु कोइ न मारै॥

जिसे वह प्रभु हाथ देकर रखता है। उसे कोई नहीं मार सकता।

प्रसंग - हिरणी का

एक गर्भवती हिरणी जंगल में अपनी सुख की नींद में सो रही थी। जब शिकारी ने उसे दूर से देखा कि हिरणी सो रही है तो उसने उसके सभी ओर मार्ग अवरुद्ध कर दिए। एक ओर जाल बिछा दिया, दूसरी ओर आग लगा दी, तीसरी ओर शिकारी कुत्ते खड़े कर दिए तथा चौथी ओर धनुष खींच कर स्वयं खड़ा हो गया। आग के जलने की आवाज़ सुनकर तथा आग का सेंक लगने से जब हिरणी उठकर भागी तो देखा कि आगे जाल बिछा हुआ है। दूसरी ओर कुत्ता खडा है, तीसरी ओर शिकारी बाण खींचे खड़ा है। सभी रास्ते बन्द देखकर बहुत निराश हुई तथा प्रभु को याद कर इस प्रकार विनय करने लगी -

संकट कटो मुरारी हमरा संकट कटो मुरारी।।
संकट महि इक संकट बनिओ अरज़ करे म्रिग नारी।।
एक ओर ले बावर गाडी, एक ओर अग्ग जारी।।
एक ओर सुआन कीओ ठांढो, एक ओर फंधकारी।।

उसी समय भगवान् ने अपने संकल्प मात्र द्वारा उसके चारों मार्ग खोल दिए-

उलटत पवन लै बावर जारी, सुआन गहिओ ससकारी।।
भूमि ही ते सरप जो निकसिओ, जाइ डसिओ फंधकारी।।
कूदत फांधत म्रिगनी निकसी, उबरी सरन तिहारी।।

पहले बहुत ज़ोर से अन्धेरी आई जो जाल को तोड़कर आग में डाल गई। फिर वर्षा के होने से आग भी बुझ गई। जब शिकारी ने बाण चलाया तो तुरन्त एक बिल में से साँप ने निकल कर शिकारी के पाँव पर डंक मारा। जिससे शिकारी का निशाना चूक गया तथा वह बाण हिरणी की बजाय कुत्ते को जा लगा। कुत्ता व शिकारी दोनों ही मर गए। इस प्रकार भगवान् ने हिरणी के बचाव के लिए चारों अवरुद्ध मार्ग खोल दिए। तत्पश्चात् हिरणी बड़े आनन्द के साथ जंगल में रहती रही।

सो मूआ जिसु मनहु बिसारै॥

मरता वही है जिसे प्रभु अपने हृदय में से बिसारै=भुला देता है।

प्रसंग - राजा परीक्षित का

एक समय राजा परीक्षित शिकार के लिए एक जंगल में गया। वहां उसके आगे से एक हिरण गुजरा लेकिन वह हाथ न आया। राजा के अनेक प्रयत्न करने पर भी वह बच निकला। रास्ते में एक स्थान पर विभाडव ऋषि तप कर रहा था। राजा ने

उसके पास आकर पूछा कि हिरण किस ओर गया है? ऋषि अपने ध्यान में मस्त बैठा था, उसने राजा को कोई उत्तर न दिया। राजा क्रोधित हो उठा तथा निकट ही एक साँप मरा देखकर उसे धनुष के कोने से उठाया और ऋषि के गले में डाल दिया

तत्पश्चात् राजा अपने राजमहलों में आ गया। कुछ समय उपरान्त विभाडव ऋषि का शिष्य सिन्धी ऋषि ब्रह्म - लोक में से वर लेकर आया कि "मैं जो भी वचन करूं पूर्ण होता जाए।" जब गुरु जी के पास पहुंचा तो उसने देखा कि उसके गुरु के गले में मरा हुआ साँप डाला हुआ है। जाँच करने पर उसे पता चला कि यह साँप राजा परीक्षित ने डाला है उसी समय श्राप दिया गया कि जिसने भी मेरे गुरु जी के गले में यह साँप डाला है, वह सात दिनों में ही इस साँप की मौत मर जाए।

जब विभाडव ऋषि को इस श्राप का पता चला तो उसने अपने शिष्य सिन्धी ऋषि को कहा कि तुमने यह बहुत बुरा किया है। राजा तो बहुत धर्मात्मा है, तुमने उसे श्राप क्यों दिया? सिन्धी ऋषि ने कहा - उसने आप जी के गले में साँप क्यों डाला है? गुरु जी कहने लगे - उसने नहीं डाला, उससे कलियुग ने डलवाया है। क्योंकि एक समय उसे कलियुग आकर मिला तथा कहने लगा- हे राजन्! मैं कहां रहूँ? राजा ने कहा - जहां पर जुआरिए, चोर, सहचारी इत्यादि हों वहां पर रहा करो। कलियुग ने कहा- किसे अच्छे स्थान पर निवास दो, तो राजा ने कहा - सोने पर भी निवास कर सकते हो यह सुन कर कलियुग चला गया।

जब यह राजा मेरे पास आया तो उस समय कलियुग मक्खी रूप धारण कर उसके मुकुट पर बैठ गया। उस कलियुग ने राजा की बुद्धि को विपरीत कर उससे मेरे गले में साँप डलवा दिया। इसलिए उसे श्राप नहीं देना चाहिए था। सिन्धी ऋषि ने कहा-मेरा वचन अटल है, यह अवश्य पूरा होकर रहेगा। उसी समय विभाडव ऋषि ने राजा को सन्देश भेज दिया कि तुम सात दिन के अन्दर-अन्दर मर जाओगे, इसलिए अपना कोई इंतजाम कर लिया जाए।

जब राजा परीक्षित ने यह श्राप सुना तो उसी समय राजा ने अपनी जान बचाने के लिए मन्त्रियों को आज्ञा दी कि गंगा के चलते पानी में एक शीश महल का निर्माण किया जाए, जिस में से चींटी भी नज़र आ जाए।

उस शीश महल में सुकदेव ऋषि जी से श्री मद्भागवत् का पाठ रखवाया गया तथा एकाग्र-चित हो वह पाठ सुनता रहा।

जब वैद्य श्री धनवन्त्री जी को मालूम हुआ कि सिन्धी ऋषि के श्राप द्वारा राजा परीक्षित को मृत्यु प्राप्त होगी तो हृदय में पश्चाताप करता हुआ चल पड़ा कि जैसे भी हो ऐसे धर्मात्मा राजा को बचाना चाहिए। जिस समय भी तक्षक काल अनुसार राजा परीक्षित को मारेगा, मैं उसे जीवित कर दूंगा। एक ओर से श्री धनवन्त्री जी चल पड़े तथा एक ओर से तक्षक चल पड़ा। रास्ते में दोनों का मिलाप हुआ।

****

तक्षक ने पूछा-तुम कौन हो? उसने कहा - मैं धनवन्त्री वैद्य हूँ। धनवन्त्री जी ने पूछा - तुम कौन हो? उसने कहा - मैं तक्षक नाग हूँ।

धनवन्त्री जी ने पूछा - तुम कहां चले हो? तक्षक बोला - मैं राजा परीक्षित को मारने चला हूँ।

फिर तक्षक ने पूछा - तुम कहाँ चले हो?

धनवन्त्री जी बोले - मैं राजा परीक्षित को जीवित करने जा रहा हूँ।

तक्षक ने विचार किया कि पहले देखें तो इसमें कितनी शक्ति है। उसने धनवन्त्री जी से आग्रह किया - पहले आप अपनी शक्ति का परिचय दें कि आप में कितनी ताकत है? धनवन्त्री जी ने कहा - जहां तक मेरी दृष्टि जाएगी, वहां तक मैं किसी को मरने नहीं दूंगा। यदि तुम मेरी शक्ति देखना चाहते हो तो वह जो पीपल का वृक्ष खड़ा है, उसे तुम जला कर नष्ट कर दो। तक्षक ने एक फूंकार में ही उस वृक्ष के साथ निकट खड़े लकड़हारे को भी जला कर भस्म कर दिया।

फिर धनवन्त्री जी ने कहा - इसकी भस्म भी उड़ा दो। तक्षक ने दूसरा फूंकार मारा तथा उस जले हुए वृक्ष की भस्म को भी उड़ा दिया। वहां पर बिल्कुल खाली जगह रह गई। वृक्ष का नाम-निशान भी न रहा।

जब धनवन्त्री जी ने उस खाली जगह पर पूर्ण दृष्टि डाली तो वहां पर लकड़हारे सहित पहले से भी अधिक मनोहर डालियों हरे-भरे पत्तों व आकर्षक फूलों से युक्त वृक्ष स्थापित कर दिया। क्योंकि धनवन्त्री जी की दृष्टि अमृत-धारी थी।

यह कौतुक देख तक्षक चकित रह गया तथा हृदय में सोचने लगा कि जब मैंने राजा परीक्षित को मारना है तब इसने जीवित कर देना है। क्यों न पहले इसका अन्त ही कर दिया जाए।

उस समय तक्षक ने धनवन्त्री जी से कहा - हे भाई! मैंने राजा को मृत्यु देनी है तथा तुमने जिन्दगी, इसलिए हम दोनों का मार्ग अलग-अलग है। तदोपरान्त दोनों अलग-अलग मार्ग पर चल दिए। तक्षक बहुत कपटी था, वह अत्यन्त सुन्दर छड़ी का रूप धारण कर धनवन्त्री जी के मार्ग में लेट गया। जब धनवन्त्री जी चलते हुए वहां पहुंचे तो सुन्दर छड़ी जानकर उसे उठा लिया। फिर उनकी पीठ पर खारिश होने लग पड़ी तो वह उसी छड़ी से खारिश करने लग पड़े। तक्षक नाग ने उसी समय उनकी पीठ पर ऐसा डंक मारा कि धनवन्त्री वैद्य की वहीं पर मृत्यु हो गई। क्योंकि पीठ पर उसकी दृष्टि नहीं पड़ सकती थी।

जिस बाग में माली फूल तोड़ रहा था, तक्षक चींटी का रूप धारण कर उन फूलों में से एक फूल में छिपकर बैठ गया। वही फूल तोड़कर माली ने शीश महल पहुंचा दिए। जब सुकदेव ऋषि जी ने कथा को समाप्त कर राजा को फूलों का प्रशाद दिया तो उन फूलों को सूंघते ही राजा की मृत्यु हो गई।

तिसु तजि अवर कहा को जाइ॥ सभ सिरि एकु निरंजन राइ॥

वह परमेश्वर को त्यागकर, अर्थात् - छोड़कर अन्य कौन सी जगह है जहां कोई जाए। सभी के सिर पर आसरा रूप एक निरंजन ही राजा है।

जीअ की जुगति जा कै सभ हाथि॥ अंतरि बाहरि जानहु साथि॥

सभी जीवों की युक्ति जिस प्रभु के हाथ में है। उसे अपने अन्दर तथा बाहर का साथी जानो।

गुन निधान बेअंत अपार॥ नानक दास सदा बलिहार॥ २॥

वह प्रभु शुभ गुणों का निधान=खज़ाना है, अनन्त है, अपार=आर-पार से रहित है। गुरु जी कथन करते हैं-मैं दास उस से सदा बलिहार जाता हूँ।। २।।

पूरन पूरि रहे दइआल॥ सभ ऊपरि होवत किरपाल॥

वह दयालु परमात्मा पूरन=सम्पूर्ण जीवों में परिपूर्ण हो रहा है तथा सभी पर कृपालु होता है।

अपने करतब जानै आपि॥ अंतरजामी रहिओ बिआपि॥

वह प्रभु अपने कर्तव्यों को स्वयं ही जानता है। वह अन्तर्यामी सभी में विद्यमान हो रहा है।

प्रतिपालै जीअन बहु भाति॥ जो जो रचिओ सु तिसहि धिआति॥

वह जीवों की बहु-भांति पालना कर रहा है। जो जो भी उसने बनाया है वह उसका ही धिआति=ध्यान करता है, अर्थात्-सिमरन करता है।

जिसु भावै तिसु लए मिलाइ॥ भगति करहि हरि के गुण गाइ॥

जिसे भावै=चाहता है, उसे अपने साथ मिला लेता है। गुरमुखजन भक्ति करते हैं तथा हरि के गुण गाते हैं।

मन अंतरि बिस्वासु करि मानिआ॥ करनहारु नानक इकु जानिआ॥ ३॥

जिसने हृदय में बिस्वासु=भरोसा (निश्चय) करके सहमति को माना है, अर्थात्-उस परमेश्वर को मानिआ=मनन किया है। गुरु जी कथन करते हैं-उस व्यक्ति ने एक रचयिता प्रभु को जान लिया है।। ३।।

जनु लागा हरि एकै नाइ॥ तिस की आस न बिरथी जाइ॥

जो गुरमुख जन एक हरि नाम सिमरन में लगा है। उसकी आशा बिरथी=व्यर्थ नहीं जाती।

सेवक कउ सेवा बनि आई॥ हुकमु बूझि परम पदु पाई॥

****

सेवक को तो प्रभु की सेवा करनी ही बन आती है। जिस सेवक ने आज्ञा को बूझा है, उसने परम-पद प्राप्त किया है।

इस ते ऊपरि नही बीचारु॥ जा कै मनि बसिआ निरंकारु॥

संयोग से! जिस प्राणी के हृदय में निरंकारु=ईश्वर का वास हो गया है, उसे उस निरंकार से ऊँचा अन्य कोई विचार प्रतीत नहीं होता।

बंधन तोरि भए निरवैर॥ अनदिनु पूजहि गुर के पैर॥

वह सांसारिक बन्धनों को तोड़कर वैर-विरोध से रहित हुए हैं। वह रात दिन गुरु के चरणों को पूजते हैं।

[पृष्ठ २९३]

इह लोक सुखीए परलोक सुहेले॥ नानक हरि प्रभि आपहि मेले॥ ४॥

वह इस लोक में भी सुखी हैं तथा परलोक में भी सुहेले=सुखी होते हैं। गुरु जी कथन करते हैं - उन्हें हरि प्रभु अपने साथ मिला लेता है।। ४।।

साधसंगि मिलि करहु अनंद॥ गुन गावहु प्रभ परमानंद॥

सत्संगति के साथ मिलकर आत्मिक-आनंद प्राप्त करो तथा परम-आनन्द स्वरूप प्रभु का गुणगान करो।

राम नाम ततु करहु बीचारु॥ द्रुलभ देह का करहु उधारु॥

सभी वेद-शास्त्रों का ततु=सिद्धान्त रूप जो राम नाम है उसका विचार करो। इस दुर्लभ प्राणी देह का उद्धार कर लो।

अंम्रित बचन हरि के गुन गाउ॥ प्रान तरन का इहै सुआउ॥

अमृत वचन जो वेद हैं, उनके द्वारा हरि का गुणगान करो। अर्थात्- बचन=वाणी द्वारा अमृत रूप हरि का गुणगान करो। प्राणी की मुक्ति का इहै सुआउ=यही मुख्य साधन है।

आठ पहर प्रभ पेखहु नेरा॥ मिटै अगिआनु बिनसै अंधेरा॥

आठों पहर प्रभु को निकट ही देखना करो, तो अज्ञान रूप अन्धेरा जो नाश योग्य है, वह मिट जाएगा। अथवा - अज्ञान भी मिट जाएगा तथा भ्रम रूप अन्धेरा भी नष्ट हो जाएगा। अथवा - अगिआनु=अनभिज्ञ शक्ति मिट जाएगी तथा बिनसै अंधेरा=विक्षेप शक्ति भी समाप्त हो जाएगी।

सुनि उपदेसु हिरदै बसावहु॥ मन इछे नानक फल पावहु॥ ५॥

गुरु जी कथन करते हैं-गुरु उपदेश को सुनकर हृदय में बसाना करो तो मनवांछित फल प्राप्त कर लोगे।। ५।।

****

हलतु पलतु दुइ लेहु सवारि॥ राम नामु अंतरि उरि धारि॥

उरि+अंतरि=हृदय के अन्दर राम नाम को धारण कर अपने हलतु पलतु=लोक - परलोक को संवारना करो।

यथा-हरि नामु हमारी संगति अति पिआरी हरि नामु कुलु हरि नामु परवारा।।
जन नानक कंउ हरि नामु हरि गुरि दीआ हरि हलति पलति सदा करे निसतारा।।

(वडहंस की वार, पृष्ठ ५९२)

पूरे गुर की पूरी दीखिआ॥ जिसु मनि बसै तिसु साचु परीखिआ॥

पूर्ण गुरु की पूर्ण दीखिआ=शिक्षा जिसके हृदय में समाई हुई है। उसने सत्य को परख लिया है।

मनि तनि नामु जपहु लिव लाइ॥ दूखु दरदु मन ते भउ जाइ॥

लीन अवस्था में मन, तन द्वारा राम नाम का सिमरन करो, तो दुख, दर्द तथा हृदय में से यमों का भय दूर हो जाएगा।

सचु वापारु करहु वापारी॥ दरगह निबहै खेप तुमारी॥

व्यापारी होकर सत्य नाम का व्यापार करो। अथवा - वापारी=महात्मा के साथ मिलकर सत्य नाम का व्यापार करो। तभी दरगह में तुम्हारी जप, तप रूपी पूंजी निबहै=पूर्ण हो जाएगी।

एका टेक रखहु मन माहि॥ नानक बहुरि न आवहि जाहि॥ ६ ॥

गुरु जी कथन करते हैं - हृदय में एक प्रभु की टेक=ओट रखो, तो दोबारा तुम्हारा आवागमन, अर्थात्- जन्म-मरण नहीं होगा।। ६।।

तिस ते दूरि कहा को जाइ॥ उबरै राखनहारु धिआइ॥

उस परमात्मा से भाग कर दूर कोई कहां जा सकता है? रक्षा करने वाले प्रभु का स्मरण करे तो इसका उद्धार होता है। अथवा - यमों से उबरै=बच सकता है।

निरभउ जपै सगल भउ मिटै॥ प्रभ किरपा ते प्राणी छुटै॥

निर्भय परमेश्वर को जपे तो सभी भय मिट जाते हैं। प्रभु की कृपा द्वारा यह प्राणी दुखों से छूट जाता है।

जिसु प्रभु राखै तिसु नाही दूख॥ नामु जपत मनि होवत सूख॥

जिसकी प्रभु स्वयं रक्षा करता है उसे कोई दुख नहीं होता। नाम सिमरन से हृदय में सुख प्राप्त होता है।

चिंता जाइ मिटै अहंकारु॥ तिसु जन कउ कोइ न पहुचनहारु॥

उसकी चिन्ता व अभिमान मिट जाता है। उस गुरमुख जन के समान पहुंचने वाला कोई भी नहीं होता।

सिर ऊपरि ठाढा गुरु सूरा॥ नानक ता के कारज पूरा॥ ७॥

गुरु जी कथन करते हैं - जिसके सिर पर शूरवीर गुरु रक्षा करने के लिए ठाढा=खड़ा है। उसके सभी कर्म पूर्ण हो जाते हैं।। ७।।

मति पूरी अंम्रितु जा की द्रिसटि॥ दरसनु पेखत उधरत स्रिसटि॥

जिस गुरु की अपनी बुद्धि, अथवा - मति=शिक्षा पूरी है तथा नयनों की दृष्टि में अमृत है। जिस प्रकार श्री गुरु अंगद देव जी की दृष्टि में अमृत था, समाधि खुलते ही सब से पहले जिस पर दृष्टि पड़ती थी, उसके सर्व मनोरथ अपने आप पूर्ण हो जाते थे तथा रोगी के रोग दूर हो जाते थे। कोढ़ी का कोढ़ निवृत्त हो जाता था। जिनके दर्शन करने से ही सम्पूर्ण सृष्टि का उद्धार हो जाता है।

चरन कमल जा के अनूप॥ सफल दरसनु सुंदर हरि रूप॥

जिस गुरु के चरण कमल फूल की भान्ति उपमा रहित हैं। जिस गुरु का दर्शन सफल है तथा सुन्दर हरि का स्वरूप है।

धंनु सेवा सेवकु परवानु॥ अंतरजामी पुरखु प्रधानु॥

जिन गुरुओं की सेवा धन्य है, जो सेवक बनकर उस गुरु की सेवा करता है, वह सेवक प्रमाणिक होता है।

गुरु साहिब जी अन्तर्यामी हैं तथा सभी पुरुषों में से प्रधान पुरुष हैं।

जिसु मनि बसै सु होत निहालु॥ ता कै निकटि न आवत कालु॥

जिस सेवक के हृदय में गुरु उपदेश समाया है, वह निहाल हो जाता है, अर्थात्-दुखों से रहित हो जाता है तथा उसके निकट काल नहीं आता।

अमर भए अमरा पदु पाइआ॥
साधसंगि नानक हरि धिआइआ॥ ८॥ २२॥

गुरु जी कथन करते हैं- जिन्होंने गुरु की सत्संगति में बैठ कर हरि नाम का सिमरन किया है। वह अमर-पद प्राप्त कर दुनिया में अमर हो गए हैं।। ८।। २२।।

(तेईसवीं असटपदी)

सलोकु॥ गिआन अंजनु गुरि दीआ अगिआन अंधेर बिनासु॥
हरि किरपा ते संत भेटिआ नानक मनि परगासु॥ १॥

गुरु जी कथन करते हैं-जिस गुरु के अपने हृदय में प्रभु का प्रकाश है, हरि की

****
कृपा द्वारा वह संत=शान्त आत्मा गुरु जिस समय भेटिआ=मिले तथा उन गुरुओं ने कृपा कर जिस जिज्ञासु के हृदय-बुद्धि रूपी नेत्रों में ज्ञान रूपी सुरमा डाल दिया है उस का अज्ञान रूपी अन्धेरा नाश हो गया है।। १।।

असटपदी ॥ संतसंगि अंतरि प्रभु डीठा ॥ नामु प्रभू का लागा मीठा ॥

संत=शान्त आत्मा गुरुओं की सत्संगति करके जब प्रभु का नाम मीठा लगा तो प्रभु को हृदय में देख लिया है।

सगल समिग्री एकसु घट माहि ॥ अनिक रंग नाना द्रिसटाहि ॥

अनिक रंग=अत्यन्त रंगों की जो नाना प्रकार की समस्त सामग्री द्रिसटाहि=देखने में आती है। विराट रूप होने के कारण यह समस्त सामग्री एक प्रभु के अर्न्तगत है।

नउ निधि अंम्रितु प्रभ का नामु ॥ देही महि इस का बिस्रामु ॥

जिस प्रभु का नाम अमृत, नव-निधि का दाता है। इस देह में ही उस प्रभु का बिस्रामु=निवास, अर्थात्-टिकाना है।

सुंन समाधि अनहत तह नाद ॥ कहनु न जाई अचरज बिसमाद ॥

उस परमात्मा में सुंन समाधि=निर्विकल्प समाधि लगाने से अनहत=एक रस बाजों की ध्वनि प्राप्त हुई है तथा आश्चर्य से भी आश्चर्य जो आनन्द प्राप्त हुआ है, उसकी महिमा कथन नहीं हो सकती।

तिनि देखिआ जिसु आपि दिखाए ॥ नानक तिसु जन सोझी पाए ॥ १ ॥

जिसे स्वयं गुरु साहिब जी दिखाना चाहते हैं, उस गुरमुख जन को शुभ बुद्धि प्रदान की है। जिसे सोझी=सूझ दी है, उसने परमेश्वर को देख लिया है।। १।।

सो अंतरि सो बाहरि अनंत ॥ घटि घटि बिआपि रहिआ भगवंत ॥

वह अनन्त परमेश्वर अन्दर है तथा वह अनन्त परमेश्वर बाहर भी है। वह प्रभु समस्त कण-कण में बिआपि=व्याप्त हो रहा है।

धरनि माहि आकास पइआल ॥ सरब लोक पूरन प्रतिपाल ॥

सभी लोगों की पालना करने वाला परमेश्वर पृथ्वी, आकाश तथा पातालों में पूर्ण है। अथवा - धरती, गगन तथा पाताल में जितने भी जीव हैं, उन सभी लोगों की वह पूर्ण वाहिगुरु स्वयं ही रक्षा करने वाला है।

[पृष्ठ २९४]

बनि तिनि परबति है पारब्रहमु ॥ जैसी आगिआ तैसा करमु ॥

बनि=जंगलों में, तिनि=तिनकों में, परबति=पहाड़ों में पारब्रह्म पूर्ण है। वह जिस तरह का आदेश करता है, यह जीव उसी तरह का कर्म करता है।

पउण पाणी बैसंतर माहि॥ चारि कुंट दह दिसे समाहि॥

वह प्रभु पवन, जल तथा बैसंतर=आग में पूर्ण है। चारि कुंट=चारों कोनों तथा दस दिशाओं में समा रहा है।

तिस ते भिंन नही को ठाउ॥ गुरप्रसादि नानक सुखु पाउ॥ २॥

उससे अलग अन्य कोई स्थान नहीं है। गुरु जी कथन करते हैं- गुरु कृपा द्वारा उस परमेश्वर को सभी परिपूर्ण निश्चय कर सुख प्राप्त करो।। २।।

बेद पुरान सिंम्रिति महि देखु॥ ससीअर सूर नख्यत्र महि एकु॥

चार वेद, अठारह पुराण तथा सताईस समृतियों में भी उस परमेश्वर को देख। ससी=चन्द्रमा, सूर=सूर्य तथा नख्यत्र=तारे सभी में एक परमेश्वर है।

बाणी प्रभ की सभु को बोलै॥ आपि अडोलु न कबहू डोलै॥

प्रभु की नाम रूपी वाणी को प्रत्येक बोलता है। अथवा - वाणी द्वारा प्रभु के यश को हर कोई बोलता है। अथवा - प्रभु की बाणी=आज्ञा में सभी बोलते हैं। वह प्रभु स्वयं अडोल है, कभी डोलता नहीं है।

सरब कला करि खेलै खेल॥ मोलि न पाईऐ गुणह अमोल॥

सरब कला=सर्व शक्तियों द्वारा जगत रूपी खेल को खेल रहा है। अमूल्य गुणों वाले प्रभु का मूल्य नहीं पाया जा सकता।

अर्थात्-उसके अनमोल गुणों का मूल्य नहीं पाया जा सकता।

सरब जोति महि जा की जोति॥ धारि रहिओ सुआमी ओति पोति॥

सर्व ज्योति में जिस प्रभु की ज्योति है। वह स्वामी परमात्मा ओति पोति=ताने-पेटे की भान्ति सभी में अपनी सत्ता धारण कर रहा है।

गुरपरसादि भरम का नासु॥ नानक तिन महि एहु बिसासु॥ ३॥

गुरु जी कथन करते हैं - गुरुओं की कृपा द्वारा जिन का भ्रम नाश हुआ है। उनके हृदय में इस तरह का बिसासु=यकीन बंध गया है।। ३।।

संत जना का पेखनु सभु ब्रहम॥ संत जना कै हिरदै सभि धरम॥

सन्त जनों का देखना सारे ब्रह्म का ही है, अर्थात्-सब को ब्रह्म रूप देखते हैं। सन्त जनों के हृदय में जो भी धर्म हैं, वह सभी धर्म स्वरूप हैं।

संत जना सुनहि सुभ बचन॥ सरब बिआपी राम संगि रचन॥

सन्त जनों के कान साईं के शुभ वचनों को ही श्रवण करते हैं तथा सर्वव्यापक जो राम है, उस राम के साथ रचे रहते हैं।

****

जिनि जाता तिस की इह रहत॥ सति बचन साधू सभि कहत॥

जिन्होंने प्रभु को जाना है, उन सन्तों की यह रहत=मर्यादा है जो उपरोक्त पंक्तियों में कथन की गई है। साधु जो वचन करते हैं, सभी सत्य ही करते हैं। झूठ कभी नहीं बोलते। अथवा - जो सत्य वचन कहता है चाहे वो गृहस्थी भी है तो भी उसे सभी साधु कहते हैं।

अथवा - यदि कोई महापुरुषों का वचन कहे तो आगे से सभी साधु "सत्य वचन जी!" इस प्रकार मीठी वाणी बोलते हैं।

जो जो होइ सोई सुखु मानै॥ करन करावनहारु प्रभु जानै॥

उनके साथ जो जो कुछ भी होता है, उसे वह सुख समझकर मानते हैं। क्योंकि वह परमेश्वर को ही समस्त ब्रह्मण्ड का कर्त्ता जानते हैं।

अंतरि बसे बाहरि भी ओही॥ नानक दरसनु देखि सभ मोही॥ ४ ॥

वह ये समझते हैं कि हमारे अन्दर भी तथा हमारे बाहर भी वही परमेश्वर समा रहा है। गुरु जी कथन करते हैं - उस प्रभु के दर्शन करके ही सभी सन्तों की बुद्धि मोहित हुई है।। ४।।

आपि सति कीआ सभु सति॥ तिसु प्रभ ते सगली उतपति॥

जो प्रभु स्वयं सत्य है तथा जिसका किया हुआ भी सब सत्य है। उस प्रभु से ही सारी सृष्टि की उत्पति हुई है।

तिसु भावै ता करे बिसथारु॥ तिसु भावै ता एकंकारु॥

जब उसे भाता है तो संसार बिसथारु=विस्तार को करता है। जब उसे भाता है तो अद्वितीय परमात्मा एक स्वरूप हो जाता है।

अनिक कला लखी नह जाइ॥ जिसु भावै तिसु लए मिलाइ॥

जिसकी अनेक, कला=शक्तियां, लखी=जानी नहीं जा सकतीं। वह परमात्मा जिसे भावै=चाहता है उसे अपने साथ मिला लेता है।

कवन निकटि कवन कहीऐ दूरि॥ आपे आपि आप भरपूरि॥

उसके निकट किस को कहें, उससे दूर किस को कहें? जबकि वह स्वयं ही अपने आप सभी में भरपूरि= व्यापक हो रहा है।

अंतरगति जिसु आपि जनाए॥ नानक तिसु जन आपि बुझाए॥ ५ ॥

अंतर+गति=अंतःकरण के अन्दर प्राप्त रूप परमेश्वर जिसको स्वयं जनाए=जताना चाहता है, गुरु जी कथन करते हैं- उस जन को स्वयं ही समझाता है।। ५।।

सरब भूत आपि वरतारा॥ सरब नैन आपि पेखनहारा॥

सरब भूत=सर्व रूप होकर स्वयं ही सभी में समा रहा है।

अथवा - सरब भूत=सभी जीवों में स्वयं उपस्थित है। अर्थात्-सभी जीवों में स्वयं ही भोजन, पानी आदि पर्याप्त कर रहा है। सभी आंखों में स्वयं स्थायी होकर देखने वाला हो रहा है।

सगल समग्री जा का तना॥ आपन जसु आप ही सुना॥

जगत् की समस्त सामग्री जिसका तना=स्वरूप है, अथवा - विराट देह है। अर्थात्-सम्पूर्ण सामग्री रूप जगत् जिसका ताना तना हुआ है। वह अपने यश को आप ही सुन रहा है।

आवन जानु इकु खेलु बनाइआ॥ आगिआकारी कीनी माइआ॥

संसार में आना तथा जाना, अर्थात्-पैदा होना तथा मरना यह उसने एक खेलु=तमाशा बनाया हुआ है।

प्रश्न - यह तमाशा उसने अपने आप बनाया है अथवा किसी द्वारा?

उत्तर - आज्ञाकारी जो माया है उस द्वारा यह खेल बनाया है।

अर्थात् - माया को उसने अपना आज्ञाकारी बनाया हुआ है।

सभ कै मधि अलिपतो रहै॥ जो किछु कहणा सु आपे कहै॥

सभी में रहता हुआ भी सब से अलिपतो=असंग रहता है। जो कुछ किसी को कहना होता है, वह स्वयं ही कहता है।

आगिआ आवै आगिआ जाइ॥ नानक जा भावै ता लए समाइ॥ ६॥

यह जीव उसकी आज्ञा में आता है, उसकी आज्ञा में ही चला जाता है। गुरु जी कथन करते हैं - जब चाहता है तब इस जीव को अपने में समाइ=अभेद कर लेता है।। ६।।

इस ते होइ सु नाही बुरा॥ ओरै कहहु किनै कछु करा॥

इस परमेश्वर से जो कुछ भी होता है, वह बुरा नहीं होता। बताओ तो! उस परमेश्वर से ओरै=इधर जो जीव हैं, उन में से किसी ने आज तक क्या कुछ किया है?

अर्थात् - परमेश्वर के अलावा ओरै=अन्य किसी ने आज तक कुछ किया? यानि कुछ नहीं किया।

आपि भला करतूति अति नीकी॥ आपे जानै अपने जी की॥

वह परमेश्वर स्वयं भला है, उसकी करतूति=कर्तव्यता, अर्थात् - क्रिया भी, अति नीकी=बहुत अच्छी है। वह अपने जीव की बात स्वयं ही जानता है।

आपि साचु धारी सभ साचु॥ ओति पोति आपन संगि राचु॥

वह स्वयं सत्य है, उसकी धारण की हुई मर्यादा भी सारी सत्य है। वह प्रभु ओति पोति=ताने पेटे की भान्ति स्वयं समस्त जीवों से रच रहा है, अर्थात्-मिल रहा है।

ता की गति मिति कही न जाइ॥ दूसर होइ त सोझी पाइ॥

उस प्रभु की मुक्ति तथा मिति=मर्यादा कही नहीं जाती।

यथा - **हरि की गति नहि कोऊ जानै।।**

जोगी जती तपी पचि हारे अरु बहु लोग सिआने।। (पृष्ठ ५३७)

कोई दूसरा उस जैसा हो तो उसकी सूझ को प्राप्त कर सकता है।

तिस का कीआ सभु परवानु॥ गुरप्रसादि नानक इहु जानु॥ ७॥

उस प्रभु का किया हुआ हमें सब परवानु=स्वीकार है, उस पर अस्वीकृति नहीं हो सकती। गुरु जी कथन करते हैं-गुरुओं की कृपा द्वारा हमने यह जान लिया है।। ७।।

जो जानै तिसु सदा सुखु होइ॥ आपि मिलाइ लए प्रभु सोइ॥

जो व्यक्ति उपरोक्त कथन की हुई बात को जानता है, अथवा - जो प्राणी उस प्रभु को जानता है। उसको सदा=नित्य सुख प्राप्त होता है तथा उसे प्रभु अपने साथ मिला लेता है।

ओहु धनवंतु कुलवंतु पतिवंतु॥ जीवन मुकति जिसु रिदै भगवंतु॥

जिसके हृदय में ईश्वर का वास है, वह पुरुष प्रत्यक्ष, अथवा - आत्मिक धन वाला तथा ऊँची वंश वाला है, बड़े सम्मान वाला तथा जीवन मुक्त अवस्था वाला है।

यथा - **राम नाम जो करहि बीचार।। से धनवंत गनी संसार।।** (पृष्ठ २८१)

धंनु धंनु धंनु जनु आइआ॥ जिसु प्रसादि सभु जगतु तराइआ॥

उस प्राणी का जगत् में आना हृदय से धन्य है, वाणी से धन्य है, शरीर से भी धन्य है। अथवा - वह जीव स्वयं भी धन्य है, उसका जीवन भी धन्य है, उसका जगत् में आना भी धन्य है। अर्थात् - उसकी माता धन्य है, उसका पिता भी धन्य है, उस जीव का अपना आना भी धन्य है। जिसकी प्रसादि=कृपा करके सारा जगत् मुक्ति मार्ग में आया है।

यथा- **धंनि धंनि कहै सभु कोइ।। मुख ऊजल हरि दरगाह सोइ।।** (पृष्ठ २८३)

तथा- **धंनु धंनु से साह है जि नामि करहि वापारु।।**

वणजारे सिख आवदे सबदि लघावण हारु।। (पृष्ठ ३१३)

तथा- **धंनु धंनु सो गुरसिखु कहीऐ जो सतिगुरु चरणी जाइ पइआ।।**

धंनु धंनु सो गुरसिखु कहीऐ जिनि हरि नामा मुखि रामु कहिआ।।

****

धंनु धंनु सो गुरसिखु कहीऐ जिसु हरि नामि सुणिऐ मनि अनदु भइआ।।
धंनु धंनु सो गुरसिखु कहीऐ जिनि सतिगुर सेवा करि हरि नामु लइआ।।
तिसु गुरसिख कंउ हंउ सदा नमसकारी जो गुर कै भाणै गुरसिखु चलिआ।। १८।।

(वडहंस की वार, पृष्ठ ५९३)

[पृष्ठ २९५]

जन आवन का इहै सुआउ॥ जन कै संगि चिति आवै नाउ॥

गुरमुख जनों के पास आने का यही सुआउ=लाभ है। गुरमुख जनों के संग द्वारा प्रभु का नाम याद आता है।

आपि मुकतु मुकतु करै संसारु॥ नानक तिसु जन कउ सदा नमसकारु॥८॥२३॥

जो गुरमुख जन स्वयं मुक्त रूप है तथा संसार को मुक्त करता है। गुरु जी कथन करते हैं - उस गुरमुख जन को मैं सदा नमस्कार करता हूँ।। ८।। २३।।

(चौबीसवीं असटपदी)

एक सिक्ख ने निवेदन किया कि आप जी ने पूर्ण प्रभु को कैसे पाया है? गुरु उत्तर-

सलोकु॥ पूरा प्रभु आराधिआ पूरा जा का नाउ॥
नानक पूरा पाइआ पूरे के गुन गाउ॥ १॥

गुरु जी कथन करते हैं - जिस प्रभु का नाम शुभ - गुणों के कारण पूर्ण है, उस पूर्ण प्रभु की हृदय से अराधना की तथा वाणी द्वारा पूर्ण प्रभु के गुणों को गाया, तो हम ने पूर्ण प्रभु को पाया है।। १।।

असटपदी॥ पूरे गुर का सुनि उपदेसु॥ पारब्रहमु निकटि करि पेखु॥

हे भाई! पूर्ण प्रभु की प्राप्ति के लिए तुम भी पूर्ण गुरु के उपदेश को सुनो तथा पारब्रह्म को अपने निकट ही देखो।

सासि सासि सिमरहु गोबिंद॥ मन अंतर की उतरै चिंद॥

अन्दर श्वास जाते, बाहर श्वास आते हुए गोबिन्द का सिमरन करो तो तेरे हृदय के अन्दर की चिन्ता दूर हो जाएगी।

आस अनित तिआगहु तरंग॥ संत जना की धूरि मन मंग॥

अनित=झूठे पदार्थों की आशा को तथा तरंग=संकल्पों को त्याग दे। हृदय के उत्साह द्वारा सन्तों की चरण धूल की मांग कर। क्योंकि सन्तों की चरण धूल मन्द कर्मों की रेखा को मिटा देती है।

****

प्रसंग - चरण धूल का

लाहौर निवासी एक सौदागर था, उसकी पत्नी बहुत सुन्दर थी। वह सौदागर नित्य अपनी पत्नी के साथ एक महात्मा के पास सत्संग में जाता था। इसी कारण दोनों उस महात्मा के शिष्य बन गए, महात्मा लाहौर के किले कें निकट ही रहते थे।

जब सौदागर व्यापार करने के लिए बाहर गया तो पीछे से एक दिन सौदागर की पत्नी सिर नहा कर छत पर चढ़ी बाल सुका रही थी। उसे देखते ही बादशाह का हृदय मोहित हो गया तथा उसने अपने वजीरों को आदेश दिया कि उस स्त्री को जबरन पकड़ कर मेरे पास लाओ। लेकिन वजीरों ने कहा - राजन्! उसे इस तरह मत बुलाओ, यन्त्रों -मन्त्रों द्वारा बुलाया जाए तो उचित है। फिर बादशाह ने काजी बुलाए और कहा - मुझे ऐसे यन्त्र लिखकर दो, जिसकी शक्ति के प्रभाव से सौदागर की पत्नी मेरे पास स्वयं चल कर आ जाए। यह बात सुनकर काजियों ने चार यन्त्र लिख कर दिये और कहा - एक पहर में एक-एक यन्त्र को मंजी के एक-एक पाए के नीचे रख देना। चौथे पहर में वह स्वयं आपके पास आ जाएगी। बादशाह ने यथाविधि किया तथा सौदागर की पत्नी को सन्देश भी भेज दिया कि यदि तुम आज मेरे पास न आई तो तुम्हारा सारा परिवार कत्ल करके तथा समस्त धन - माल जब्त करके तुझे जबरन राजमहलों में लाया जाएगा। एक पहर के पश्चात् एक यन्त्र मंजी के पाए के नीचे रखना शुरु कर दिया। जब दूत ने आकर राजा का सन्देश दिया तो सौदागर की पत्नी ने कहा - मैं पतिव्रता धर्म वाली हूँ तथा हिन्दू की पत्नी हूँ बादशाह मुसलमान है। उसके महलों में जाने के लिए मैं कदापि तैयार नहीं हूँ, मर जाऊंगी लेकिन महलों में नहीं जाऊंगी। बादशाह ने दो-तीन बार अपने आदमी भेजे परन्तु उसने बिल्कुल भी परवाह न की। लेकिन यन्त्रों के प्रभाव से उसका हृदय कुछ बदल गया।

पहले यन्त्र के प्रभाव से - हृदय में विचार करती है, यह देश का राजा है, पति को मार देगा, बच्चों को मार देगा, माल जब्त कर लेगा, तो भी मुझे छोड़ेगा नहीं।

दूसरे यन्त्र के प्रभाव से - मन में ख्याल आया, मेरे कारण मेरे पति और मेरी सन्तान की हानि न हो। इसलिए मैं चली ही जाती हूँ।

तीसरे यन्त्र के प्रभाव से-अपने शरीर पर श्रृंगार करने लग पड़ी।

चौथे यन्त्र के प्रभाव से - घर से निकल कर बादशाह के महलों की ओर चल पड़ी। जाते-जाते मार्ग में सन्तों का दर्शन हो गया, तो उसने निकट जाकर वन्दना की तो सन्तों ने उसकी ओर देखकर कहा बच्ची! तेरा पति तो प्रदेश गया हुआ है फिर तुम श्रृंगार कर कहां जा रही हो, सत्य कहो? उसने उसी समय बादशाह का वृतान्त सुनाया। सन्तों ने सुनकर उसके माथे की मन्द रेखा को देखा तथा अपने पवित्र चरणों की धूल लगा कर उसकी मन्द रेखा मिटा दी और कहा - बच्ची! राजमहलों में जाने की आवश्यकता

नहीं, अब तुम अपने घर को जाओ, राजा तुझे कुछ नहीं कहेगा, हृदय को अडोल रखकर पतिव्रता धर्म पर कायम रहो। इस प्रकार सन्तों के वचन सुनकर वह निश्चिन्त हो अपने घर को वापिस आ गई।

देखो सन्तों की चरण धूल ने सौदागार की पत्नी के मन्द कर्म मिटा दिए।

यथा- **धूड़ी लेख मिटाइआ।।** *(भाई गुरदास जी)*

तथा- **पारब्रहम मोहि किरपा कीजै।। धूरि संतन की नानक दीजै।।**

(पृष्ठ १८१)

तथा- **सगल संतन पहि वसतु इक मांगउ।। करउ बिनंती मानु तिआगउ।।**
वारि वारि जाई लख वरीआ देहु संतन की धूरा जीउ।।

(माझ, पृष्ठ ९९)

तथा- **दानु महिंडा तली खाकु जे मिलै त मसतकि लाईऐ।।**
कूड़ा लालचु छडीऐ होइ इक मनि अलखु धिआईऐ।।
फलु तेवेहो पाईऐ जेवेही कार कमाईऐ।।
जे होवै पूरबि लिखिआ ता धूड़ि तिना दी पाईऐ।।

(आसा दी वार पृष्ठ ४६८)

आपु छोडि बेनती करहु॥ साधसंगि अगनि सागरु तरहु॥

आपु=अभिमान को त्याग कर प्रभु के समक्ष निवेदन करो तथा सत्संग करो, क्योंकि सत्संग के कारण ही तृष्णा रूपी अग्नि के भवसागर से पार हो जाओगे।

हरि धन के भरि लेहु भंडार॥ नानक गुर पूरे नमसकार॥ १ ॥

अंतःकरण रूप भण्डार को हरि नाम रूपी धन के साथ भरो। तथा नाम धन की प्राप्ति के लिए पूर्ण गुरु को नमस्कार करो।। १।।

खेम कुसल सहज आनंद॥ साधसंगि भजु परमानंद॥

सत्संगति में बैठकर परम आनन्द स्वरूप परमेश्वर को स्मरण कर, तो खेम=रक्षा, कुसल=सुख तथा आनन्द इत्यादि शुभ गुण स्वभाविक ही प्राप्त हो जाएंगे।

नरक निवारि उधारहु जीउ॥ गुन गोबिंद अंम्रित रसु पीउ॥

हे भाई! गोबिन्द के गुणों के गायन रूपी अमृत रस को पीकर, नरकों को, निवारि=दूर करके अपने चित्त का उद्धार कर ले।

चिति चितवहु नाराइण एक॥ एक रूप जा के रंग अनेक॥

उस एक नारायण का अपने हृदय में चिन्तन कर। निर्गुण ब्रह्म होने के कारण जिसका एक रूप है, सर्गुण स्वरूप होने के कारण, जिसके अनेक रंग हैं।

गोपाल दामोदर दीन दइआल॥ दुख भंजन पूरन किरपाल॥

वह दामोदर परमात्मा गो+पाल=गायों के अथवा - इन्द्रियों के, अथवा - वेदों के पालने वाला है, तथा दीन दयाल है। दुखों को नाश करने वाला तथा पूर्ण कृपालु है।

सिमरि सिमरि नामु बारं बार॥ नानक जीअ का इहै अधार॥ २॥

बार+बार=बार-बार उसके नामों का सिमरन ही सिमरन कर, अथवा - हृदय, वाणी, शरीर द्वारा बार-बार उसके नामों का सिमरन कर। गुरु जी कथन करते हैं - यह नाम ही जीव का अधार=सहारा है।। २।।

उतम सलोक साध के बचन॥ अमुलीक लाल एहि रतन॥

सुखमनी साहिब के साध=श्रेष्ठ वचन ही उत्तम श्लोक हैं।

अथवा - यह श्लोक उत्तम हैं, क्योंकि इसमें सन्तों की स्तुति रूप वचन हैं।

यथा - **साध की महिमा बेद न जानहि।।**
जेता सुनहि तेता बखिआनहि।। (पृष्ठ २७२)

अथवा - स+लोक=वही अलौकिक उत्तम जो साधु वस्तु अर्थात्-आत्म वस्तु है, उस की प्राप्ति के यह वचन हैं। पुनः यह वचन लाल तथा रत्न की भान्ति अमूल्य हैं।

सुनत कमावत होत उधार॥ आपि तरै लोकह निसतार॥

इन वचनों को जो श्रद्धा से सुनेगा तथा कमाएगा तो उसका उद्धार होगा। वह स्वयं मुक्त होगा तथा अन्य अधिकारी लोगों को भी मुक्त कर लेगा।

सफल जीवनु सफलु ता का संगु॥ जा कै मनि लागा हरि रंगु॥

सुखमनी साहिब जी का पाठ करते हुए जिसके हृदय में हरि का रंगु=प्रेम लगा है। उस प्राणी का जीवन सफल है तथा उसका संग करना भी सफल है।

जै जै सबदु अनाहदु वाजै॥ सुनि सुनि अनद करे प्रभु गाजै॥

जो पुरुष सुखमनी साहिब जी का पाठ नित्य नेम से करता है उसकी जय जय शब्दों के अनाहदु=एक रस बाजे बजते हैं।*

जो व्यक्ति सुखमनी साहिब जी के पाठ को श्रवण कर हृदय में आनन्द धारण करता है, उसमें परमात्मा गाजै=प्रकट होता है।

प्रगटे गुपाल महांत कै माथे॥ नानक उधरे तिन कै साथे॥ ३॥

जो प्रेम-भाव से सुखमनी साहिब जी का पाठ करता है वही असल महात्मा है।

---

*भाई मनी सिंघ जी घी वाले, जिनको सन् १९४४ वैशाखी वाले दिन से श्री अकाल तख्त साहिब जी के नीचे श्री सुखमनी साहिब जी का नित्य नेम से पाठ करते हुए आज १९७२ की वैशाखी तक पूरे २८ वर्ष हो चुके थे। उन्हें पहले कोई भी नहीं जानता था, लेकिन आज सुखमनी साहिब जी के प्रताप से सभी ओर जै-जै कार तथा वन्दना हो रही है। आशा है गुरु बाबा कृपा करें, आगे से भी ज़िन्दगी में इस नित्य नेम को निभाएंगे।

****
उसके माथे के भाग्य पर गोपाल (प्रभु) प्रकट होता है। गुरु जी कथन करते हैं- उनके साथे=संग रहने वाले सभी उधरे=मुक्त हो गए हैं।। ३।।

सरनि जोगु सुनि सरनी आए॥ करि किरपा प्रभ आप मिलाए॥

शरण में आए हुए की रक्षा करने योग्य है। यह बात सुनकर जब हम प्रभु की शरण में आए तो प्रभु ने कृपा कर अपने साथ मिला लिया।

मिटि गए बैर भए सभ रेन॥ अंम्रित नामु साधसंगि लैन॥

जब से गुरुओं की सत्संगति में बैठकर नाम अमृत लेने लग पड़े हैं। तब से सभी की चरण धूली होने के कारण हृदय में से सभी वैर-विरोध मिट गए हैं।

सुप्रसंन भए गुरदेव॥ पूरन होई सेवक की सेव॥

गुरदेव=श्री गुरु रामदास साहिब जी स्वयं मुझ पर प्रसन्न हुए हैं। इसलिए मुझ सेवक द्वारा की हुई सेवा पूर्ण हो गई, यानि - सफल हो गई।

आल जंजाल बिकार ते रहते॥ राम नाम सुनि रसना कहते॥

आल जंजाल=घरेलु झंझटों से तथा अन्य कई तरह के विकारों से, अथवा- कामादिक विकारों से रहित हुए हैं। अब तो हर समय राम नाम सुनते हैं तथा जिह्वा से कथन करते हैं।

करि प्रसादु दइआ प्रभि धारी॥ नानक निबही खेप हमारी॥ ४॥

करि प्रसादु=कृपा करने वाले प्रभु ने दया दृष्टि धारण की है। अथवा-गुरु ने कृपा की है तथा प्रभु ने भी दया धारण की है। गुरु जी कथन करते हैं-तो ही यह हमारी भक्ति रूप, अथवा - सुखमनी रूप खेप (प्रेरणा) पूर्ण, निबही=निभ गई है।। ४।।

(अगली चार पउड़ी में सुखमनी साहिब जी के पाठ करने तथा सुनने का महात्म्य कथन करते हैं।)

प्रभ की उसतति करहु संत मीत॥ सावधान एकागर चीत॥

हे सन्त जनो! हे मित्रो! सावधान होकर एकाग्र चित्त से प्रभु की स्तुति रूप सुखमनी साहिब जी का उच्चारण करो।

सुखमनी सहज गोबिंद गुन नाम॥ जिसु मनि बसै सु होत निधान॥

इस सुखमनी साहिब में तीन चीज़ें हैं - गोबिन्द के गुण, गोबिन्द का नाम तथा गोबिन्द का सहज=ज्ञान। जिस पुरुष के हृदय में सुखमनी साहिब जी का पाठ समाया है, वह निधियों का निधान=खज़ाना हो जाता है।

सरब इछा ता की पूरन होइ॥ प्रधान पुरखु प्रगटु सभ लोइ॥

उसकी सर्व इच्छाएं पूर्ण होती हैं। वह पुरुष प्रधान होकर सभी लोगों में प्रकट हो जाता है।

सभ ते ऊच पाए असथानु॥ बहुरि न होवै आवन जानु॥

पुनः वह व्यक्ति सर्वोच्च स्थान जो परम पद है उसको प्राप्त कर लेता है। जिस स्थान से उसका आवागमन, अर्थात्-जन्म-मरण नहीं होता।

प्रसंग – गोपाल नामक वैरागी का

साहिब श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी की स्तुति सुनकर एक बाबा गोपाल नामक वैरागी ने महाराज जी की शरण में आ निवेदन किया- "मुझे भी अमृत छकायें" तो हज़ूर ने कहा-सन्त जी आप इसी भेष में रहकर सिक्खी का प्रचार करें, हम आप पर बहुत प्रसन्न हैं। गुरु जी की प्रसन्नता पाकर बाबा गोपाल जी ने ज़िला झंग, कोट ईसा शाह में डेरा लगाया, तथा नाम सिमरन का सब को उपदेश देते रहे। एक दिन की बात है, एक महाजन ने अपने नौकर को दरिया के उस पार बुलो गाँव में भूसा लेने भेजा। भूसा लेते हुए उस में से साँप ने निकल कर उसे डंक मार दिया तो वह लड़का उसी समय मर गया।

लेकिन वह हर समय सुखमनी साहिब जी का पाठ करता रहता था तथा उस समय भी सुखमनी साहिब जी का पाठ ही कर रहा था। जिसके कारण वह अपने अन्तकाल में देव विमान पर स्वार हो बैकुष्ठ धाम को जा रहा था। बाबा गोपाल जी ने जब आकाश की ओर वह देव विमान जाता देखा तो वह अपनी अन्तर्यामता के बल से समझ गए कि वह फलाँ व्यक्ति देव विमान पर बैठा जा रहा है।

उसे देखकर नमस्कार कर कहने लगे- "वाह-वाह! भले-भले!" निकट बैठे सेवकों ने पूछा-आप जी ने भले-भले क्यों कहा है? तो बाबा गोपाल जी बोले-सपड़ा जाति के महाजन का एक नौकर था, जो प्रायः सुखमनी साहिब जी का पाठ बड़े प्रेम से करता था। वह भूसा लेने गया तो वहां उसे साँप ने डंक मार दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। साँप का काटा कभी भी मुक्त नहीं होता, लेकिन सुखमनी साहिब के प्रताप के कारण आज वह देव विमान पर चढ़कर बैकुण्ठ धाम को जा रहा है, इससे उसका आवागमन मिट गया है। इसीलिए ही हमने भले-भले कहा है कि यह सबसे सर्व श्रेष्ठ है जो सुखमनी साहिब के पाठ द्वारा अपना जन्म सफल करके बैकुण्ठ धाम को चला गया है।

(भकत प्रेम प्रकाश, उतरार्ध हुलास ६, पृष्ठ १२७)

हरि धनु खाटि चलै जनु सोइ॥ नानक जिसहि परापति होइ॥ ५॥

गुरु जी कथन करते हैं - जिस को सुखमनी साहिब जी का पाठ करना नित्य प्राप्त होता है। वह पुरुष हरि नाम रूपी धन को प्राप्त करके चलता है।

(सुखमनी साहिब जी के पाठ करने वाले को निम्नलिखित समस्त पदार्थ प्राप्त होते हैं।)

खेम सांति रिधि नव निधि॥ बुधि गिआनु सरब तह सिधि॥

****

खेम=रक्षा, मन की शान्ति, अल्प वस्तु अनेक पुरुषों में बांटने से भी समाप्त न होने वाली शान्ति रूपी रिद्धि तथा १. महापद्म, २. पद्म, ३. कश्यप, ४. मकर, ५. मुकन्द, ६. नील, ७. अरब, ८. खरब, ९. कन्द रूपी नव-निद्धि।

हृदय - बुद्धि आदि का ज्ञान, अथवा - श्रेष्ठ बुद्धि तथा शास्त्र ज्ञान, अथवा - परोक्ष ज्ञान तथा सर्व सिद्धि उसको प्राप्त होती हैं।

[पृष्ठ २९६]

बिदिआ तपु जोगु प्रभ धिआनु॥ गिआनु स्रेसट ऊतम इसनानु॥

प्रत्येक किस्म की विद्या, अथवा - आत्म विद्या, प्रत्यक्ष जप-तप,

यथा - **गुर सेवा तपां सिरि तपु सारु।।** *(पृष्ठ ४२३)*

भक्ति योग तथा प्रभु के चरणों का ध्यान, स्रेसट गिआनु=अपरोक्ष ज्ञान तथा अठसठ तीर्थों के स्नान का उत्तम फल घर बैठे प्राप्त होता है।

चारि पदारथ कमल प्रगास॥ सभ कै मधि सगल ते उदास॥

धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष रूप चहुँ पदार्थों की प्राप्ति हृदय कँवल का खिलना। तन द्वारा सभी में रहक़र, मन द्वारा सभी से उदास=असंग रहना।

यथा - **दीसहि सभ महि सभ ते रहते।। पारब्रहम का ओइ धिआनु धरते।।** ३।।

(गउड़ी मः ५, पृष्ठ १८१)

सुंदरु चतुरु तत का बेता॥ समदरसी एक द्रिसटेता॥

शारीरक तौर पर सुंदरु=मनोहर साहिबज़ादा होना, चतुरु=चालाक होना, सभी वेदों-शास्त्रों के, तत का बेता=सिद्धान्त का ज्ञाता होना। ऊँच-नीच में समदरसी=समदृष्टि होना, अनेकों में एक ब्रह्म को देखना।

इह फल तिसु जन कै मुखि भने॥ गुर नानक नाम बचन मनि सुने॥ ६॥

गुरु जी की प्रसंसा तथा परमेश्वर के नाम युक्त जो सुखमनी साहिब जी के वचन हैं। इन वचनों को जो गुरु के द्वार पर अपने कानों से सुने=श्रवण करता है तथा मुखि भने=मुँह द्वारा कथन करता है तथा मन द्वारा मनन करता है, तिसु जन कै=उस व्यक्ति के प्रति यह मुख्य फल प्राप्त होने भने=कथन किये हैं।। ६।।

इहु निधानु जपै मनि कोइ॥ सभ जुग महि ता की गति होइ॥

निद्धियों का खज़ाना जो सुखमनी साहिब है, जो भी इसे हृदय द्वारा सिमरन करेगा। समस्त युग जिस संसार में बरत रहे हैं, उस संसार में उसकी मुक्ति होगी।

अथवा- सभी युगों में चाहे किसी भी युग में जप ले, उसकी मुक्ति अवश्य होगी।

गुण गोबिंद नाम धुनि बाणी॥ सिम्रिति सासत्र बेद बखाणी॥

इस सुखमनी साहिब रूप वाणी में गोबिन्द के गुण तथा उस नाम की ध्वनि हो

****
रही है। सत्ताईस समृतियें, छः शास्त्र तथा चार वेदों ने जिस नाम की महिमा कथन की है।

सगल मतांत केवल हरि नाम॥ गोबिंद भगत कै मनि बिस्राम॥

सभी मत्तों का सिद्धान्त एक हरि का नाम है, वह नाम ही इस सुखमनी साहिब जी में है।

प्रश्न - इस वाणी का निवास कहां है?

गुरु उत्तर - गोबिन्द के जो भक्त हैं, उनके हृदय में इस सुखमनी साहिब जी का निवास है। जैसे - प्रारम्भ में कथन किया है -

सुखमनी सुख अंम्रित प्रभ नामु।।
भगत जना कै मनि बिस्राम।। (पृष्ठ २६२)

कोटि अप्राध साधसंगि मिटै॥ संत क्रिपा ते जम ते छुटै॥

जो सुखमनी साहिब जी का पाठ करता है, वह पूर्ण साधु है, उसकी संगति करने से करोड़ों अप्राध=पाप मिट जाते हैं। उन सन्तों की कृपा द्वारा यह जीव यमों से छूट जाता है।

जा कै मसतकि करम प्रभि पाए॥ साध सरणि नानक ते आए॥ ७॥

गुरु जी कथन करते हैं - प्रभु ने कृपा करके जिनके माथे पर शुभ कर्म लिख दिये हैं, वही पुरुष सन्तों की शरण में आते हैं।। ७।।

जिसु मनि बसै सुनै लाइ प्रीति॥ तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति॥

जिस जीव के हृदय में सुखमनी साहिब जी का पाठ समाया है तथा जो प्राणी प्रीत करके सुखमनी साहिब जी का पाठ श्रवण करता है। उस पुरुष को ही हरि प्रभु याद आता है।

जनम मरन ता का दूखु निवारै॥ दुलभ देह ततकाल उधारै॥

यह सुखमनी साहिब उसके जन्म-मृत्यु के दुख निवृत्त कर देती है तथा जो प्राप्त होनी बहुत दुलभ=कठिन है, उस मानव देह को यह सुखमनी ततकाल=शीघ्र (तुरन्त) मुक्त करके बैकुण्ठ धाम (सच्चखण्ड) पहुंचा देती है।

प्रसंग-सिक्ख के बैकुण्ठ जाने का

एक बार श्री गुरु गोबिन्द सिंघ जी महाराज के पास एक सिक्ख ने आकर निवेदन किया कि महाराज जी! फलाँ सिक्ख ने बहुत भारी अपराध किया है। इसलिए उसको कोई न कोई दण्ड अवश्य मिलना चाहिए। कौतुकी प्रीतम ने उस सिक्ख को अपने पास बुलाकर पूरी बात पूछी और कहा - सभी सिक्ख तेरी शिकायत कर रहे हैं, इसलिए तुझे दण्ड दिया जा रहा है। अन्य सिक्ख को आज्ञा दी गई कि इसे खड़ा करके इर्द-गिर्द

****

दीवार बनवा कर उसमें चिनवा दिया जाए। मिस्त्री बुलाकर दीवारों का निर्माण प्रारम्भ कर दिया। वह सिक्ख सुखमनी साहिब जी के पाठ का बहुत अभ्यस्त था। वह अन्दर खड़ा ही सुखमनी साहिब जी का पाठ करता रहा। कुछ समय के पश्चात् कौतुकी प्रीतम जी ने सिक्खों को कहा कि दीवार गिराकर उसके शरीर का संस्कार कर दो। आज्ञा का पालन करते हुए जब सिक्खों ने दीवार को गिराया तो देखा कि वहां पर उसके शरीर की एक अस्थि मात्र भी नहीं है। यह देखकर सिक्ख चकित रह गए तथा महाराज से पूछा - यह क्या कौतुक बना है? हजूर ने कहा - यह सुखमनी साहिब जी के पाठ का महात्म्य है। यह सिक्ख अन्दर खड़ा ही सुखमनी साहिब जी का पाठ करता रहा, इसलिए यह सदेह ही बैकुण्ठ को चला गया है। इसी प्रकार तुम भी सभी सुखमनी साहिब जी के पाठ के नित्य नेमी बनो। सुखमनी साहिब जी का पाठ करने से मनुष्य अपनी दुर्लभ देह को शीघ्र ही सफल कर लेता है तथा संसार सागर से पार उतर जाता है।

निरमल सोभा अंम्रित ता की बानी॥ एकु नामु मन माहि समानी॥

एक परमेश्वर के नामों का समूह जो सुखमनी साहिब है, यह जिस के हृदय मे समा जाती है। उसकी निर्मल शोभा होती है तथा उसकी वाणी भी अमृत की भांति मीठी हो जाती है।

दूख रोग बिनसे भै भरम॥ साध नाम निरमल ता के करम॥

दुख जन्म-मृत्यु का, रोग अहंकार का, अर्थात्-अज्ञान रूपी रोग, यमों का भय तथा पांच प्रकार का भ्रम इत्यादि सर्व विकार मिट जाते हैं।

अर्थात्- **प्रत्यक्ष** दुख रोग तथा भय-भ्रम सभी नाश हो जाते हैं।

यथा - **दूख दरद बिनसे भै भरम।। आवण जाण रखे करि करम।।** २।।

(गउड़ी महला ५, पृष्ठ १८३)

जो सुखमनी साहिब जी का नित्य नेम से पाठ करता है, उसके निर्मल कर्म होने के कारण उसका नाम साधु पड़ जाता है।

प्रसंग - वजीर खाँ का

"नानक दुखीआ सभ संसार।।" के महावाक्यानुसार जहांगीर बादशाह का कर्मचारी जो वजीर खाँ था, उसको जलोदर रोग हो गया है। दूर-दूर से कुशल डाक्टरों को बुलाकर अत्यन्त इलाज करवाए, लेकिन पूर्ण सफलता प्राप्त न हुई। वह रोग की पीड़ा से बहुत ही तड़पता रहा।

एक गुरु जी का नित्य-कर्मी सिक्ख उसके निवास स्थान के आगे से सुखमनी साहिब जी का पाठ करता हुआ प्रतिदिन गुजरा करता, जितना समय उसके कानों में सुखमनी साहिब जी का पाठ पड़ता रहे, उतनी देर तक वह स्वस्थ रहता। अतः एक दिन वजीर

खाँ ने उस सिक्ख को अपने पास बुलाकर विनय की कि जो कलाम प्रातःकाल तुम प्रतिदिन पढ़ते हुए इधर से गुजरते हो, वह कलाम तुम तेरे पास बैठकर मुझे प्रतिदिन सुना कर ज़ाया करो, तांकि मेरा यह रोग नाश हो सके। वह सिक्ख मान गया तथा उस दिन से वह नित्य सुखमनी साहिब जी का पाठ उसे सुना कर जाता। जिससे उसको काफी आराम आ गया।

एक दिन वजीर खाँ ने कहा - जिसकी यह कलाम है वह कहा रहते हैं? एक दिन उनका दर्शन तो करवा दो। उस सिक्ख ने कहा - वह गुरुदेव जी तो अमृतसर रहते हैं। यदि तुम्हें दर्शनों की अभिलाषा है तो मेरे साथ चलो और दर्शन कर आते हैं। दोनों दर्शनों की इच्छा से चल पड़े, श्री अमृतसर पहुंचकर गुरु जी के आगे भेंट रख वन्दना की तथा हाथ जोड़ कर निवेदन किया - प्रभु जी! आपकी कलाम में इतनी ताकत है जिसका मैं कथन नहीं कर सकता, जितना समय मैं सुनता रहता हूँ उतनी देर तक स्वस्थ रहता हूँ। आप ऐसी कृपा करें कि मैं हमेशा के लिए स्वस्थ हो जाऊँ। हजूर ने अपने सेवक का प्रताप बढ़ाने के लिए कहा-

वहां बाबा बुड्ढा जी हैं, उनके पास चला जा, वह तेरा रोग दूर करेंगे। उसी समय वजीर खाँ ने बाबा बुड्ढा जी के पास जाकर वन्दना कर निवेदन किया - जलोदर रोग ने बहुत कष्ट दिया है, आप कृपा करें। बाबा जी सेवा कर रहे थे तथा श्रद्धालुओं से भी सेवा करवा रहे थे। क्रोधित हो कहते हैं दूर हट जा, हमारी सेवा में बाधा मत डाल। लेकिन वजीर खाँ नम्रता से हाथ जोड़, थोड़ा पीछे हट कर वहीं पर खड़ा रहा। सेवा करते हुए बाबा जी की दृष्टि उस पर पड़ गई कि वह नम्रता पूर्वक यहीं पर खड़ा है तो वह खाली टोकरी लेकर आते समय वह टोकरी उस के पेट पर जब जोर से मारी तो उसके पेट में से पानी निकल गया तो वह निरोग हो गया, इसी कारण उसके सभी दुख-कष्ट मिट गए। इस पर कवि सन्तोख सिंघ जी ने भी लिखा है-

यथा- **रोग जलोधर उदर बिसाला।। पीड़ा देति महां सभि काला।। ३४।।**
पर्‌यो सदन बिललावति रहौं।। होति बिखाद सकल ही सहौं।।
निकट गरी महिं सिख इक जावत।। पाठ सुखमनी मुखहुं अलावति।। ३५।।
जबि मम कान परी धुनि आनि।। पीरा भई उदर की हान।।
सिख शनान हित गयो अगारी।। होनि लगी बाधा पुन भारी।। ३६।।
कितिक बेरि महि सिख पुन आयो।। पाठ सुखमनी मैं सुनि पायो।।
बहुर भयो सुख रिदे बिचारा।। इस ते मिटति कशट मम भारा।। ३७।।
इतने महिं सिख जबि चलि गयो।। धुनि को सुनति न मैं पुन भयो।।
बाधा अधिक बधी तबि मेरे।। जानी महिमा मन तिस बेरे।। ३८।।
पठि करि नर को सो बुलवायो।। जबि गुरु सिक्ख निकट चलि आयो।।
सरब ब्रितांत बूझि करि राखा।। पाठ सुखमनी चित हवै भाखा।। ३९।।

जबि लौ सुन्यो न पीरा भई।। हटे पाठ, पुन तैसे थिई।।
तबि मैं सिक्ख अपर ढिग राखे।। निसदिन पाठ सुखमनी भाखे।। ४०।।
मान्यों गुर हित करनि कराहु।। सुनति सुनति भा सभि रुज दाह।।
कितिक दियोस महिं भयो अराम।। करि शनान रुज गए तमाम।। ४१।।
बडे गुरुनि ढिग मैं तबि आयो।। सकल बिनै भनि सीस निवायो।।
उर शरधा लखि कै सिख कीनो।। लियो अलंब भयो रुज हीनो।। ४२।।

(गुर प्रताप सूरज रास ४ अंसू ५०)

सभ ते ऊच ता की सोभा बनी ॥ नानक इह गुणि नामु सुखमनी ॥ ८ ॥ २४ ॥

उसकी शोभा सभी से ऊँची बन जाती है। गुरु जी कथन करते हैं, इन्हीं गुणों के कारण इस वाणी का नाम सुखमनी साहिब है।

अथवा - मन को सुख देने वाली है, अर्थात् - मणि की भान्ति सुखों को प्रकाशनीय करने वाली है इसी कारण इस वाणी का नाम सुखमनी साहिब है।। ८।। २४।।

कवि सन्तोख सिंघ जी ने लिखा है - श्री गुरु अर्जुन देव जी ने श्री रामसर मन्जी साहिब वाले स्थान पर बैठकर सम्पूर्ण सुखमनी साहिब उच्चारण कर महात्मय बताया है कि जो भी सिक्ख प्रातःकाल उठकर सुखमनी साहिब जी का पाठ करेगा, उसके चौबीस हज़ार श्वास सफल हो जायेंगे तथा आठों पहर के पाप निवृत्त कर जन्म-मृत्यु से रहित होगा।

यथा- **प्रात समें इक मन करि पाठ।। मिटहि पाप क्रित जाम जु आठ।।**
जनम मरन तिनको कटि जाइ।। पठि प्रभु चरननि रहे समाइ।। ७।।
जहां बैठि सुखमनी उचारी।। तिसके दरशनि हुइ फल भारी।।
सभि लिखवाइ उठे गुर पूरे।। परउपकार चरित जिन रूरे।। ८।।

(गुर प्रताप सूरज रास ३ अंसू ४३)

श्री सुखमनी साहिब जी का महात्म्य

श्रीमान् सन्त संगत सिंघ जी कमालिए वाले कई बार इस अमृत-वाणी की महानता कथा में सुनाया करते थे। सन् १८९९ में श्रीमान् फतेह चन्द जी सेवा पन्थी शाह जीवणे वालों से उन्होंने इस पवित्र वाणी के अर्थ भी सीख लिए। फिर टोबा टेक सिंघ पहुंचकर गुरुद्वारे में कथा शुरु कर दी।

जब एक दिन वह कथा करके गुरुद्वारे में से बाहर आए तो आप जी के चरणों पर एक दुखी नौजवान मुसलमान गिर कर निवेदन करने लगा - हे प्रभु भक्त! मैं जालंधर से कंगाल हो कर कल सायं यहां पर पहुंचा हूँ। हम मसजिद में गए वहां पर मुज़ाविर से खाना व रात्रि विश्राम के लिए आग्रह किया, लेकिन उन्होंने इन्कार कर दिया कि यहां पर खाने तथा विश्राम का कोई प्रबन्ध नहीं है।

फिर हम गुरुद्वारे में गए, वहां पर सिक्ख श्रद्धालु ने हमें प्रशादा खिलाया, सोने

****
के लिए विस्तर आदि भी दिया। आज प्रातः मैंने आप जी की रसना से अल्लाह की कलाम सुनी तो हृदय में शान्ति आ गई। अब अल्लाह वालो! मुझ पर रहमत की दृष्टि करो तथा मुझे इस कंगाल अवस्था से मुक्ति दो। सन्त महाराज जी ने उसको सुखमनी साहिब जी की एक पंक्ति उर्दू में लिख कर दे दी-

यथा - **"प्रभ कै सिमरनि रिधि सिधि नउ निधि।"**

महापुरुषों ने कहा - इस कलाम को आठों पहर पढ़ा कर, अल्लाह तुझे भाग्य प्रदान करेगा। अबदुल करीम इस पंक्ति को लगातार तीन दिन पढ़ता रहा। चौथे दिन अरदास के पश्चात् एक फौजी सुबेदार (जो माथा टेककर बाहर निकला था) ने पूछा - भाई तुम कौन हो? जो प्रतिदिन दरवाजे पर बैठे रहते हो। अबदुल करीम ने कहा - मैं जालंधर से कंगाल होकर यहां आया हूँ, अभी कोई कार्य नहीं मिला, हर समय बाबा नानक की कलाम पढ़ता रहता हूँ तथा गुरुद्वारे से प्रशादा खा लेता हूँ। अल्लाह से मांग रहा हूँ कि मेरी किस्मत के द्वार खोल।

सुबेदार ने कहा - मैं अपनी ज़मीन पर एक नौकर रखना चाहता हूँ। यदि तुम मेरे पास रहना चाहो तो मैं तुझे अठसठ रुपए प्रति माह पर नौकर रख सकता हूँ। अबदुल ने सहमति में उत्तर देते हुए कहा - लेकिन मुझे इस माह की पेशगी दी जाए। क्योंकि मेरे पास खाने-पीने के लिए कुछ भी नहीं है। सुबेदार ने कहा - तुम्हारी जुबान क्यों हिल रही है? उसने कहा - मैं अल्लाह की कलाम पढ़ रहा हूँ। कौन - सा कलाम पढ़ रहे हो? अबदुल करीम कहने लगा- जी मैं पढ़ रहा हूँ-

"प्रभ कै सिमरनि रिधि सिधि नउ निधि"

वह सिक्ख चकित हो उठा तथा कहने लगा - यह कलाम तुझे किसने प्रदान की? वह कहने लगा - अल्लाह वालों ने प्रदान की है, जो आज कल गुरुद्वारे में कथा कर रहे हैं। यह सुनकर सुबेदार को प्रसन्नता हुई तथा उसने अठसठ रुपए नकद तथा रहने के लिए एक कुटिया भी दे दी।

अबदुल करीम ने बहुत बुद्धिमता से सभी कर्मचारियों से खेती करवाई तथा हर समय चलते-फिरते इस पंक्ति में भी लीन रहा करे। सरदार की पहली फसल अनुमान से ज्यादा हुई। उसने अबदुल करीम का वेतन अठसठ से सत्तर रुपए कर दिया तथा प्रसन्न हो कर कहा - तुम्हारे सिमरन व परिश्रम से मेरी ज़मीन ने सोना पैदा किया है। अबदुल करीम ने फिर सरदार से हज़ार रुपए लेकर अपनी खेती शुरु कर दी। दिन रात खेतों में कार्य करता रहे तथा साथ ही इस पंक्ति का बारंबार सिमरन भी करता रहे। इस कलाम के प्रभाव से छः मास के पश्चात् सरदार के हज़ार रुपए लौटाने के अतिरिक्त दो हज़ार रुपए करीम को बचत हुई। इस जाप व परिश्रम के कारण वह जालंधर निवासी कंगाल दस-बारह हज़ार रुपए का मालिक हो गया।

१९०८-९ में यह अबदुल करीम सन्त महाराज जी को कमालिए जा मिला। चरणों

****
पर शीश झुकाया तथा कहा - महाराज! आप जी की दी हुई कलाम से मैं नंबरदार तथा चार वर्ग भूमि का मालिक हो गया हूँ। चार बालक मेरे घर खेल रहे हैं। अब मुझे ऐसी कलाम प्रदान करो, जिस से मेरा परलोक भी सुखी हो जावे, तो सन्तों ने कहा - प्रातः वही कलाम पढ़ा कर तथा रात को काम-काज से निपट कर दूसरी यह कलाम पढ़ा कर।

"प्रभ कै सिमरनि गिआनु धिआनु ततु बुधि"

इस प्रकार संत महाराज जी ने उकाड़े के एक नंबरदार को भी उर्दू में छपा हुआ सुखमनी साहिब का गुटका दिया। जिसे वह दिन-रात मसजिद में पढ़ता रहता था। इस वाणी ने उसका लोक-परलोक सुधार दिया। सन्त महाराज जी ने पिशावर में कथा करते हुए संगतों को बताया कि जो सिक्ख प्रतिदिन सुखमनी साहिब जी का पाठ करता है उसके चौबीस हज़ार श्वास सफल हो जाते हैं तथा वह अपने जीवन को सफल कर मुक्त हो कर ईश्वर के बैकुण्ठ धाम में चला जाता है।

गुरुवाणी के रसिया पूर्ण बाल ब्रह्मचारी श्रीमान् १०८ ब्रह्म ज्ञानी सन्त अमीर सिंघ जी, (श्री अमृतसर वाले) के गुरुदेव महन्त बाबा उत्तम सिंघ जी ने जिस समय से मीठे टिवाणे महन्त भाई हरि सिंघ जी से बाल्यकाल में श्री सुखमनी साहिब जी का पाठ कण्ठ किया था। पूर्ण आयु, अर्थात्-बिक्रमी सम्वत् १९२३ से लेकर सम्वत् २०१७ तक अन्तिम श्वासों में भी नियमानुसार श्री सुखमनी साहिब जी के पाठ बहुत प्रेम तथा विश्वास के साथ कई-कई रोज़ करते तथा - श्रवण करते रहते थे।

पूज्य बाबा उत्तम सिंघ महाराज जी के अनमोल वचन

बाबा जी जब भी श्री सुखमनी साहिब जी के पाठ की समाप्ति करते थे तो निम्नलिखित पंक्तियों का पाठ अवश्य पढ़ा करते थे -

सुखमनी सुखां दी निध।। पड़दिआं सुणदिआं दे कारज सिध।।
सुखमनी पड़ीऐ दिन राती।। सुखमनी सुखां दी दाती।।
सुखमनी जे कोई पड़ै सुणावै।। मन बांछत फल को सो पावै।।
सुखमनी का पाठक जोइ।। मुख ते जो बोलै सो होइ।।
अनदिन सुखमनी जो ररे।। भव सागर ते सो नर तरे।।

प्रत्येक श्रद्धालु को बाबा जी कहते थे कि जो भी प्राणी सुखमनी साहिब जी का पाठ श्रद्धापूर्वक पढ़ेगा अथवा सुनेगा, उसका लोक - परलोक सफल हो जाएगा।

।। इति श्री सुखमनी साहिब सटीक सम्पूर्णम् ।।